MALIK MUHAMMAD JAYASI AUR HINDI AALOCANA

Thesis Submitted in Partial fulfillment of the Requirement for the Degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in Hindi

2021

BY

PRABHAT UPADHYAY
14HHPH03

SUPERVISIOR - **Dr. BHIM SINGH**

Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad - 500046
TELANGANA

मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना

(हैदराबाद विश्वविद्यालय के पी-एच. डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2021

शोधार्थी

प्रभात उपाध्याय

14HHPH03

शोध-निर्देशक – डॉ. भीम सिंह

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद - 500046
तेलंगाना

CERTIFICATE

(For Ph.D. Thesis)

This is certify that the thesis entitled **MALIK MUHAMMAD JAYASI AUR HINDI AALOCHANA (मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना)** Submitted by **PRABHAT UPADHYAY** bearing registration number **14HHPH03** in partial fulfillment of the requirements for award of Doctor of Philosophy in the School of **Humanities** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full of this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research.

1. **Aarambhik Hindi Aalochana aur Malik Muhammad Jayasi**
(ISSN Number 2475-1359)

2. **Vijaydevnarayan Sahi aur Raghuvansh ke Chintan Mein Jayasi**
(ISSN Number 2348-8662)

And

Has made presentations in the following conferences :

1. Bhaktikalin Kavita : Bhartiya Sanskriti ke Vividh Aayam (Aacharya Shukla Purva Jayasi Sambandhi H

indi Aalochana). (International Seminar)

2. Bhartiya Sahitya mein Krishna (Hindi Sufi ewam Krishna Bhakt Kaviyon ki Prem Vyanjana). (International Seminar)

Further, the student has passed the following courses toward fulfillment of the coursework requirement for Ph.D. in duration Ph.D. first year (2014-15). This coursework was recommended by the Doctoral Committee.

	Course Code	**Course Title**	**Credits**	**Pass/Fail**
1.	HN 801	Critical Approach to Research	4	PASS
2.	HN 802	Research Methodology	4	PASS
3.	HN 803	Research Paper (Project Work)	4	PASS
4.	HN 826	Ideological Background of Hindi Lit.	4	PASS
5.	HN 827	Practical Review	4	PASS

Supervisor **Head of Department** **Dean of School**

DECLARATION

I, PRABHAT UPADHYAY hereby declare that this thesis entitled **"MALIK MUHAMMAD JAYASI AUR HINDI AALOCHANA"** (मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना) submitted by me under the guidance and supervision of **Dr. Bhim Singh** is a bonafide research work and free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Name : PRABHAT UPADHYAY

Date: 19/01/2021

(Thumb of the student)

Regd. No. 14HHPH03

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

भूमिका **i-vii**

पहला अध्याय : मलिक मुहम्मद जायसी की रचनात्मक-चेतना का विकास **01-76**

1.1 भूमिका

1.2 जायसी का जीवन-वृत्त

1.3 जायसी की रचनात्मक-चेतना का विकास

1.4 जायसी की प्रमुख रचनाओं की समीक्षात्मक व्याख्या

1.5 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय : शुक्लपूर्व हिंदी साहित्येतिहास की लेखन-परंपरा और जायसी **77-106**

2.1 भूमिका

2.2 नाभादास का 'भक्तमाल' एवं जायसी

2.3 गार्सा-द-तासी का जायसी संबंधी-चिंतन

2.4 शिवसिंह सेंगर का जायसी संबंधी-चिंतन

2.5 ग्रियर्सन का जायसी संबंधी-चिंतन

2.6 'मिश्रबंधु-विनोद' में जायसी संबंधी-चिंतन

2.7 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय : मलिक मुहम्मद जायसी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल **107-147**

3.1 भूमिका

3.2 आचार्य शुक्ल द्वारा जायसी के काव्य का किया गया मूल्यांकन

3.3 आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ और उन स्थापनाओं का परवर्ती हिंदी आलोचना में पिष्ट-पेषण

3.4 आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी आलोचना की शक्ति, संभावनाएं एवं सीमाएँ

3.5 निष्कर्ष

चौथा अध्याय : 'जायसी ग्रंथावली' के प्रमुख संपादक और उनकी आलोच्य-दृष्टि 148-177

4.1 भूमिका

4.2 माताप्रसाद गुप्त

4.3 वासुदेवशरण अग्रवाल

4.4 मनमोहन गौतम

4.5 कन्हैया सिंह

4.6 निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय : मलिक मुहम्मद जायसी और विजयदेवनारायण साही 178-204

5.1 भूमिका

5.2 'जायसी' संबंधी विजयदेवनारायण साही की स्थापनाएँ और सीमाएँ

5.3 आलोचक वागीश शुक्ल का अवदान

5.4 निष्कर्ष

छठवाँ अध्याय : उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य और जायसी का काव्य 205-232

6.1 भूमिका

6.2 उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य से आशय

6.3 समकालीन हिंदी आलोचक और जायसी का काव्य

6.3.1 नित्यानंद तिवारी

6.3.2 विजय बहादुर सिंह

6.3.3 डॉ. राजकुमार प्रसाद

6.3.4 डॉ. रवि रंजन

6.4 निष्कर्ष

उपसंहार **233-238**

संदर्भ ग्रंथ-सूची **239-249**

भूमिका

भूमिका

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय 'मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना' है। इस विषय की ओर आकर्षित होने का कारण स्पष्ट है – पहला यह कि मध्यकालीन कविता को आज एक तरह से धार्मिकता के आवरण में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस काल खंड ने अपने विपुल साहित्य से महानतम काव्य ग्रंथों 'पद्मावत' और 'रामचरितमानस' जैसी विश्व साहित्य के श्रेष्ठतम रचनाओं में शुमार करने लायक रचनाएँ प्रस्तुत कीं, लेकिन उत्तर आधुनिकता की इस अंधी दौड़ ने भाषा और साहित्य के क्षेत्र में ऐसा कौन सा चिंतन प्रस्तुत किया कि वे उपेक्षणीय मानी जाने लगीं ? या विश्व साहित्य में जिन कुछ क्लासिक रचनाओं की चर्चा की जाती हैं उनके कौन से तत्व हैं जो इन रचनाओं में नहीं पाए जाते हैं ? इसमें फिर भी तुलसीदास की स्थिति तथा उनके काव्य पर पर्याप्त विवेचन हुआ भी है और हो भी रहा है, लेकिन इस क्रम में जायसी की भूमिका नगण्य क्यों नजर आती है ? साहित्येतिहासकारों ने जायसी के संबंध में जिन मतों की स्थापना की उनके पीछे कौन से विचार काम कर रहे थे जिसके कारण उनको किसी विशेष खांचे में फिट करने की कोशिश की गई ? मलिक मुहम्मद जायसी ने जिस काव्य-पद्धति का प्रयोग किया उसी परंपरा का निर्वाह करके तुलसीदास बड़े लोकमंगलकारी कवि सिद्ध किए जाते हैं जबकि जायसी केवल सूफी कवि ? जायसी कृत 'पद्मावत' का जो विभिन्न पाठ तैयार किया गया है उसके संबंध में संपादकों की क्या राय है ? जायसी संबंधी आलोचना में आखिर वे कौन से विचार हैं जिनके आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और विजयदेवनारायण साही आमने – सामने नजर आते हैं ? उत्तर-औपनिवेशिक आलोचकों की नजर में मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' का स्थान क्या है ? यह कुछ मूल सवाल थे जो मेरे जेहन में उपजे थे। इसका कारण स्वाभाविक ही था कि जिस साहित्य और जिस संस्कृति ने लोक-संस्कार दिए, उसी लोक की भाषा और साहित्य ने जिस सामाजिक आत्म को गढ़ा, उसकी विशेषताएँ पढ़ते-लिखते हुए समझ में आयीं। अब सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के आलोक में साहित्य और संस्कृति में निरंतर आ रहे परिवर्तन ने हमें पुनः मलिक मुहम्मद जायसी के संबंध में निर्मित आलोचना की विभिन्न धारणाओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित किया। भला हो इस विभाग के अध्यापकों का जिन्होंने मेरे आत्मा की पुकार को पहचानते हुए हिंदी साहित्य के स्वर्णिम युग में पुनः विचरण करने और उसे समझने का मौका प्रदान किया।

हिंदी साहित्य के इतिहास में अवधी भाषा में सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप से महाकाव्य लिखने का काम जायसी ने किया, लेकिन आलोचना जगत ने उनके साथ जो व्यवहार किया उसका मूल्यांकन आधुनिक भाव-बोध तथा आधुनिक मूल्यों के आलोक में करने की अपनी दुश्वारियाँ हैं। एक तरफ मध्यकालीन भारत का इतिहास है और दूसरी तरफ जायसी की रचना है, जिनके भीतर लगातार आवाजाही लगी रहती है। ऐसी स्थिति में जायसी के काव्य का मूल्यांकन बहुत दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। आज जिस तरह से इतिहास को जिस तरह से पुनःसर्जित करने की कवायद तेजी से फैली है तब जायसी के साहित्य का मूल्यांकन चुनौती भरा कदम लगता है। मध्यकालीन कवियों की रचनाओं का पाठानुसंधान के माध्यम से जो नया पाठ प्रस्तुत किया है वह एक नई समस्या को जन्म दिया है, इससे जायसी और उनकी रचना 'पद्मावत' भी अछूती नहीं है।

इस शोध – प्रबंध के लेखन में गुणात्मक शोध-प्रविधि का सहारा लिया गया है। शोध विषय के विवेचन के लिए समाजशास्त्रीय पद्धति का सहारा लिया गया है साथ ही समीक्षात्मक, तुलनात्मक तथा विश्लेषणातमक शोध-प्रविधियां प्रयुक्त की गई हैं।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य रहा है कि एक समृद्ध लोक-भाषा अवधी का कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य में जो विशिष्ट कीर्तिमान रचा था, जिसमें समाज की व्यापक मानवीय चिंता दिखाई पड़ती है, जिसके बहुविधि आयामों की पड़ताल हिंदी में चोटी के आलोचकों ने की, उसकी विवेचना करना। उसी कवि कविता तथा आलोचकों द्वारा उसके विवेचन को आधार बना कर सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आधार पर समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना हमारा ध्येय रहा है। लोक की सांस्कृतिक चेतना को परखते हुए जायसी की कविता के पुनर्मूल्यांकन को उसके जटिल कारणों और प्रभावों को रेखांकित करना हमारा जरूरी कार्य रहा है। आधुनिक विमर्श के प्रभाव में निर्मित चेतन स्वभाव जिन सामाजिक संरचनाओं से पुष्ट हुआ, उसकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिघटना कैसी रही है – जायसी की कविता तथा उनकी आलोचना जगत में स्थिति के माध्यम से इसे तलाश कर आलोचना की प्रवृत्तियों को पहचानते हुए प्रस्तुत किया गया है।

'मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना' विषय पर केन्द्रित, शोध-प्रबंध छह अध्यायों में विभक्त है। जैसा कि विषय से ही स्पष्ट हो रहा है कि जायसी का साहित्य और हिंदी आलोचना का स्वभाव ही इसके मुख्य शोध विषय हैं। शोध-प्रबंध में जो अध्यायीकरण किया गया है उसका क्रमवार सारांश इस प्रकार है –

इस शोध-प्रबंध का पहला अध्याय है – **मलिक मुहम्मद जायसी की रचनात्मक चेतना का विकास**। इस अध्याय को तीन उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिनमें पहला उप-अध्याय है – **जायसी का जीवन-वृत्त**। इस उप-अध्याय के लेखन में मलिक मुहम्मद जायसी के नामकरण तथा उससे संबंधित विभिन्न विद्वानों के मतों का मूल्यांकन, जन्म, जन्म-स्थान, उनकी दिन-हीन बाल्यावस्था, गृहस्थ जीवन, उनके पुत्रों से संबंधित जानकारी, वैराग्य का कारण, मित्रों की जानकारी, उनके गुरु, उनके स्वयं के बारे में कथन पर विस्तार से विचार किया गया है। इस क्रम में विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए विचार का लाभ उठाते हुए उनके जीवन के विषय में सामान्य जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय का दूसरा उप-अध्याय है – **जायसी की रचनात्मक चेतना का विकास**। इस उप-अध्याय में जायसी की रचनाओं के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सैय्यद कल्बे मुस्तफा तथा गार्सा-द-तासी आदि के शोधों एवं खोजों के आधार पर जायसी की जानकारी प्रस्तुत की गई है। इस अध्याय में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जायसी के 24 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की गई है जिसमें से अभी तक 6 ग्रंथ ही प्राप्य बताए गए हैं। इस अध्याय के अंतिम उप-अध्याय **जायसी की प्रमुख रचनाओं की समीक्षात्मक व्याख्या**) में 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'चित्ररेखा' और 'कहरनामा' का परिचय और साथ ही उसकी समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

इस शोध-प्रबंध का दूसरा अध्याय है - **शुक्लपूर्व हिंदी साहित्येतिहास - लेखन की परंपरा और जायसी**। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय है – **नाभादास का 'भक्तमाल' एवं जायसी**। 'भक्तमाल' नाभादास कृत भक्तों का जीवन चरित काव्य है। 'भक्तमाल' के छंद हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के संदर्भग्रंथ के रुप में अत्यंत प्रचलित रहे हैं, इसका करण यह है कि इस रचना में जिन भक्तों की जीवन झाकियाँ अंकित हुई हैं, उनमें से अनेक हिन्दी के मध्यकालीन कवि भी हैं। इस दृष्टि से नाभादास की दृष्टि का मूल्यांकन इस

उप-अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इसका दूसरा उप-अध्याय है – **गार्सा-द-तासी का जायसी संबंधी चिंतन**। इस उप-अध्याय में जायसी संबंधी आलोचना में तासी के योगदान तथा एक लंबी परंपरा का उनके चिंतन पर पड़ने वाले प्रहाव का मूल्यांकन सामाजिक परिस्थितियों के आलोक में किया गया है। उनके चिंतन से आगे आलोचना जगत पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन इस उप-अध्याय में किया गया है। इस अध्ययन क्रम को आगे बढ़ाने के लिए तीसरा उप-अध्याय **शिवसिंह सेंगर का 'वृत्त-संग्रह' और जायसी** नाम से लिखा गया। 'शिवसिंह सरोज' की चर्चा मिश्रबंधु तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल दोनों के यहाँ अलग – अलग रूपों में होती है। गार्सा-द-तासी के लेखन से शिवसिंह सेंगर के रचनात्मक व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन तथा उनकी ऐतिहासिक-दृष्टि की समीक्षा इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में शिवसिंह सेंगर द्वारा कवियों का जीवन-परिचय जिस आकारादि क्रम से दिया गया है उसमें जायसी की स्थिति तथा उनके स्थान को तलाशने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय का चौथा उप-अध्याय **ग्रियर्सन का इतिहास लेखन और जायसी** है। हिंदी साहित्येतिहास लेखन के क्रम में ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' को मील का पत्थर माना जाता है। इस उप-अध्याय में ग्रियर्सन के इतिहास लेखन की दृष्टि एवं जायसी संबंधी विवेचन दृष्टि का मूल्यांकन किया गया। शुक्लपूर्व साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में मिश्रबंधु-विनोद का नाम सबसे अंत में आता है, लेकिन इस ग्रंथ में सबसे अधिक रचनाकारों का परिचय दिया गया है। इसलिए इस अध्याय का अंतिम उप-अध्याय **मिश्रबंधु का चिंतन एवं जायसी** नाम से लिखा गया है। मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक मिश्रबंधु-विनोद में इस बात की जानकारी दी है कि उनके पास 'पद्मावत' तथा 'अखरावट' की प्रति मौजूद है। इसके आधार पर उन्होंने जायसी के काव्य का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उसे समझने एवं व्याख्यायित करने का प्रयास इस उप-अध्याय में किया गया है।

इस शोध-प्रबंध का तीसरा अध्याय है – **मलिक मुहम्मद जायसी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल**। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय है – **आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा जायसी के काव्य का किया गया मूल्यांकन**। इस उप-अध्याय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा उनसे पहले के आचार्यों द्वारा जायसी साहित्य का मूल्यांकन तथा विवेचन दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय का दूसरा उप-

अध्याय है – **आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जायसी संबंधी महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ और उन स्थापनाओं का परवर्ती हिंदी आलोचना में पिष्ट-पेषण**। इस उप-अध्याय में जायसी की उन स्थापनाओं को शामिल किया गया है जिसकी जायसी संबंधी आलोचना में सर्वाधिक चर्चा हुई है। इसके अलावा इस उप-अध्याय में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि परवर्ती हिंदी आलोचक आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी किन स्थापनाओं से सहमति प्रकट करते हैं तथा किसे युगीन परिप्रेक्ष्य में अप्रसंगिक मानते हैं। इस अध्याय का अंतिम उप-अध्याय है – **आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जायसी संबंधी आलोचना की शक्ति, संभावनाएं और सीमाएं**। इस उप-अध्याय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि की युगीन संदर्भों में प्रासंगिकता तथा उसकी सीमा का विवेचन किया गया। विजयदेवनारायण साही के जायसी संबंधी चिंतन के बाद रामचंद्र शुक्ल की प्रासंगिकता पर इस उप-अध्याय में विचार किया गया है।

इस शोध-प्रबंध का चौथा अध्याय **'जायसी ग्रंथावली' के प्रमुख संपादक और उनकी आलोच्य-दृष्टि** है। इस अध्याय को चार उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस अध्याय में उन्हीं संपादकों को शामिल किया गया है जिनके द्वारा संपादित ग्रन्थों की चर्चा बराबर हुई है। इसके लिए चार संपादकों का चयन किया गया है और उनके द्वारा संपादित ग्रंथ की समीक्षा अलग-अलग उप-अध्यायों में प्रस्तुत की गई है। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय **माताप्रसाद गुप्त** के नाम से लिखा गया है, जिसमें उनके द्वारा संपादित 'पद्मावत' में पाठानुसंधान के माध्यम से आचार्य रामचंद्र शुक्ल से अलग पाठ को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। दूसरा उप-अध्याय है – **वासुदेवशरण अग्रवाल**। इस उप-अध्याय में उनके द्वारा संपादित ग्रंथ तथा उसकी व्याख्या को अन्य संपादकों से तुलनात्मक रूप से अलगाव को चिन्हित कर उसका विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जायसी को भारतीय साहित्य की परंपरा में जो स्थान वासुदेवशरण अग्रवाल ने दिया है उसका विवेचन इस उप-अध्याय में किया गया है। तीसरा उप-अध्याय है – **मनमोहन गौतम**। मनमोहन गौतम द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' में उनके छह ग्रन्थों ('पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'महरि बाईसी', 'चित्र रेखा' और 'मसलनामा') को शामिल किया है। उन्होंने 'पद्मावत' की टीका छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी है। इसमें उनके द्वारा जायसी के काव्य का जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसका मूल्यांकन इस उप-अध्याय में किया गया है। इस अध्याय का अंतिम उप-अध्याय है – **कन्हैया सिंह**। इस

उप-अध्याय में कन्हैया सिंह द्वारा ‘पद्मावत’ ग्रंथ के नामकरण के संबंध में प्रतिपादित पाठ का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उनके द्वारा किए गए पाठानुसंधान को भी इस उप-अध्याय में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

मलिक मुहम्मद जायसी और विजयदेवनारायण साही नाम से इस शोध-प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय लिखा गया है। इस अध्याय में जायसी संबंधी चिंतन की परंपरा में आए नए बदलाव और समाजशास्त्रीय चिंतन पद्धति की जरूरतों को बताया गया है। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय है – **‘जायसी’ संबंधी विजयदेवनारायण साही की स्थापनाएँ और सीमाएं**। इस उप-अध्याय में साही की उन स्थापनाओं को शामिल किया गया है जिसने जायसी को देखने की एक अलग दृष्टि प्रदान की। इसके साथ ही जायसी और आचार्य शुक्ल के विभिन्न मतभेदों पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। साही की स्थापनाओं की एक सीमा भी है जिसे इस अध्याय में उल्लिखित किया गया है। दूसरा उप-अध्याय **परवर्ती आलोचक वागीश शुक्ल का अवदान** नाम से लिखा गया है। वागीश शुक्ल ने जायसी पर कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखी है लेकिन उनके लेख ‘आलोचना पत्रिका’ तथा ‘कथा पत्रिका’ में प्रकाशित हुए हैं। इन लेखों के आधार पर यह पता चला कि जायसी की विवेचना नई ढंग से प्रस्तुत करने का काम वागीश शुक्ल ने भी किया है। हालांकि उनका सम्पूर्ण चिंतन आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चिंतन का एक तरह से विस्तार ही है, लेकिन यह विस्तार नवीन दृष्टि से हुआ है, इसे दिखाने का प्रयास इस उप-अध्याय में किया गया है।

इस शोध-प्रबंध का अंतिम अध्याय है – **उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य और जायसी का काव्य**। इस अध्याय में उत्तर-उपनिवेशवाद के उदय की पृष्ठभूमि, उसके वैश्विक परिप्रेक्ष्य तथा चिंतन जगत के विभिन्न अनुशासनों पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को दर्शाया गया है। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय है – **उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य से आशय**। इस उप-अध्याय में स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही विउपनिवेशीकरण के लिए प्रयास तथा बौद्धिक वर्ग में इसके मुखालफत की कुलबुलाहट को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। इस उप-अध्याय में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जिन विचारकों एवं साहित्यकारों से सबसे पहले औपनिवेशिक-सत्ता से संघर्ष का प्रयास किया उनको शामिल किया गया है। उनके चिंतन का प्रभाव आने वाले साहित्य समीक्षकों में कैसा दृष्टिगोचर होता है इसे परखने का काम इस उप-अध्याय में किया गया है। इस उप-अध्याय

में उन विमर्शों को भी रेखांकित किया गया है जिसका उदय मिशेल फूको के चिंतन के कारण माना जाता है। इस अध्याय का दूसरा उप-अध्याय है – **हिंदी में समकालीन विमर्शकार और जायसी का काव्य**। इस उप-अध्याय में जायसी काव्य का मूल्यांकन आधुननिक विमर्श के आईने में किया गया है। इन विमर्शकारों ने केवल स्त्री पक्ष पर ज्यादा बल दिया है। इस उप-अध्याय में चार आलोचकों का चयन किया गया है जिन्होंने जायसी संबंधी चिंतन को नया आयाम दिया है। इसमें प्रो. नित्यानंद तिवारी, प्रो. विजय बहादुर सिंह, डॉ. राजकुमार और प्रो. रवि रंजन का नाम शामिल है। इस उप-अध्याय में इन चिंतकों के जायसी संबंधी चिंतन का विवेचन किया गया है।

मैं अपने वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी का आभारी हूँ जिन्होंने विषय चयन से लेकर अब तक शोध से संबंधित जब-जब आवश्यकता हुई, आचार्य ने मेरा सहयोग किया। मेरे शोध-निर्देशक 'सहृदयता की मूर्तिमान सत्ता' गुरुवर डॉ. भीम सिंह, जिन्हें देखते ही तुलसी की यह पंक्तियाँ अनायास याद आती हैं- "गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन॥" तो इस शोध-प्रबंध में जो भी बेहतर बन पड़ा है उनका दिया है और जो कमियाँ या गलतियाँ रह गई हैं, वह नितांत मेरी हैं। मेरे विषय के मर्मज्ञ प्रो. गजेंद्र कुमार पाठक जिनका सहज स्नेह और मार्गदर्शन मुझे हमेशा मिला, इसके साथ ही प्रो. वी. कृष्ण, प्रो. रवि रंजन, प्रो. आर. एस. सर्राजु, प्रो. आलोक पाण्डेय, प्रो. अन्नपूर्णा सी., डॉ. एम. श्याम राव, डॉ. जे. आत्माराम, डॉ. एम. अंजनेयलु तथा अन्य शिक्षकों का आभारी हूँ जिनसे मेरा शोध जीवन ऊर्जा लेता रहा। साथ ही अपने प्यारे मित्रों का आभारी हूँ, जिनका सहयोग इस प्रबंध को पूरा करने में मिला, अरुण कमल की इन पंक्तियों के साथ 'अपना क्या है इस जीवन में सब कुछ लिया उधार/ सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवल धार'।

स्नेहमयी माँ के प्रति आभार जिनके स्नेह और उत्साहवर्धन ने लगातार ऊर्जा और विश्वास प्रदान किया। मेरी बहन अनामिका का हार्दिक आभार, जिससे आज भी बहुत प्रोत्साहन और जरूरी परामर्श मिलता रहता है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष और जाने-अनजाने जो भी इस यात्रा में सहयोगी रहे उन सबको हृदय से आभार !

पहला अध्याय

मलिक मुहम्मद जायसी की रचनात्मक-चेतना का विकास

1.1 भूमिका

1.2 जायसी का जीवन-वृत्त

1.3 जायसी की रचनात्मक-चेतना का विकास

1.4 जायसी की प्रमुख रचनाओं की समीक्षात्मक व्याख्या

1.5 निष्कर्ष

1.1 भूमिका

हिंदी साहित्य के सूफी काव्यधारा के सबसे प्रसिद्ध कवि 'मलिक मुहम्मद जायसी' हैं। ऐसा माना जाता है कि जायसी भक्तिकाल के अन्य कृतिकारों की तरह भक्त पहले हैं, कवि बाद में। यह एक बहस का मुद्दा बना हुआ है। वहीं दूसरी ओर जायसी महान कवि हैं, उनमें कवि के सभी गुण विद्यमान हैं। उन्होंने सामाजिक समस्या को भी अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है लेकिन उसका रूप दूसरा है। उन्होंने 'प्रेम के पीर' को शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। मलिक मुहम्मद जायसी एक अमर कवि और हिंदी साहित्य के सूफी काव्यधारा के सर्वाधिक प्रिय कवि हैं। उनके जीवन के विषय में अनेक तरह के मत-मतांतर हैं। तथा उनकी रचनाओं में संबंध में अनेक विचार हैं। इन विभिन्न मतों और विचारों के आलोक में एक समन्वित और समावेशी दृष्टि विकसित करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

किसी रचनाकार का जीवन-वृत्त लिखना जितना कठिन है उतना ही उलझाव भी है। उसके रचना का विवेचन और मूल्यांकन कुछ आसान लगता है। रचनाकार के जीवन की प्रामाणिक जानकारी के अभाव में यह और दुःसाध्य कार्य हो जाता है। लेकिन रचना के मूल्यांकन के लिए यह जरूरी है कि लेखक के व्यक्तिगत जीवन और रचनात्मक जीवन की पड़ताल तटस्थ दृष्टि से हो। चूंकि मनुष्य के चिंतन का विकास उसके द्वारा जिए गए जीवन के भीतर से होता है इसलिए यह जरूरी है कि उसके जीवन-वृत्त का मूल्यांकन पैनी दृष्टि से की जाए। मार्क्स तथा एंगेल्स ने लिखा है कि, "जीवन चेतना द्वारा निर्धारित नहीं होता अपितु चेतना जीवन द्वारा निर्धारित होती है।"[1] जब चेतना के निर्धारण में जीवन की महत्ती भूमिका है तब यह संभव है कि रचना – कर्म में रचनाकार का जीवन-संघर्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो। इस दृष्टि से मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन – वृत्त के साथ ही साथ उनके रचनात्मक जीवन की समीक्षा भी तटस्थ होकर किया जाए। इस चिंतन के मद्देनजर इस अध्याय को उनके व्यक्तित्व

[1] मार्क्स/एंगेल्स.(2006).साहित्य और कला.(लखनऊ),राहुल फाउंडेशन. पृ. सं. – 47

और कृतित्व पर केंद्रित किया गया है। इस अध्याय में जायसी के जीवन से जुड़ी लगभग सभी प्रमुख घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जायसी के प्राप्य ग्रन्थों की समीक्षा भी इस अध्याय में की गयी है।

1.2 जायसी का जीवन-वृत्त

नाम

जायसी के नाम के पहले 'मलिक' उपाधि लगी होने के कारण कहा जाता है कि उनके पूर्वज ईरान से आए थे और वहीं से उनके नामों के साथ जमींदारसूचक पदवी लगी आ रही थी किन्तु उनके पूर्व पुरुषों के नामों की कोई तालिका अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। उनके पिता का नाम मलिक राजे अशरफ बताया जाता है और कहा जाता है कि वे मामूली जमींदार थे और खेती करते थे। इनके नाना का नाम शेख अल-हदाद खाँ था। स्वयं जायसी को भी खेती करके जीवन – निर्वाह करने का शौक था। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'मलिक' शब्द का प्रयोग उनके किसी निकट संबंधी के 'बारह हजार का रिसालदार' होने के कारण किया जाता होगा अथवा यह कि संभवतः स्वयं भी उन्होंने कुछ समय तक किसी सेना में काम किया होगा, यह बात प्रमाणों के अभाव में संदिग्ध हो जाती है। सैय्यद आले का मत है कि, "मोहल्ला गौंरियाना के निगलामी मलिक खानदान से थे और उनके पुराने संबंधी मुहल्ला कंचाना में बसे थे।"[2] उन्होंने यह बतलाया है कि जायसी का मलिक कबीर नामक एक पुत्र भी था। मलिक मुहम्मद जायसी कुरूप और एक आँख से काने थे। कुछ लोग उन्हें बचपन से ही काने मानते हैं जबकि अधिकांश लोगों का मत है कि चेचक के प्रकोप के कारण वे कुरूप हो गए थे और इसी कारण इनकी एक आँख चली गयी थी। उसी ओर का बायाँ कान भी नाकाम हो गया था। उन्होंने स्वयं लिखा है कि,

"मुहमद बाईं दिसि तजा एक सरवन एक आंखि"[3]

[2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 45, पृ. सं. – 49

[3] पद्मावत, पृ. सं. – 369

जायसी के व्यक्तित्व को खँगालने पर यह सिद्ध होता है कि जायसी का शरीर प्रारंभ में अतिसुंदर था। बाद में ही उनके शरीर में विकार आया होगा। इस बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है –

"एक नैन कवि मुहम्मद गुनी, सोइ विमोह जेइ कवि सुनी ॥

चाँद जइस जग विधि औतारा, दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा ॥

x x x x x

एक नैन जस दरपन, औ तेहि निरमल भाउ।

सब रुपवंत पाँव गहि, मुख जोवहीं कई चाउ ॥"[4]

उपर्युक्त पंक्तियों से यह अनुमान होता है कि बाएँ कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। एक बार जायसी शेरशाह के दरबार में गए, तो बादशाह ने इनके कुरूप मुंह को देखकर हंस दिया। जायसी ने स्थिर भाव से पूछा –

"मोहि का हंससि कि कोहारहि ?"[5]

अर्थात् "तुम मुझ पर हँस रहे हो या उस कुम्हार पर हँस रहे हो, इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा मांगी।"[6] जायसी एक संत प्रकृति के गृहस्थ थे। इनके सात पुत्र थे लेकिन दीवार गिर जाने के कारण सभी उसमें दबकर मर गए थे। तभी से इनमें वैराग्य की भावना जाग उठी और ये फकीर बन गए।

जन्म

जायसी की जन्म-तिथि के बारे में विद्वानों में बहुत ही ज्यादा मतभेद है। जायसी की किसी उपलब्ध रचना के अंतर्गत उसकी निश्चित जन्मतिथि अथवा जन्म-संवत का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता है। उन्होंने अपने 'आखिरी कलाम' काव्य में केवल इतना ही कहा है कि -

---

[4] पद्मावत, पृ. सं. – 20

[5] पद्मावत, पृ. सं. - 5

[6] पद्मावत में काव्य संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. सं. – 11

"भा अवतार मोर नौ सदी।

तीस बरिस ऊपर कवि बदी॥"[7]

इस आधार पर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि उनका जन्म संभवतः 800 हिजरी और 900 हिजरी के मध्य, अर्थात् सन् 1397 ई. और 1494 ई.के बीच किसी समय हुआ होगा तथा तीस वर्ष की अवस्था पा चुकने पर उन्होंने काव्य रचना प्रारम्भ किया होगा। परंतु जायसी के जन्मतिथि के बारे में अपने – अपने अनेक मत व्यक्त किए हैं। जिनमें से पाँच मत इस प्रकार से हैं। पहले मत से हमें यह पता चलता है कि जायसी का जन्म 900 हिजरी अर्थात् 1495 ई. में हुआ था। "इस मत को सहमति देने वालों में से विद्वान हैं – आचार्य रामचंद्र शुक्ल"[8] डॉ. जयदेव"[9] आदि। दूसरा मत यह है कि जायसी का जन्म 906 हिजरी में हुआ था। इस मत को सहमति देने वाले विद्वानों में से हैं – डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ तथा डॉ. विमल कुमार जैन। डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ ने 'नव सदी' का अर्थ 'नई सदी' माना है और जायसी के 'आखिरी कलाम' से भी यह स्पष्ट होता है –

"नौ सौ बरस छतीस जब भए।

तब यही कथा के आखर कहे॥"[10]

इसके आधार पर डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ ने 936 हिजरी को 'आखिरी कलाम' का रचनाकाल माना है। इसके साथ ही जायसी द्वारा लिखित 'तीस बरिस ऊपर बदी' पंक्ति के आधार पर यह सिद्ध किया है कि तीस वर्ष की आयु में जायसी ने अपने 'आखिरी कलाम' की रचना की थी।[11] इसी मत की सहमति डॉ. विमल कुमार जैन ने भी की है।[12] तीसरे मत से यह पता चलता है कि 870 हिजरी में जायसी का जन्म हुआ था। इस मत के प्रवर्तक डॉ. गोविंद त्रिगुणायत हैं। उनका कथन है कि "आखिरी कलाम की पंक्तियों का सीधा-साधा मत यही है कि उनका जन्म

[7] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 304
[8] हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 99
[9] सूफी महाकवि जायसी - डॉ. जयदेव, पृ. सं. – 31
[10] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. - 307
[11] मलिक मुहम्मद जायसी – डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ, पृ. सं. – 16
[12] सूफी मत और हिंदी साहित्य – डॉ. विमल कुमार जैन, पृ. सं. – 116

900 हिजरी बतलाया जाए तो इसमें तीस वर्ष ऊपर समझना चाहिए। उनका वास्तविक जन्म-काल 870 हिजरी यानी 1465 ई. हैं।"[13] इन सबके बाद हम जायसी के प्रमुख एवं प्रसिद्ध 'पद्मावत' के निर्माण काल के आधार पर कुछ अंदाजा लगा सकते हैं। जैसे

"सन नौ सै तैतालीस अहै।

कथा आरंभ बैन कवि कहै।।"[14]

इसके आधार पर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि जायसी ने तीस वर्ष की अवस्था पा चुकने पर काव्य – रचना प्रारंभ किया होगा। 'पद्मावत' का रचनाकाल उन्होंने 947 हिजरी अर्थात् 1540 ई. बतलाया है और उस समय जायसी वृद्ध हो चुके थे। 'पद्मावत' के अन्तःसाक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि 'पद्मावत' जायसी की वृद्धावस्था की रचना है। 'पद्मावत' के अंत में जायसी ने अपनी वृद्धावस्था का उल्लेख भी किया है –

"मुहम्मद बिरिध बैएस अब भई।

जोबन हुत जो अवस्था गई॥

बाल जो गएउ कै खीन सरीरु।

दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू॥

दसन गए कै तुचा कपोला।

बैन गए दै अनरुचि बोला।।

बुधि गई हिरदय बौराई।

गरब गएउ तरहुंड़ सिर नाई॥

सरवन गए ऊंच दै सुना।

[13] जायसी का पद्मावत, काव्य और दर्शन – डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, पृ. सं. – 10

[14] पद्मावत – मलिक मुहम्मद जायसी, पृ. सं. – 10

गारौ गएउ सीस भा धुना॥

भंवर गएउ केसन्ह दै भुवा।

जोबन गएउ जियत जनु सुवा॥

तब लगि जीवन जोबन साथा।

पुनि सो भिंचु पराए हाथा॥

बिरिधि जो सीस डोलावै, सीस भूनै तेहि रीस।

बढ़े आठे होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस॥"[15]

यह भी उल्लेखनीय है कि सैय्यद हसन अस्करी को मनेर शरीफ से 'अखरावट' की प्रति प्राप्त हुई। इसके आधार पर 'अखरावट' का रचनाकाल 911 हिजरी प्रमाणित होता है और यह सिद्ध होता है कि 'अखरावट' जायसी की प्रथम रचना है जो 911 हिजरी अर्थात् 1505 ई. में रची गई थी। अगर हम 911 हिजरी में से 30 हिजरी कम कर दें तो 881 हिजरी अर्थात् 1476 ई. होता है। जायसी की जन्मतिथि को जानने के लिए पहले हम उनकी मृत्यु तिथि निश्चित करते हैं। काजी नसरुद्दीन हुसैन ने जायसी का मृत्यु काल रजब 949 हिजरी अर्थात् सन् 1542 बताया है।[16] इस प्रकार से अगर हम देखें तो जायसी की अवस्था 68 वर्ष होती है, जो स्पष्टतः वृद्धावस्था रही होगी। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कह सकते हैं कि जायसी 881 हिजरी अर्थात् 1476 ई. में तथा मृत्यु 68 वर्ष की अवस्था में 949 हिजरी अर्थात् 1542 ई. में हुई थी।

जन्म-स्थान

जायसी के जन्म स्थान को लेकर भी लोगों में काफी मतभेद व्याप्त है। कुछ लोग उनको जायस नगर के निवासी बताते हैं। इस संबंध में जायसी ने खुद लिखा है –

---

[15] पद्मावत – मलिक मुहम्मद जायसी, पृ. सं. – 14

[16] जायसी की विशिष्ट शब्दावली का विश्लेषणात्मक अध्ययन – डॉ. इन्दिरा कुमारी सिंह, पृ. सं. – 15

"जायसी नगर मोर अस्थानू।
नगर क नाँव आदि उदयानू॥
तहाँ दिवस दस पहुने आएऊँ।
भा बैराग बहुत सुख पाएऊँ॥"[17]

इससे यह भी पता चलता है कि उस नगर का प्राचीन नाम 'उदयान' था। वहाँ वे एक 'पहुने' जैसे दस दिनों के लिए आए थे, अर्थात् उन्होंने अपना नश्वर जीवन प्रारम्भ किया था अथवा जन्म लिया था और फिर वैराग्य हो जाने पर वहाँ उन्हें बहुत सुख मिला था।

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि जायस नाम का एक नगर उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में आज भी वर्तमान है, जिसका पुराना नाम 'उद्यान नगर' 'उद्यानगर' या 'उज्जालिक नगर' बतलाया जाता है तथा उसके 'कंचाना खुर्द' नामक मुहल्ले में मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म स्थान होना कहा जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि जायसी की जन्म भूमि गाजीपुर में कहीं हो सकती है किंतु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। जायस के विषय में कवि ने अन्यत्र भी कहा है –

"जायस नगर धरम अस्थानू।
तहवाँ यह कबि कीन्ह बखानू॥
औ बिनती पंडितन्ह सों भजा।
टूट संवारेहु मेर एहु सजा॥"[18]

इससे पता चलता है कि वह उस नगर को 'धर्म का स्थान' समझते थे और वहाँ रहकर उन्होंने अपने काव्य 'पद्मावत' की रचना की थी। यहाँ पर नगर का 'धर्म स्थान' होना कदाचित यह भी सूचित करता है कि जनश्रुति

[17] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 306
[18] पद्मावत – मलिक मुहम्मद जायसी, पृ. सं. – 22

के अनुसार वहाँ उपनिषदकालीन उद्दालक मुनि का कोई आश्रम था। गार्सा-द-तासी नामक फ्रेंच लेखक का तो यह भी कहना है कि "जायसी को प्रायः 'जायसीदास' के नाम से अभिहित किया जाता है।"

जायसी की बाल्यावस्था

जायसी को बचपन में चेचक निकली थी जिससे उनके माता-पिता को काफी सदमा पहुंचा। जायसी की माँ जायसी से काफी प्रेम करती थीं। उन्होंने जायसी को अन्यत्र पवित्र पीर-पिराने के मजार पर ले जाकर मन्नतें मानने लगीं। अंततः जायसी की जान बच गयी परंतु उनकी बाईं आँख और बायाँ कान धीरे-धीरे हमेशा के लिए खराब होता चला गया। उन्होंने 'पद्मावत' में कहा भी है –

"मुहमद बाईं दिसि तजी, एक सरवन एक आंखि।

जब ते दाहिन होई, मिला बोलु पपीहा पांखीं॥"[19]

अर्थात् जब से प्रियतम दाहिने होकर मिला, तब से मुहम्मद ने बाईं दिशा का सुनना और देखना छोड़ दिया।

दीन-हीन अवस्था

"जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गए और साधु-फकीरों के साथ दर-दर भटकते फिरते थे। जायसी ने बचपन के कुछ दिन अपने ननिहाल मानिकपुर में गुजारे। आपको एक साथ कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक तो अनाथ, दीन-हीन अवस्था, दूसरे साधु-फकीरों का संग। इनके साथ इनकी तीव्र-बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम, इन सभी ने मिलकर आपको अंतर्मुखी और चिंतनशील बना दिया। आपने अपनी सारी शक्ति परम सत्ता की ओर लगा दी। संयोगवश आपको इसमें कामयाबी भी मिली।"[20]

[19] पद्मावत – मलिक मुहम्मद जायसी, पृ. सं. – 369

[20] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी, भाग – 1, पृ. सं. – 49

जायसी के विषय में मीरहसन दहलवी ने अपनी मसनवी 'रमूज़े-उल-आरफीन' में लिखा है –

"थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पद्मावत जिन्होंने हे लिखी॥
मर्दे आरिफ़ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दरयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फैजआब॥
साफ बातिन थे वह और मस्त-अलमस्त।
लेकिन दुनिया तो है, जाहिर परस्त॥
थे बहुत बदशक्ल और वह बदकवी।
देखते ही अकबर उनको हंस पड़ा॥
जो हंसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होकर चश्मेतर॥
हंस पड़े माटी पर ऐ तुम शहरयार।
याकि मेरे पर हँसे अख़्तियार॥
कुछ गुनाह मेरा नहीं ऐ बादशाह।
सुर्ख बासन तु हुआ और मैं सियाह॥
असल में माटी तो है सब एक जात।
अख़्तियार उसका है जो है उसके साथ॥
सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर।

अलगरज उनको ब एजाजे तमाम।

उनके घर भिजवा दिया फिर वस्ल लाम ॥

साहबे तासीर हैं जो ऐ हसन।

दिल पर करता है असर उसका सुखन ॥"[21]

"चाहे यह दिल्ली का बादशाह अकबर हो चाहे अवध का कोई छोटा राजा अकबर, चाहे हुमायूँ अथवा यह जनश्रुति ही क्यों न हों, किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि जायसी का बाह्य रूप आकर्षक न था। वे काने और कुरूप अवश्य थे।"[22]

गृहस्थ-जीवन

"मलिक मुहम्मद जायसी एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से ही ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के माने जाते थे। उनकी यह आदत थी कि जब वह अपने खेतों में होते, तो अपना खाना वहीं मंगा लेते थे। वह अपना खाना अकेले कभी नहीं खाते थे। इस क्रम में जो भी आसपास मिलता, उसे बुलाकर अपने साथ बैठाकर खाना खिलाते थे। एक बार वह अपना खाना लेकर काफी देर तक बैठे रहे और किसी के आने का इंतजार करते रहे। बहुत देर के बाद एक कोढ़ी दूर दिखाई दिया। जायसी ने उसे अपने पास बुलाया और बड़े प्यार से अपने साथ खाने को कहा और दोनों एक ही बरतन में खाना खाने बैठ गए। दूसरे व्यक्ति के शरीर से कोढ़ चू रहा था। उसके शरीर का थोड़ा मवाद उसके खाने में गिर गया। जायसी ने उस अंश को खुद खाने के लिए उठाया, पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और स्वयं खाने को कहा। जायसी को साफ हिस्सा खाने को कहा। जायसी ने झट से उस अंश को खा लिया। तत्पश्चात वह कोढ़ी वहाँ से अचानक अदृश्य हो गया इस घटना के

[21] चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी प्रेम काव्य) (सं.) – पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 36
[22] वही, पृ. सं. – 37

उपरांत जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक हो गयी।"[23] उक्त घटना की ओर संकेत 'अखरावट' के इस दोहे में दिखता है –

"बुंदहिं समुद समान, यह अचरज कासों कहौं।

जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महौं॥"[24]

जायसी एक सच्चे भक्त थे। वे बड़े ही सच्चरित्र, कर्तव्य-निष्ठ और गुरु भक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अपार थी। उसका विश्वास था कि परम ज्योति स्वरूप उस जगत के करतार के नियंत्रण में ही समस्त सृष्टि वर्तमान है, गतिमान है। वे महान संत थे। सहजता, सहृदयता, सारग्रहिता, लोक और काव्य का गहन अध्ययन, आडंबरहीनता, संयम और पवित्र भक्ति उनके चरित्र के विशेष आकर्षण थे। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते थे। वे स्पष्ट कहते थे –

"हौं सब कबिन्ह केर पछिलागा।

किछु कहि चला तबल देई डागा॥"[25]

उनका कहना है कि मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नन्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर बढ़ाकर कुछ कहने को चल पड़ा हूँ। इस बात को सभी विद्वानों ने साफ कर दिया है कि उनके समस्त काव्य में एक उक्ति भी निज के विषय में गर्व की नहीं है। जायसी इस्लाम धर्म और पैगंबर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के लिए अनेक मार्गों को स्वतः स्वीकार किया है। इन असंख्य मार्गों में वह मुहम्मद साहब के मार्ग को सरल एवं सुगम कहते थे –

"विधिना के मारग हैं तेते।

सरग नखत, तन रोवां जेते॥

---

[23] पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. सं. - 7

[24] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 276

[25] चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी प्रेम काव्य) – (सं.) पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 37

तेहि मह पंथ कहौं भल गाई।

जेहि दुनौं जग छाज बढ़ाई॥

सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा।

है निरमल कविलास बसेरा॥"[26]

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुंचे हुए फकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखने वाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण उनमें पूरा – पूरा समाहित था। उनकी वह उदारता थी, जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार के महत्त्व को स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था। वे जो कुछ जानते थे, उसे नम्रतापूर्वक पंडितों का प्रसाद मानते थे।

जायसी के पुत्र

ऐसा कहा जाता है कि जायसी ने विवाह भी किया था और उनके सात पुत्र हुए थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "एक बार उनके सभी पुत्र मकान के अंदर खाना खा रहे थे, तभी अचानक मकान की छत गिर पड़ी, जिसके नीचे सातों पुत्र दबकर मर गए। इस घटना से जायसी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह संसार से विरक्त होकर एक फकीर की तरह जीवन यापन करने लगे।"[27]

विराग का कारण

जायसी के विराग का कारण भी कुछ इसी प्रकार की घटना ही होगी, जिसने उन्हें प्रेमानुभाव के एक नवीन लोक में पहुंचा दिया, उनके हृदय में विराग का एक स्रोत फूट पड़ा। उनका हृदय किसी अपूर्व ज्योति से उद्भासित हो उठा। उसी के रूप नयनों में समा गया। सर्वत्र उसी सौंदर्य और प्रेम सत्ता के दर्शन होने लगे। संसार के मापदंड

[26] सूफी महाकवि जायसी – डॉ. जयदेव, पृ. सं. – 58

[27] जायसी ग्रंथावली की भूमिका – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. - 5

बदल गए। विषयों से मन हट गया। हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उसे परम ज्योति या रूप की साक्षात प्राप्ति हो। जायसी ने अपनी उस वैराग्य अवस्था का सच्चा वर्णन किया है –

"तहाँ दिवस दस पहुने आएऊँ।
भा बैराग बहुत सुख पाएऊँ॥
सुख भा सोचि एक दुख मानौं।
ओहि बिनु जिबन मरन कै जानौं॥
नैन रूप सो गएउ समाई।
रहा पूरि भरि हिरद छाई॥
जहवैं देखौं तंहवैं सोई।
और न आव दिस्टि तर कोई॥
आपुन देखि देखि मन राखौं।
दूसर नाहिं सो कासों भाखों॥
सबै जगत दरपन कै लेखा।
आपन दरपन आपुहि देखा॥"[28]

उपर्युक्त से यह आशय स्पष्ट होता है कि वैराग्य की तीव्र धारा के स्पर्श से एक बार ही उनका आनंद प्लावित हो गया। प्रियतम का जो रूप नयनों में समा गया था, वही भीतर और बाहर का आनंद था और यही मिलन की वेदना का कारण बना। सचमुच वैराग्य के अनंतर जायसी को महान आत्मिक सुख मिला होगा। उन्होंने परमात्म-तत्व के दर्शन अवश्य किए थे। उसे उन्होंने विश्व के कण – कण में देखा और अनुभव किया था।

[28] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 306

मित्र

"जायसी ने पद्मावत में अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है, जिनके नाम हैं – मलिक यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख ।"[29] उन्होंने अपने चारों मित्रों का उल्लेख बड़े ही उल्लासित कंठ से किया है। 'पद्मावत' के आरंभ में ही जायसी ने इन चारों मित्रों का बखान किया है –

"चार मीत कवि मुहमद पाए।
जोरि मिताई सरि पहुंचाए॥
यूसुफ मलिक पण्डित और ज्ञानी।
पहिलैं भेद बात वै जानी॥
पुनि सलार कादिम मतिमाहाँ।
खांडे दान उभे निति वहां॥
मियां सलोने सिंध बरियारू।
बीर खेत रन खडक जुझारू॥
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाना।
किए आदेस सिद्ध बड़ माना॥
चारिउ चतुर दसौ गुन पढ़े।
औं संजोग गोसाई गढ़े॥
बिरिछ होइ चंदन पासा।
चंदन होइ बेद तेहि बासा॥
मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए जौ एकै चित्त।

[29] पद्मावत – (सं.) डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. – 16

एहि जग साध जो निबाहा, ओहि जग बिछुरन कित्त ।।"[30]

अर्थात् यहाँ जायसी अपने मित्रों का, जो संख्या में चार थे, परिचय दे रहे हैं। जायसी ने इनसे मित्रता जोड़कर उन्हें भी अपने ही समान महान बना दिया अर्थात् जायसी से मित्रता कर वे भी महान बन गए। इनमें से पहले मित्र थे मलिक यूसुफ, जो पण्डित और बहुत बड़े ज्ञानी थे। उन्हीं ने सबसे पहले रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया था, अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान को जाना था। दूसरे मित्र सालार कादिम थे जो अत्यंत बुद्धिमान होने के साथ ही इतने बड़े योद्धा थे कि उनकी भुजाएँ नित्य दूसरों से युद्ध करने के लिए उठती अर्थात् फड़कती रहती थीं। तीसरे मित्र मियां सलोने थे, जो सिंह के समान बलवान थे। वे रणक्षेत्र में महान योद्धा के समान तलवार चलाया करते थे। चौथे मित्र बड़े शेख जी थे, जो चारों ओर बड़े भारी सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध थे। बड़े – बड़े सिद्ध उन्हें मानते थे और वे उन्हें आदेश दिया करते थे। ये चारों मित्र भक्ति की चारों दशाओं – कर्म, उपासना, ज्ञान और सिद्धावस्था और चौदह विधाओं को जानने वाले विद्वान थे। ईश्वर से संयोग से इन चारों को परस्पर मित्र बनने के लिए ही उत्पन्न किया था। जो वृक्ष के चंदन के वृक्ष के पास खड़े होते हैं, उनके शरीर में चंदन की सुगंध बस जाने से वे चंदन बन जाते हैं। भाव यह है कि उसी प्रकार जायसी से मित्रता कर, उनके सत्संग के कारण उनके ये चारों मित्र भी उन्हीं के समान गुणी और महान बन गए थे।

जायसी कहते हैं कि जब ये चारों मित्र मुझसे मिलकर एक ही जैसे विचारों वाले बन परस्पर एकाकार से हो उठे और इस संसार में हमारा सबका साथ भली – भांति निभ गया तो यह कैसे हो सकता है कि परलोक में हम परस्पर बिछुड़ जाएंगे ?

जायसी के चार मित्रों में से दो यूसुफ मलिक पट्टी कंचाना के रहने वाले थे। सालार खादिम सालार पट्टी के रहने वाले थे। ये अत्यंत बुद्धिमान, तलवार के धनी, जमींदार और दानी थे। ये सभी मित्र बड़े ही सिद्ध पुरुष थे।

[30] पद्मावत (संक्षिप्त) – (सं.) राजनाथ शर्मा, पृ. सं. – 14

जायसी के गुरु

जायसी ने अपनी कुछ रचनाओं में अपनी गुरु परंपरा का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है, "सैय्यद अशरफ, जो एक अत्यंत प्रिय संत थे मेरे लिए उज्ज्वल पंथ के प्रदर्शक बने और उन्होंने प्रेम का दीपक जलाकर मेरा हृदय निर्मल कर दिया। उनका चेला बन जाने पर मैं अपने पाप के खरे समुद्री जल को उन्हीं की नाव द्वारा पार कर गया और मुझे उनकी सहायता से घाट मिल गया, वे जहांगीर चिश्ती चाँद जैसे निष्कलंक थे, संसार के मखदूम (स्वामी) थे और मैं उन्हीं के घर का सेवक हूँ –

"सैय्यद असरफ पीर पियारा।
तिंह मोहिं पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हिये प्रेम कर दिया।
उठि जोति, भा निरमल हीया॥
मारग हुता अँधियार जो सूझा।
भा अंजोर, सब जाना बूझा॥
खार समुद पाप मोर मेला।
बोहित-धरम लीन्ह कै चेला॥
उन्ह मोर कर बूड़त कै गहा।
पायौ तीर भात जौ अहा॥
जा कह ऐस होइ कंधार।
तुरत बेगि लो पावै पारा॥
दस्तगीर गाढ़े कै साधी।
बह अवगाह, दीन्ह तेहि हाथी॥
जहांगीर वै चिस्ती, निहकलंक जस चाँद।

वै मखदूम जगत कै हौं ओहि घर कै बांद ॥"[31]

सैय्यद अशरफ ऐसे संत हैं, जिन्हें सब प्यार करते हैं। उन्हीं ने मुझे यह उज्ज्वल पंथ प्रदान किया, दिखाया। उन्होंने मेरे हृदय में प्रेम का दीपक जलाया, अर्थात् मेरे हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न की। उस दीपक से जो ज्योति निकली, उसने मेरे हृदय को निर्मल बना दिया। पहले मेरा जो रास्ता अंधकार से भरा था, वह अब दिखाई देने लगा। उस रास्ते पर चारों ओर ज्ञान रूपी प्रकाश छा गया और सब कुछ जाना बुझा हुआ सा दिखाई देने लगा। अर्थात् मेरा भ्रमन्धकार नष्ट होकर मुझे ज्ञान का प्रकाश मिल गया। मेरे पास भरे कर्मों ने मुझे इस संसाररूपी खारे समुद्र में पटक रखा था। संत सैय्यद अशरफ ने मुझे अपना शिष्य बनाकर धर्म की नौका पर चढ़ा लिया। मैं किनारे पर पहुँच कर अपने घाट को पा लिया, अर्थात् मुझे मेरा लक्ष्य प्राप्त हो गया। जिसका ऐसा कर्णधार अर्थात् सहायता देने वाला मार्ग-दर्शक हो, वह तुरंत तेजी के साथ इस संसार रूपी सागर को पार हो जाता है। ऐसे वह गुरु संकट में हाथ पकड़ कर सहायता करने वाले साथी के समान हैं। मैं इस अथाह संसार – रूपी सागर में बहता चला जा रहा था, उस समय उन्होंने ही मुझे हाथ का सहारा देकर बचा लिया।

ऐसे वे सैय्यद अशरफ जहांगीर चिश्ती वंश के और चंद्रमा के समान निष्कलंक अर्थात् निर्मल हैं। वे संसार के मालिक हैं और मैं उनके घर का सेवक हूँ।

जायसी के अनुसार सैय्यद अशरफ जहांगीर चिश्ती वंश के थे और चाँद जैसे निष्कलंक थे। वे जगत के मखदूम (स्वामी) थे और मैं उनके घर का सेवक हूँ। उन्होंने एक जगह 'पद्मावत' में कहा है –

"गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा।

चलै उताइल जिन्ह कर खेवा ॥"[32]

---

[31] पद्मावत (संक्षिप्त) – राजनाथ शर्मा, पृ. सं. - 9

[32] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 7

इस पद से स्पष्ट होता है कि जायसी स्वयं को उनके घर का सेवक के रूप में मानते थे। वे आगे कहते हैं –

"होहि घर रतन एक निरमरा।
हाजी सेख सबै गुन भरा॥
तेहि घर दुई दीपक उजियारे।
पंथ देई कहं दैव संवारे॥
सेख मुहमद पुन्यो करा।
सेख कमाल जगत निरमरा॥
दुऔ अचल धुव डोलहि नाहीं।
मेरु लिखिन्द तिन्हहूँ उपराहीं॥
दीन्ह रूप औ जोति गोसाईं।
कीन्ह खम्भ दुइ जग के ताइ॥
दुहूँ खम्भ टेके सब मही।
दुहूँ के भार सिहिटि थिर रही॥
जेहि दरसे और परसे पाया।
पापा हरा, निरमल भई काया॥
मुहमद तहां निचिंत पथ जेहि संग मुरसिद पीर।
जेहि के नाव औ खेवक, बेगि लाग सो तीर॥"[33]

अर्थात् उस सैय्यद अशरफ के घर एक निर्मल रत्न अर्थात् रत्न के समान उज्ज्वल कान्ति वाले एक पुत्र ने जन्म लिया। उनका नाम शेख हाजी रखा गया। वह सारे गुणों से भरपूर था। उन शेख हाजी के घर में विधाता

[33] पद्मावत (संक्षिप्त) – राजनाथ शर्मा, पृ. सं. – 10

ने दो दीपक जलाए। ईश्वर ने संसार को सत्य का मार्ग का ज्ञान कराने के लिए दीपक के समान प्रज्ज्वलित वर्ण वाले दो पुत्र उत्पन्न किए। इनमें से एक पुत्र मुहम्मद पूर्णिमा के चंद्रमा की कला के समान था और दूसरा पुत्र शेख कमाल संसार में निर्मल यश के समान प्रसिद्ध हुआ। ये दोनों पुत्र ध्रुव के समान अटल और अचल थे। वे कभी भी अपनी साधना से विचलित नहीं थे। वे सुमेरु और किष्किंधा नामक पर्वतों से भी अधिक दृढ़ और श्रेष्ठ थे। ईश्वर ने उन्हें अद्भुत रूप और तेज प्रदान किया था। ऐसा प्रतीत होता था मानो विधाता ने उनके रूप में इस संसार को साधे रहने के लिए दो खंभा खड़े कर दिए हों। सारी धरती इन दोनों पुत्रों-रूपी खंभे पर ही टिकी हुई थी। सारी सृष्टि उन दोनों के भार के कारण ही स्थिर बनी रही। अर्थात् सारे संसार का पूरा दारोमदार उन्हीं दोनों पर निर्भर था। जिसने भी इन दोनों भाइयों के दर्शन और चरण-स्पर्श किए, उसके सारे पाप नष्ट हो गए और उसका शरीर निर्मल अर्थात् सारे रोगों से मुक्त और स्वस्थ बन गया।

मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि जिसके साथ ऐसे गुरु और संत हों, अर्थात् जिस पर ऐसे संतों और गुरुओं की कृपा हो, वह निश्चित मन से अपने मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। जिसकी ऐसे धर्म की नौका, और उसे खेने वाले ऐसे संत गुरु हों, वह शीघ्र ही तट पर पहुँच जाता है, अर्थात् उसका जीवन सफल हो उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

जायसी ने अपने मोहदी या महदी गुरु शेख बुरहान का भी उल्लेख किया है और कहा है कि उनका स्थान कालपी नगर था। उनका कहना है कि मैंने खेने वाले महदी की सेवा की है, जिनका सेवक वेग के साथ चलता है। जायसी ने शेख बुरहान महदी को अपना गुरु माना था और अपने को उनका चेला। वे कहते थे कि उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर मेरा पाप धो दिया है और प्रेम के प्याले को स्वयं चखकर उसकी बूंद हमें भी चखा दी है। वे कहते हैं –

"गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा।

चलै उताइल जेहि कर खेवा॥

अगुआ भएउ सेख बुरहानू।

पंथ लाइ मोहि दीन्ह गियानू ॥

अलहदाद भल तेहि कर गुरु।

दीन दुनि रोसन सुरखरु ॥

सैय्यद अहमद के वै चेला।

सिद्ध पुरुस संगम जेहिं खेला ॥

दानियाल गुरु पंथ लखाए।

हजरत ख्वाज खिजिर तिन्ह पाए ॥

भए परसन ओहि हजरत ख्वाजे ।

लइ मेरइ जहं सैय्यद राजे ॥

होहि सेवत मैं पाइ करनी ।

उधरौ जीभ प्रेम कवि बरनी ।

वैसु गुरु हौं चेला, निति बिनबौं भर चेर ।

उन्ह हुति देखइ पावौं दास गोसाइ केर ॥"[34]

अर्थात् गुरु मुहिउद्दीन मेरे मार्गदर्शक नाविक हैं और मैं उनका सेवक हूँ। वे गुरु बड़ी तेजी से अपनी नाव चलाते हैं, अर्थात् अपने शिष्यों को संसार-रूपी सागर से पार करा उन्हें मुक्ति के मार्ग पर डाल देते हैं। शेख-बुरहान उनके मार्गदर्शक अर्थात् गुरु थे। उन्होंने अपने पंथ में मुझे दीक्षित कर, सम्मिलित कर ज्ञान प्रदान किया। उनके भी गुरु संत अलहदाद थे, जो दीन-दुनिया अर्थात् धर्म जे क्षेत्र में और सारे संसार में प्रसिद्ध और तेजस्वी थे। ऐसे वे तेजस्वी संत अलहदाद सैय्यद मुहम्मद के चेले थे, जिनके लिए ईश्वर के साथ साक्षात्कार करना, ईश्वर के दर्शन करना खेल के समान आसान था। गुरु दानियाल ने उन्हें अपने पंथ में दीक्षित कर ज्ञान का मार्ग दिखाया था। हजरत ख्वाजा खिज्र ने इस दानियाल को पाया था। उनसे प्रसन्न होकर हजरत ख्वाजा खिज्र ने उन्हें सैय्यद राजे

[34] पद्मावत (संक्षिप्त) – (सं.) राजनाथ शर्मा, पृ. सं. – 11

हामिदशाह से मिलाने ले गए। गुरुओं की ऐसी प्रसिद्ध परंपरा के उत्तराधिकारी गुरु मुहिउद्दीन की सेवा करने से मुझे यह फल प्राप्त हुआ कि मेरी जीभ खुल गई, अर्थात् मेरी वाणी मुखरित हो गई और मैंने प्रेमकाव्य का वर्णन किया। भाव यह है कि उन्हीं गुरु की कृपा से यह प्रेम कथा कहने में समर्थ हो सका।

ऐसे वे सैय्यद मुहिउद्दीन ही मेरे श्रेष्ठ गुरु हैं, और मैं उनका चेला हूँ। मैं उनका सेवक बनकर नित्य उनकी विनती, उनकी स्तुति गाता रहता हूँ। मैं उनके द्वारा ही, अर्थात् उनकी कृपा से ही भगवान के दर्शन प्राप्त करने में सफल हो सकूँगा।

यहाँ जायसी अपनी प्रसिद्ध गुरु-परंपरा कर वर्णन कर रहे हैं। निज़ामुद्दीन औलिया द्वारा भारत में स्थापित की गई सूफी परंपरा कालांतर में दो शाखाओं में बंट गई थी – मानिकपुर की तथा जायस की। जायसी ने इन दोनों ही शाखाओं के गुरु से ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिए दोनों के प्रति अपना श्रद्धाजनित आभार प्रकट करते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि जायसी के दो गुरु हुए हैं। 'पद्मावत' के अनुसार इनके दोनों गुरुओं की परंपरा इस प्रकार से है –

प्रथम परंपरा

सैय्यद अशरफ जहांगीर चिश्ती
हाजी नूरुल-एन अब्दुल रज्जाक
शेख मुहम्मद (मुबारक) और दूसरा शेख कमाल

द्वितीय परंपरा

सैय्यद राजे
हजरत ख्वाजा खिरिज
शेख दानियल
सैय्यद मुहम्मद
शेख अलहदाद
शेख बुरहान

शेख मुहिउद्दीन महदी।

इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि जायसी के दीक्षा-गुरु अशरफी परंपरा के शाह मुबारक (शेख मुबारक) थे और अधिक समय इन्हीं के सेवा में व्यतीत किया था तथा इन्हीं की कृपा से जायसी अपनी साधना में सफल हुए थे। साथ ही शेख मुहिउद्दीन से भी जायसी को उपदेश प्राप्त हुआ था। अतः वह भी जायसी के लिए परम सम्माननीय हुए हैं। इस प्रकार से देखा जाए तो जायसी के दो गुरु प्रसिद्ध हैं।

जायसी का खुद के बारे में कथन

जायसी सैय्यद अशरफ को प्यारे पीर मानते हैं और स्वयं को उनके द्वारा मुरीद बताते हैं। उनकी काव्य शैली में –

"सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला।
धोवा पाप पानि सिर मेला॥
पेम पियाला पंथ लखावा।
आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा॥
सो मधु चढ़ा न उतरइ कावा।
परेउ मांटि पाएऊँ फेरि आवा॥"[35]

एक स्थान पर वे अपने बारे में काफी विनम्र भाव से कहते हैं –

"मुहमद मलिक पेम मधुभोरा।
नाऊँ बड़ेरा दरसन थोरा॥
जेंव-जेंव बुढ़ा तेंव-तेंव नवा।

[35] चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रेमकाव्य) – (सं.) पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 74

खुदी कई खयाल न कवा॥

हाथ पियाला साथ सुराही।

पेम पीतिलइ ओर निबाही॥

बुधि खोई औ लाज गँवाई।

अजहूँ अइस धरी लरिकाई॥

पता न राखा दुहवई आंता।

माता कलाकिन के रस मांता॥

दूध पियावइ तैसाउ धारा।

बालक होइ परातिन्ह बारा॥

रोवऊं लोटऊं चाहऊं खेला।

भएउ अजान छार सिर मेला॥

पेमी कटोरी नाइके, मता पियावइ दूध।

बालक पिया चाहइ, क्या मगर क्या बूध॥"[36]

इन पंक्तियों से लगता है कि ये प्रेममधु के भ्रमर थे। उनका नाम तो बहुत बड़ा था, पर वह दर्शन थोड़ा था। ज्यों-ज्यों वृद्धा अवस्था आ रही थी, त्यों-त्यों उनमें अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था। जायसी संसार को अस्थिर मानते थे, उनके हिसाब से प्रेम और सद्भाव ही स्थिर है या रहेगा, जबकि संसार की तमाम वस्तुएँ अस्थिर हैं। जायसी ने संसार की अस्थिरता का वर्णन अन्य स्थल पर इस प्रकार किया है –

"यह संसार झूठ थिर नाहिं।

तरुवर पंखि तार परिछाहीं॥

मोर मोर कइ रहा न कोई।

[36] चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रेमकाव्य) – (सं.) पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 75

जो रे उवा जग अथवा सोई ॥

समुंद तरंग उठै अद्य कूपा ।

पानी जइस बुलबुला होइ ।

फूट बिलाहि मिलइ जल सोई ॥

मलिक मुहमद पंथी, घर ही माहिं उदास ।

कबहूँ संवरहि मन कै, कबहूँ टपक उबास ॥"[37]

1.3 जायसी की रचनात्मक चेतना का विकास

जायसी की रचनाओं के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सैय्यद कल्बे मुस्तफा तथा गार्सा-द-तासी आदि के शोधों एवं खोजों के आधार पर जायसी की चौबीस (24) रचनाओं का उल्लेख मिलता है -

I. पद्मावत
II. अखरावट
III. सखरावत
IV. चंपावत
V. इतरावत
VI. मटकावत
VII. चित्रावत
VIII. सुर्वानामा
IX. मोराईनामा
X. मुकहरानामा
XI. मुखरानामा
XII. पोस्तीनामा
XIII. होलीनामा
XIV. आखिरीकलाम
XV. धनावत

[37] चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रेमकाव्य) – (सं.) पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 75

XVI. सोरठ
XVII. जपजी
XVIII. मैनावत
XIX. मेखरावटनामा
XX. कहारनामा
XXI. स्फुटकविताएं
XXII. लहतावत
XXIII. सकरानामा
XXIV. मसला या मसलनामा

जायसी की 24 रचनाओं में 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरीकलाम', 'कहरनामा' और 'चित्ररेखा' प्रमुख हैं परंतु उनकी ख्याति का आधार 'पद्मावत' ग्रंथ ही है। इसकी भाषा अवधी है और इसकी रचना शैली पर आदिकाल के जैन कवियों की दोहा-चौपाई पद्धति का प्रभाव पड़ा है। 'पद्मावत' का रचनाकाल उन्होंने 947 हिजरी ('सन् नौ से सैंतालीस अहै' जैसा कि पीछे बताया जा चुका है) अर्थात् 1540 ई. है। 'पद्मावत' के अंतिम अंश के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि उसे लिखते समय तक वे वृद्ध हो चुके थे, उनका शरीर क्षीण हो गया था, उनकी दृष्टि मंद पड़ गयी थी, उनके दांत जाते रहे थे उनके कानों में सुनने की शक्ति नहीं रह गयी थी, सिर झुक गया था, केश श्वेत हो चुके थे तथा विचार करने तक की शक्ति क्षीण हो चली थी किन्तु इसका कोई संकेत नहीं है कि इस समय तक वे कितने वर्ष की अवस्था तक पहुंच चुके थे। जायसी ने 'आखिरीकलाम' का रचनाकाल देते समय भी केवल इतना ही कहा है –

"नौ से बरस छतीस जो भए।

तब एहि कथा क आखर कहे ॥"[38]

[38] जायसी ग्रंथावली – (सं.) रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 307

1.4 जायसी की प्रमुख रचनाओं की समीक्षात्मक व्याख्या

आखिरी कलाम

'आखिरी कलाम' (1525) जायसी की पहली प्राप्त रचना मानी जाती है। 'आखिरी कलाम' के वर्ण्य-विषय से ही यह समझ में आ जाता है कि जायसी ने सूफीमत या साधना के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए इस ग्रंथ की रचना नहीं की है। रामपूजन तिवारी का मानना है कि, "काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। धार्मिक प्रवृत्ति वाले एक आस्थावान इस्लाम के अनुयायी द्वारा रचित यह ग्रंथ मृत्यु के बाद वाले जीवन का एक चित्र प्रस्तुत करने के प्रयास का फल है।"[39] तात्पर्य यह है कि यह रचना कयामत के दिन का वर्णन करती है।

इस रचना के नाम में 'आखिरी' शब्द के कारण कुछ लोग इसे जायसी की अंतिम रचना मानते थे, जो कि भ्रममूलक था। वस्तुत: 'आखिरी कलाम' नाम कयामत से वर्णन की कथा से संबद्ध होने के नाते इसे दिया गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

'आखिरी कलाम' एक ऐसी रचना है जो जायसी में सूफीमतवाद एवं इस्लाम के प्रति निहित सद्भाव को अभिव्यक्त करती है। इस्लाम धर्म में जिन छ: बातों पर ईमान लाना आवश्यक माना गया है, उसे 'ईमान मुफस्सल' कहा गया है। ये छ: बातें इस प्रकार से हैं -

I. तौहीद (एकेश्वरवाद)
II. अल्लाह के फरिश्ते (फरिश्ता के लिए अरबी में 'मलक' या 'मल अक' शब्द का व्यवहार किया जाता है)
III. धर्म-ग्रंथ-जिन्हें परमात्मा अनुग्रह कर पैगम्बरों पर प्रकट करता है जैसे-'कुरान' आदि।
IV. अल्लाह के पैगम्बर।
V. 'अल योम अल आखिर' (अंतिम-दिन, जिस दिन पाप-पुण्य का लेखा-जोखा होगा)।

[39] जायसी - रामपूजन तिवारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1965, पृ.सं. 118

VI. अच्छे और बुरे का अल्लाह द्वारा पूर्व निर्धारण।

इस जीवन के बाद वाले जीवन में विश्वास लाने का प्रसंग 'कुरान' में बहुत बार आया है। इस जीवन के बाद वाले जीवन के लिए साधारणत: 'अल-आखिर' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'कुरान' में इस शब्द का प्रयोग एक सौ बार हुआ है और मृत्यु के बाद वाले जीवन के अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है। 'कुरान' के अनुसार मृत्यु ही जीवन का अंत नहीं है, बल्कि यह दूसरे जीवन का दरवाजा खोल देती है। यदि हम जायसी के मुसलमान होने तथा मुसलमानों के प्रति उनमें सद्भावना को लक्षित कर पाते हैं तो यह मानना पड़ेगा कि 'आखिरी कलाम' के 'आखिरी' शब्द का प्रयोग जायसी ने उपरोक्त अर्थ में ही किया है।

'आखिरी कलाम' का प्रारम्भ जायसी ने परमात्मा के गुणानुवादन से किया है। यथा –

"पहिले नावँ दैउ कर लीन्हा।
जे जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा॥
दीन्हेसि सिर जो सँवारै पागा।
दीन्हेसि काया जो पहिरै बागा॥"[40]

यह जो काव्य के प्रारंभ में गुरूवंदना की परंपरा है वह मसनवी शैली की परंपरा के प्रभावस्वरूप है।

'आखिरी कलाम' की रचना के केन्द्रीय बिन्दुओं पर ध्यान देने से पता चलता है कि यह इस्लाम धर्म में व्याप्त 'ईश्वरीय भक्ति' (जिसे कुछ लोग नारदी भक्ति भी कहते हैं) का पूर्णरूपेण चित्रण किया गया है। नारदी भक्ति के बारे में बताया जाता है कि यह एक ऐसी भक्ति है, जिसमें भक्त अपने आराध्य के प्रति अपने-आप को समर्पित कर देता है।

यह जो समर्पण की भावना है वह केवल हिन्दुओं की नारदी भक्ति तक ही सीमित नहीं है। यह भक्ति मुसलमानों में भी देखने को मिलती है। यथा –

"साँचा सौई और सब झूठे।
ठाँव न कवहुँ ओहि कै रूठे॥"[41]

---

[40] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 472

[41] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. वर्ष 2012, पृ.सं. 474

यह भक्ति और समर्पण केवल इतने तक ही सीमित नहीं है। जायसी ने सूफीमत और इस्लाम के निहितार्थ को एक जगह ही नहीं एक ही धागे में पिरोने का जो कार्य किया है वह अत्यंत सराहनीय है। इस 'आखिरी कलाम' की रचना को लेकर कई आलोचकों ने उन्हें इस्लाम का प्रचारक घोषित किया है। डॉ. जयदेव के अनुसार, "'सूफी मूलत: इस्लाम के प्रचारक थे और उनको राज्य की ओर से वृत्तियाँ प्रदान की जाती थीं। अत: जायसी को भी अपने पड़ोसी हिन्दुओं को इस्लाम की ओर आकर्षित करने हेतु इससे अधिक उपयुक्त कथा दृष्टिगोचर न हुई। इस प्रकार 'आखिरी कलाम' का श्रीगणेश हुआ।"[42]

जायसी के ज्ञानकाण्ड के विषय में अलग-अलग आलोचकों ने अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया। इस संबंध में आलोचकों का जो मत था वह कहाँ तक तर्कसंगत एवं सही था कहा नहीं जा सकता? जायसी ने अपने जन्म स्थान के विषय में भी 'आखिरी कलाम' में ही उद्धृत किया है। यथा -

"जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर क नाव आदि उदयानू॥
तहाँ दिवस दस पहुने आयऊँ।
भा वैराग बहुत सुख पायऊँ॥"[43]

यह पंक्ति जायसी के 'जायस' नामक नगर में जन्म होने का संकेत देती है अथवा कहीं और से जायस नगर में आकर बसने का संकेत देती है, यह विवादास्पद विषय है।

जायसी का चिंतन सूफीमतवाद से प्रभावित था, जो किसी-न-किसी रूप में उनकी सभी रचनाओं में देखने को मिलता है। यह बड़ी बात है कि जायसी ने उस पूरे समाज को अपनी रचना के केन्द्र में रखा है जो उस मध्यकाल से प्रभावित था। जायसी का काव्य उस समय में लोगों को एक प्रकार से शिक्षित करने का कार्य करता है। इस रचना के माध्यम से उन्होंने उस समाज को समझाना चाहा है जो उस समय का भोक्तावादी समाज है, सुविधाभोगी समाज है।

[42] सूफी महाकवि जायसी : डॉ. जयदेव, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, पृ.सं. 66-67
[43] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 475

इस्लाम धर्म का पवित्र धर्म-ग्रंथ 'कुरान' अथवा 'कुरआन' है। कुछ आलोचकों का मानना है कि जायसी ने उसी 'कुरान' ग्रंथ में वर्णित कयामत को अपनी रचना 'आखिरी कलाम' में लिखा है। यह जो बात है वह भ्रममूलक प्रतीत होती है, क्योंकि कोई भी मुसलमान अपनी धार्मिक पुस्तक के बराबर किसी भी रचना को स्वीकार नहीं करता है और जायसी भी मुसलमान ही थे। हाँ, यह जरूर है कि 'आखिरी कलाम' में चंद जगहों तथा कुछ पात्रों को उसी रूप में देख सकते हैं जैसे कि 'कुरान' में मिलता है।

'आखिरी कलाम' में अनेक मतों का प्रतिपादन किया गया है। इसमें कयामत अर्थात् प्रलय का वर्णन मिलता है, लेकिन यह प्रलय लोगों को गलत कार्य करने से रोकने की शिक्षा देती है अथवा वह इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ है यह विचारणीय विषय है। इस कयामत के बारे में लिखा गया है, कि -

"जबहि अंत कर परलै आई।
धरमी लोग रहै ना पाई॥
जबही सिद्ध साधु गए पारा।
तबहीं चलै चोर बरपारा॥
जाइहि मया मोह सब केरा।
मच्छ रूप कै आइहि बेरा॥
उठिहैं पंडित वेद पुराना।
दत्त सत्त दोउ करिहिं पयाना॥"[44]

यह जो स्थिति है कि जब प्रलय आएगा तो धर्मी लोग भी नहीं रह पाएँगे। चोर और डाकुओं की शासन सत्ता होगी। माया तथा मोह की स्थिति ऐसी हो जाएगी कि मनुष्य भी एक प्रकार से मछलियों की तरह व्यवहार करने लगेगा, जिसे 'मत्स्य-न्याय' भी कहा जाता है। यह जो स्थिति है वह देखा जाय तो आज के समाज में कहीं-न-कहीं व्याप्त है। यह 'मत्स्य-न्याय' की पद्धति तो पूर्ण रूप से व्याप्त है जिसका दर्शन कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं होता रहता है।

---

[44] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 476

जायसी ने आगे लिखा है कि एक ऐसी 'मजारी' अर्थात् बिल्ली प्रकट होगी जिसके सूँघने से कोई भी जिंदा नहीं बचेगा, और जो किसी कारणवश बच भी जाता है उसको वह खा जाएगी। इसको पंक्ति के रूप में इस प्रकार लिखा गया है –

"पुनि एक अचरज सँचरै आई।
नावँ 'मजारी' भँवै बिलाई॥
ओहि के सूँघे जिसे न कोई।
जो न मरै तेहि भक्खै सोई॥"[45]

यह जो बिल्ली है और उसकी स्थिति का जिस प्रकार से जिक्र किया गया है वह आज की स्थिति में भी प्रासंगिक हो सकती है। यदि कोई चाहे तो इस बिल्ली को प्रतीकात्मक रूप से 'पूँजीवादी-व्यवस्था' अथवा 'पूँजीवाद' मान सकता है।

प्रलय काल का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि जब संपूर्ण पृथ्वी पर प्रलय आ जाएगा तथा कोई भी व्यक्ति जिंदा नहीं बचेगा तब अल्लाह के द्वारा भेजा गया उनका फरिश्ता मैकाइल इस पृथ्वी पर आएगा। यथा -

"पुनि मैकाइल आयसु पाए।
उन बहु भाँति मेघ बरसाए॥
पहिले लागै परै अंगारा।
धरती सरग होई उजियारा॥
लागी सबै पिरथवीं जरै।
पाछे लागे पाथर परै॥
सौ सौ मन के एक एक सिला।
चलै पिण्ड छुटि आवै मिला॥"[46]

[45] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 477
[46] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 477

कुछ विद्वानों के द्वारा इसे कोरी कल्पना भी ठहराया जा सकता है। परंतु जिस मैकाइल का जिक्र जायसी ने अपने काव्य में किया है उसी मैकाइल नाम के फरिश्ते का जिक्र 'कुरान' में भी आया है। उपरोक्त पंक्तियों में यही बतलाया गया है कि मैकाइल आकर बहु-भाँतियों से वर्षा कराते हैं। इस वर्षा के कारण तो पहले लगता है कि धरती पर अंगारे पड़ रहे हैं। (धरती और आकाश चारों तरफ इस अंगारों की रोशनी से परिव्याप्त हो गये हैं) ऐसा लगता है कि पूरी पृथ्वी ही जल रही है उसके बाद पत्थर गिरने लगता है। यह स्थिति अत्यंत भयावह प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति इस धरती पर उत्पन्न हो गयी है जैसे- मानो कोई बचेगा ही नहीं।

जिबराईल को आदेश दिया जाता है कि वह जाए और जाकर पृथ्वी का अवलोकन करें। और इधर स्थिति यह है कि यहाँ कोई जीता जागता व्यक्ति बचा ही नहीं है। दुर्गंध इस तरह से फैली है कि वहाँ साँस लेना भी दुश्वार है। चारों तरफ से सड़ांध ही सड़ांध आ रही है। यह पृथ्वी का दृश्य है कि चारों तरफ उजाड़ खंड जैसा प्रतीत होता है। आठों दिशाओं में उजाड़ खंड मचा हुआ है। इस उजाड़ खंड के कारण अब उस चराचर ईश्वर या अल्लाह का नाम लेने वाला भी कोई नहीं बचा है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें इस जगत का समूल नष्ट हो गया।

मैकाइल को पुन: बुलाया जाता है और उसे यह आदेश दिया जाता है कि पृथ्वी पर जाकर तुम मेघ बरसाओ। मैकाइल आदेश का पालन करते हैं, उसका वृत्तांत इस प्रकार से है –

"मैकाइल पुनि कहब बुलाई।
बरसहु मेघ पिरथवीं जाई॥
उनै मेघ भरि उठिहैं पानी।
गरजि गरजि बरसहिं अतवानी॥
झरि लागि चालिस दिन राती।
धरि न निबुसै एकहुँ भाँति॥ "[47]

यह मेघ के बरसने का वर्णन अत्यंत भयावह लगता है। मेघ लगातार चालीस दिन और रात बरसता रह जाता है। इस मेघ के बरसने की जो भयावह स्थिति है वह प्रलय काल को ही कहीं-न-कहीं सूचित करती है।कथा

[47] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 477-78

में आगे लिखा गया है कि अल्लाह ने अपने चारों फरिश्तों को भी मौत के घाट उतार दिया। अल्लाह को अपने चारों सेवकों को मौत के घाट उतारने के बाद चिंता सताने लगी कि अब तो कोई मेरा नाम भी लेने वाला नहीं बचा। इस चिंता से उबरने के लिए उन्होंने अपने चारों सेवकों को जिलाया। यथा –

"पहिले सेवक चारि जियाउब।
तिन्ह सब काजै काज पठाउब ॥
जिबराईल औ मैकाईलू।
असराफील औ अजराईलू॥ "[48]

अल्लाह के चार सेवक – जिबराईल, मैकाइल, असराफील और अजराईल। अल्लाह ने सबसे पहले अपने चारों सेवकों को जिंदा किया। तत्पश्चात जिबराइल को पृथ्वी पर मुहम्मद को खोजने के लिए भेजा गया। अंततः मुहम्मद नहीं मिलते हैं और जिबराइल आकर बताते हैं कि 'गोसाई! कहाँ वै पावौं। लाखन बोलै जौ रे बोलावौं ॥' जिबराईल पुनः आज्ञा प्राप्त कर मुहम्मद को ढूँढने के लिए जाते हैं। मुहम्मद को खोजने में जिबराइल कामयाब होते हैं। यथा-

"कहइ जुगन के सोवत, उठे लोग मनो जागि।
अस सब कहै 'मुहम्म्द', नैन पलक ना लागि॥ "[49]

जिबराइल जब मुहम्मद को खोज लेते हें तो उसके बाद के वर्णन में बताया गया है कि जो पूरा संसार प्रलय के घेरे में था वह अब प्रलय से मुक्त हो गया है। उस स्थिति का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया गया है -

"उठत उमत कहँ आलस लागैं।
नींद भरी सोवत नहिं जागै॥
पौढ़त बारन हम कहँ भयऊ।
अबहिंन अवधि आइ कब गयऊ॥
जिबराइल तब कहब पुकारी।
अबहूँ नींद न गई तुम्हारी॥ "[50]

[48] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 479
[49] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 480
[50] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 480

जब लोगों में प्राण का संचरण होता है तो उन्हें यह प्रतीत होता है कि जैसे नींद से जागे हों। इस नींद को देखकर ही जिबराइल उन लोगों से कहता है कि 'आप लागों को सोते-सोते कितने वर्ष बीत गये फिर भी अभी नींद में ही हो।' सबसे बड़ी बात तब होती है जब सभी व्यक्ति (पुरुष और स्त्री) नंगे बदन और नंगे पैर होते हैं।

"नँगा नाँग उठिहै संसाररू।
नैना होइहैं सबके तारू॥ "[51]

एक तरफ तो यह बताया जाता है कि सभी व्यक्ति अपने प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं परंतु दूसरे पंक्ति में ही यह बता दिया गया है कि सभी के नेत्र अपने-अपने पैरों पर ही रहते हैं। तात्पर्य यह है कि उस प्राकृतिक अवस्था में कहीं-न-कहीं भौतिकता और भोग्य प्रवृत्ति की जो बात रही है वह झलकती है।

सभी प्राणियों के जीवित होने के पश्चात सभी व्यक्तियों के पाप और पुण्य का मूल्यांकन किया जाएगा और उसी के आधार पर उसे ज़न्नत (स्वर्ग) या ज़हन्नुम (नर्क) का भागी बनाया जाएगा। यथा –

"तहाँ चलत सब परखब, को रे पूर, को ऊन।
अबहिं को जान 'मुहम्मद' भरे पाप और पून॥

x x x x x x

धरम पाप फरियाउब, गुन औगुन सब दोख।
दुखी न होहु मुहम्मद, जोखि लेब धरि जोख॥"[52]

मृत्यु के बाद वाली स्थिति कैसी होगी इसके बारे में किसी को पता नहीं है, परंतु यह एक धारणा अथवा परंपरा से चली आ रही स्थिति है कि जो जितना अधिक पुण्य कर्म करेगा उसे स्वर्ग में भेजा जाएगा तथा जो जितना अधिक कुकर्म करेगा अथवा पुण्य का भागीदार नहीं बनेगा उसे जहन्नुम अर्थात् नरक में भेजा जाएगा। इसमें धर्मी तथा अधर्मी लोगों का उल्लेख किया गया है। यथा -

"जेई कुछ धरम कीन्ह जग माहाँ।
तेहि सिर पर किछु आवै छाहाँ॥
धरमिहि आनि पियाउब पानी।

[51] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 480
[52] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 481

पापी बिपुरहि छाँह न पानी ॥"[53]

इस रचना में धर्म करने वाले तथा अधर्म करने वाले लोगों को दो कोटियों में विभाजित किया गया है। एक कोटि वह है जिसमें सभी धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग शामिल हैं तथा दूसरी कोटि उसकी है जिसमें सभी अधर्मी लोग शामिल हैं। बताया यह गया है कि धार्मिक लोगों को प्रलय के समय सुरक्षा अल्लाह के द्वारा प्रदान की जाती है। अधार्मिक लोग इस प्रलय में काल के गाल में समा जाते हैं।

जायसी ने पैगम्बरों की संख्या सवा लाख बतायी है। उन्होंने लिखा है कि ये सभी पैगम्बर न्याय के समय सूर्य की गर्मी से बचने के लिए छाया का आश्रय लिए हुए रहेंगे। परंतु मुहम्मद ही केवल ऐसे रहेंगे जो अपने अनुयायियों के साथ धूप में खड़े कष्ट पाते रहेंगे। उनका हृदय तो उन पापियों के साथ था जो धूप में तप रहे थे। अल्लाह ने मुहम्मद साहब को आज्ञा दी कि वे अपने अनुयायियों को सामने लाए जिनसे उनके धर्म-कर्म का लेखा-जोखा हो। मुहम्मद साहब को धूप से पकते हुए गुनाहगारों की पड़ी थी।

जायसी ने फातिमा मजीद और हसन हुसैन का प्रसंग लाकर उस इतिहास विख्यात घटना (कर्बला का युद्ध) की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिसे शिया-सम्प्रदाय वाले तो सबसे बड़ा गर्हित कर्म तो मानते ही हैं, साथ ही संपूर्ण इस्लामी दुनिया में भी उसकी निंदा की गयी है। जायसी के इस वर्णन के आधार पर बहुत लोगां ने उन्हें शिया सम्प्रदाय का सिद्ध करना चाहा है लेकिन इसे कोई ठोस प्रमाण नहीं माना जा सकता क्योंकि इस घटना की निंदा सभी मुसलमान करते हैं। मजीद की यह क्रूरता स्वाभाविक रूप से इस्लाम के अनुयायियों के मन के भीतर आ जाती है।

इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ जो 'कुरान' अथवा 'कुरआन' है उसमें वर्णित विषय को यदि हम मोटे तौर पर देखें तो यह तथ्य सामने आता है कि 'कुरान' किसी एक सम्प्रदाय विशेष के लिए अल्लाह द्वारा भेजी गयी पुस्तक नहीं, यह पूरे संसार में रह रहे सभी व्यक्तियों के लिए भेजी गयी पुस्तक है। 'कुरान' में जिस बात को बताया गया उसका विवेचन तो संभव नहीं है, परंतु एक मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि 'कुरान' में व्यक्ति को नर्क

[53] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 481

(ज़हन्नुम) तथा स्वर्ग (ज़न्नत) की एक हृदय को वर्णित कर इसी के भयवश लोगों से ही एवं सार्थक कार्य करने की अपील की गई है। जहाँ तक सवाल जायसी का है तथा उनकी रचना 'आखिरी कलाम' का है तो इसमें भी पहले गुरूचरण वंदना अथवा मसनवी शैली की परंपरा का निर्वहन किया गया है तदुपरांत कयामत (प्रलय) का वर्णन किया गया है। कयामत के वर्णन से होते हुए उन्होंने कर्म को भी अपने प्रसंग में प्रयुक्त किया है। इन सभी चीजों को दिखाते हुए उन्होंने अपनी रचना में ज़न्नत एवं ज़हन्नुम का बँटवारा भी कर्म के आधार पर किया है।

आज की जो आधुनिक दृष्टि है तथा वह आधुनिक-दृष्टि जिस तार्किकता (rationalization) की मांग करती है उस दृष्टि से यह एक कोरी कल्पना ही साबित हो सकता है। परंतु मध्यकालीन स्थिति यह थी कि कवि अपनी कविता के माध्यम से ही लोगों को शिक्षित करता था।

भक्तिकाल में दो प्रकार के भक्त कवियों की परंपरा थी। निर्गुण तथा सगुण भक्तों की। निर्गुण भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह दिखाती है कि उन भक्त कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से आत्मा तथा परमात्मा के मिलन का प्रयास किया है। इस्लाम धर्म में भी जीवन का चरम लक्ष्य परमात्मा से मिलन स्वीकार किया गया है। जायसी के 'आखिरी कलाम' में भी यह देखने को मिलता है। यथा –

"कहब रसूल, बिहिसित न जाऊँ।
जौ लगि दरस तुम्हार न पाऊँ॥
उधर न नैन तुमहिं बिनु देखे।
सबहि अँबिरथा मोरे लेखे॥
तौ लै केहु बैकुण्ठ न जाई।
जौ लै तुम्हारा दरस न पाई॥ "[54]

परमात्मा से मिलन तथा साक्षात्कार की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है। वैसे सूफी परमात्मा से साक्षात्कार होने की बात मानते हैं। जायसी ने सूफियों के दृष्टिकोण से ही ऊपर की पंक्तियों में परमात्मा के दर्शन का वर्णन किया है। परमात्मा के दर्शन का तात्पर्य एकीकृत भाव से होता है जो मनुष्य और ईश्वर (आत्मा तथा परमात्मा) के बीच की दूरी को मिटा देता है।

[54] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 487

अंतिम दृश्य के वर्णन में जायसी ने स्वर्ग में पाए जाने वाले सुखों को ध्यान में रखकर कल्पना से काम लिया है। स्वर्ग में घोड़े, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषण, स्वादिष्ट खाने और पीने की वस्तुएँ तथा हुरें मिलेंगी। इस विश्वास का उपयोग कर जायसी ने विवाह, बारात आदि का उल्लेख किया है।

उपरोक्त विश्लेषणों के मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि जायसी आम जनमानस के कवि हैं। 'आखिरी कलाम' के माध्यम से उन्होंने आम जनता के मानस पटल से लूप्त हो रही संवेदनशीलता को पुनः उद्दीप्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति का सजीव चित्रांकन किया है, साथ ही तद्-युगीन समाज की चिंता व्यक्त की है।

अखरावट

'अखरावट' जायसी की एक ऐसी रचना है जिसमें जायसी के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिंतन की व्यापकता को देखा जा सकता है। जायसी को प्रसिद्धि भले ही 'पद्मावत' की वजह से प्राप्त हुई हो परंतु उनकी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि की पड़ताल तथा उनके दार्शनिक चिंतन के आधारभूत सिद्धांतों को हम 'अखरावट' में ही पाते हैं।

रामपूजन तिवारी ने लिखा है कि, "जायसी का 'अखरावट' एक सिद्धांत प्रौढ़ रचना है। जायसी की साधना और आध्यात्मिक दृष्टि का परिचय इस ग्रंथ से मिलता है। इस दृष्टि से इस रचना का बहुत अधिक महत्त्व है।"[55] 'अखरावट' एक ऐसी रचना है जो भक्तिकालीन अथवा पूर्व मध्ययुगीन परिवेश को अपने आप में समावेशित किये हुए है। यह रचना महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि यह एक 'प्रेम के पीर' अथवा सूफी कवि के आध्यात्मिक विचारों एवं दार्शनिक विचारों को अपने आप में समावेशित की हुई है।

रामरतन भटनागर के अनुसार, "जायसी की आध्यात्मिक विचारधारा को भली-भाँति समझने के लिए 'अखरावट' का अध्ययन अनिवार्य है। यद्यपि प्रेम और रहस्य संबंधी अनेक विचार 'पद्मावत' में स्थान-स्थान पर बिखरे मिलते हैं। परंतु वे बहुत थोड़े हैं और उनके सहारे कवि की आध्यात्मिक विचारधारा पर विचार करना

[55] जायसी : रामपूजन तिवारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1965, पृ.सं. 108

असंभव है। ... इसलिए 'अखरावट' ही ऐसा ग्रंथ रह जाता है जो जायसी की आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा को समझने में हमें सहारा दे।"[56]

'अखरावट' एक छोटा-सा ग्रंथ है। महाकाव्य की उपाधि इसे नहीं दी जा सकती। इस ग्रंथ में दोहा, चौपाई और सोरठा छंदों का बेहद रोचक एवं भावमयी तथा प्रवाहमयी शैली में संयोजन किया गया है। ग्रंथ की रचना के संबंध में कहीं उसकी तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है।

'अखरावट' के रचना-विधान में वर्णक्रम के हिसाब से जिस तरह पंक्तियों को सजाया गया है वह अत्यंत रोचक प्रतीत होता है। यह पंक्तियों का क्रम 39वें दोहों पर 'ह' के साथ वर्णमाला समाप्त हो जाती है। रामपूजन तिवारी ने लिखा है कि 'पद्मावत' में कवि को कथा की गति और प्रवाह को ध्यान में रख अपनी साधना के रहस्यों को उद्घाटित करना पड़ा है। लेकिन इस छोटी सी रचना में जायसी ने विशुद्ध रूप से अपनी साधना और सिद्धांत पर प्रकाश डाला है।"[57]

'अखरावट' में जिस साधना के रहस्यों को उद्घाटित किया गया है वह किसी एक सम्प्रदाय से प्रभावित होकर नहीं उद्घाटित किया गया है। वह मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य में समन्वय की विराट चेष्टा को आत्मसात करते हुए एक सर्वधर्म समभाव की, सर्वधर्म समाहार की साधना पद्धति है। इस साधना पद्धति में इस्लाम मतवाद के अनुरूप चार अवस्थाओं का भी जिक्र आता है- (1) शरीअत (2) तरीकत (3) मारिफत (4) हकीकत इत्यादि। इसके साथ ही साथ उन्होंने बौद्ध धर्म के महाशून्यवाद का भी जिक्र किया है एवं हिन्दुओं के औपनिषदिक ज्ञानकाण्ड का भी।

'अखरावट' की रचना का प्रारम्भ ईश्वरीय वंदना के साथ होता है। यथा –

"गगन हुता नहीं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसइ अंधकूप महँ रचा मुहम्मद नूर॥"[58]

[56] मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन – रामरतन भटनागर, पृ.सं. 154
[57] जायसी : रामपूजन तिवारी, पृ.सं. 108
[58] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 440

यह जो मसनवी शैली की परंपरा है (अर्थात सबसे पहले अपने आराध्य की वंदना अथवा उसका गुणगान एवं प्रशंसा इत्यादि) उसका निर्वहन जायसी ने बेहतरीन ढंग से किया है। सूफी साधना को बताते हुए रामरतन भटनागर ने लिखा है कि, "सूफी साधना का आलंबन उसी प्रकार अल्लाह है जिस प्रकार बौद्ध साधना का आलंबन निर्वाण है, या हिंदू साधना का ब्रह्म। परंतु सूफियों के अल्लाह की भावना और इस्लाम के अल्लाह की भावना में अंतर है।"[59]

भक्ति भावना चाहे जिस प्रकार की हो, भक्ति की सर्वप्रथम शर्त यह होती है कि भक्त अपने आपको अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दें। परंतु इस पारंपरिक पद्धति का विरोध करते हुए डॉ. पुरूषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है कि, "भक्ति शब्द मूलत: अनुराग और भागीदारी का आशय लेकर ही आया था। इस मूल आशय में समर्पण सत्ता के भय से उत्पन्न नहीं, प्रेम और अनुराग का ही समर्पण है। भक्त पराजित सैनिक की तरह समर्पण करने वाले को नहीं, बराबरी के प्रेम में समर्पण करने वाले को कहा जाता था। ... भक्ति का मूल अर्थ यही था – अनुरागजनित भागीदारी, संबंध भावना। सेंस ऑफ बिलांगिंग। "[60]

मलिक मुहम्मद जायसी ने उस ब्रह्म अथवा उस परमात्मा की उपासना करते हुए लिखा है कि -

"हुता जो सुन्न-म-सुन्न, नाँव ठाँव ना सुर सब्द।
तहाँ पाप नहिं पुन्न, मुहमद आपुहि आप महँ॥"[61]

यह जो शून्यवाद की स्थिति है वह बौद्ध धर्म से प्रभावित प्रतीत होता है। शून्यवाद की स्थिति में जिस प्रकार उस ब्रह्म की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है उसी प्रकार जायसी ने भी सूफी मत का प्रतिपादन करते हुए भी उन्होंने मध्यकालीन स्थिति धार्मिक समाहार को अपने चिंतन में प्रमुखता दी है।

जायसी की चिंतन धारा का विकास केवल किसी एक सम्प्रदाय से बँधा हुआ नहीं था। वह तो सर्वतोन्मुखी विकास की प्रक्रिया का परिणाम था। जायसी ने लिखा है कि -

"ऐस जो ठाकुर किय रूक दाऊँ।

---

[59] मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन – रामरतन भटनागर, पृ.सं. 40
[60] अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय – पुरूषोत्तम अग्रवाल, पृ.सं. 339-340
[61] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 440

पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ ॥
तेहि कै प्रीति बीज अस जामा ।
भए दुई बिरिछ सेत औ सामा ॥
होते बिरवा भए दुड़ पाता ।
पिता सरग और धरती माता ॥
सूरज, चाँद दिवस औ राती ।
एकहि दूसर भयउ सँघाती ॥"[62]

यह जो उनका साधनात्मक अथवा दार्शनिक चिंतन है वह केवल उन्हें किसी एक सम्प्रदाय में खड़े होने से रोकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि, "जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जाएगी। पर सूफी मत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासना की सी ही सहृदयता है। उपासना के व्यवहार के लिए सूफी परमात्मा को अनंत सौंदर्य, अनंत शक्ति और अनंत गुणों का समुद्र मानकर चलते हैं। "[63]

सूफीवादी दर्शन के अनुसार यह माना जाता है कि जीव और परमात्मा में अंतर नहीं है वह एक ही थे दोनों। परंतु कुछ समय बाद दोनों अलग हो गये और वे दोनों विरह में तड़पने लगे। इस तथ्य को जायसी ने भी स्वीकार किया है। यथा -

"हुतो जो एकहि संग, हौं तुम्ह काहे बीछुरा ?
अब जिउ उठै तरंग मुहमद कहा न जाइ किछु ॥"[64]

यह पंक्ति इस्लाम धर्म में निहित मतवाद एवं उसके दर्शन से एक अलग अभिव्यक्ति का प्रयास निहित है। इस्लाम दर्शन के अनुसार अल्लाह के समान कोई नहीं है। अल्लाह के समकक्ष कोई पहुँचने की कल्पना भी नहीं कर सकता है जबकि सूफीमतवाद के अनुसार जीव और ब्रह्म एक ही है, माया दोनों के बीच में आकर इनको मिलने में बाधाएँ उत्पन्न करती है।

[62] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 441
[63] जायसी ग्रंथावली : सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 107
[64] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 442

जायसी का मानना है कि जीवन की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है और उसी ब्रह्म से हिंदू और तुरक दो प्रजातियाँ बनी हैं। यथा –

"तिन्ह संतति उपराजा, भाँतिहि भाँति कुलीन।
हिंदू तुरूक दुवौ भए, अपने अपने दीन॥"[65]

इस तरह उन्होंने अपने पंक्तियों के माध्यम से उस समय जिस प्रकार के एकता की कल्पना की है वह अत्यंत सराहनीय है। मध्यकालीन स्थिति ऐसी थी जब मुसलमानों का आगमन भारत में हो गया था। सत्ताधारी मुसलमान ही थे और हिंदू अपनी दीन – हीन दशा के कारण भगवत – भक्ति एवं ईश्वरीय वंदना के अलावा कुछ नहीं कर रहे थे। जिसे कुछ आलोचक 'अपने पुरुषार्थ से हताश जनता' के नाम से पुकारते हैं।

सूफी मत का विस्तृत विवेचन करते हुए रामरतन भटनागर ने लिखा है कि, "सूफी इस्लाम के अंदर आते हैं। इस्लाम से बाहर उनको स्थान मिलना असंभव था, अत: उन्हें मुस्लिम संस्कारों को अपनाना पड़ा। इस्लाम की अनेक मान्यताओं को साथ लिए बिना उनका चलना ही असंभव हो जाता है और वह काफिर कहकर मार डाले जाते।"[66] यह जो इस्लाम अपनाने की प्रक्रिया है वह सहज है या असहज इसका मूल्यांकन असंभव है। परंतु जैसा जायसी ने स्वयं लिखा इस्लाम के बारे में उसमें कहीं भी असहजता नजर नहीं आती है। यथा -

"घर घट जगत बराबर जाना।
जेहि महँ धरती सरग समाना॥
माथा ऊँच मक्का बन ठाऊँ।
हीय मदीना नबी क नाऊँ॥"[67]

यह जो इस शरीर के अंदर ही विभिन्न धर्म स्थलों का जो संकेत दिया जाता है वह कहीं न कहीं कबीर की याद को ताजा कर देती है।

---

[65] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 444
[66] मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन – रामरतन भटनागर, पृ.सं. 50
[67] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 446

सूफियों का लक्ष्य प्रेम है। योग साधना द्वारा मन का नियंत्रण, अहं का नाश और साधना की एकनिष्ठता प्राप्त करके साधक प्रेम और उसके द्वारा फना की स्थिति में पहुँचता है। शरीर साधना का लक्ष्य यौगिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त करके मन को प्रियतम में लगाना और उससे एकरूप हो जाना ही इनका प्रतिपाद्य है। शरीर के सात खंड की चर्चा जायसी ने 'पद्मावत' में बराबर की है। 'अखरावट' में सात खंड की चर्चा है, पर सातवें खंड तक पहुँचने के लिए चार मुकामात वाला मार्ग ही विहित बताया गया –

"पै सुठि अगम पन्थ बड़ बाँका।
तस मारग जस सुई कनाका॥
बाँक चढ़ाव सात खंड ऊँचा।
चारि बसेरे जाइ पहुँचा॥"[68]

जायसी ने ईश्वरीय सत्ता के व्यापक फलक को सांकेतिक भाषा में लिखा है कि –

"ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं।
जेइ सिरजा जग अपनिहि नाईं॥
आपुहि आप जौ देखै चाहा।
आपनि प्रभुता आप सौं कहा॥
सबै जगत दरपन कै लेखा।
आपुहि दरपन, आपुहि देखा॥"[69]

यह जो अल्लाह की या उससे भी बड़े शक्ति की जो बात है वह अत्यंत रोचक है। उसने इस जगत को अपनी प्रतिछवि के रूप में गढ़ा तथा जब वह अपने आपको देखना चाहा तो अपनी प्रभुता का विस्तार किया। यह जो प्रभुता का विस्तार एवं इस जगत को दर्पण समझने, जिसमें ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिबिंब दिखलायी पड़ता है वह सूफीवादी दृष्टिकोण का परिणाम है।

जायसी में इस्लाम धर्म के प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है। इतना ही नहीं आचार्य शुक्ल ने तो यहाँ तक कह दिया है कि – "आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले

[68] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 450
[69] जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.सं. 451

चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, उनके कंबल लपेटे रहते थे, भूख प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे। कुछ दिनों तक तो इस्लाम की साधारण धर्म शिक्षा के पालन में विशेष त्याग और आग्रह के अतिरिक्त इनमें कोई नयी बात या विलक्षणता नहीं दिखाई देती थी। पर ज्यों-ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गये त्यों-त्यों इस्लाम के बाह्य विधानों से उदासीन होते गये।"[70]

एक स्थान पर जायसी ने लिखा है कि –

"आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोय सब जाइ।
देखहु बूझि बिचारी मन, लेहु न हेरि हेराइ॥ "[71]

सूफियों की मान्यता है कि जगत परमात्मा की प्रतिछवि है और इस प्रतिछवि की आँख की पुतली मनुष्य है। फिर वे कहते हैं कि जिस प्रकार आँख की पुतली में कोई वस्तु प्रतिबिंबित होती है उसी प्रकार मनुष्य जो जगत की आँख की पुतली के समान है, वह परम प्रियतम परमात्मा की प्रति छवि को अपने में ग्रहण किये हुए है। इस प्रकार एक ओर मनुष्य अपने में जगत को ग्रहण किये हुए है तो दूसरी ओर परमात्मा को।

"वह मारग जो पावै, सो पहुँचै भव पार।
जो भूला होइ अनतहि, तेहि लूटा बटपार॥ "[72]

यह जो भवपार होने अथवा उस पार जाने की चेष्टा है वह एक सात्विक सूफी साधकों की भावना को प्रकट करता है।

जायसी एक प्रकार से समन्वयात्मक दृष्टि को अपनी रचना संसार में समावेशित किये हुए हैं। यह समन्वय दृष्टि का ही परिणाम है कि जायसी कभी सूफियों के करीब तो कभी इस्लाम के करीब, कभी हिंदू धर्म एवं औपनिषदिक ज्ञान के समीप तो कभी बुद्ध के महाशून्यवाद के करीब पहुँच जाते हैं। यथा –

"ना नमाज है, दीन क धूनी।
पढै नमाज सोइ बड़ गुनी॥
कही तरीकत चिसती पीर।

[70] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 108
[71] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 454
[72] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 455

उधरित अफरफ और जहाँगीर ॥

x x x x

राह हकीकत परै न चूकी।

पैठि मारफत मार बुडूकी ॥"[73]

जायसी में जो पीर एवं रसूल नेवाजों के यशोगान की परंपरा के निर्वहन का स्वरूप दिखाई देता है वह अत्यंत सहज भाव का प्रतीत होता है। यथा –

"जुग-जुग अमर सो हजरत ख्वाजे।

हजरत नबी रसूल नेवाजे ॥

दानियाल तहँ परगट कीन्हा।

हजरत ख्वाज खिजिर पथ दीन्हा ॥"[74]

यह रसूल एवं नेवाजों के यशोगान की परंपरा मध्यकालीन परिस्थिति का प्रभाव है। यह प्रभाव सभी मध्यकालीन कवियों एवं रचनाकारों में देखने को मिलता है। जायसी के रचना संसार की सबसे बड़ी जो विशेषता है वह यह है कि जायसी ने सभी धर्मों एवं मतों को अपनी रचनाओं में शामिल किया है। वह सभी धर्मों के मानने वाले तथा सभी धर्मों को अपार भाव की दृष्टि से देखने वाले कवि के रूप में जनता के सामने उपस्थित होते हैं। यथा –

"सुन्हि ते है सुन्न उपाती।

सुन्हि ते उपजहिं बहु भाँति ॥

सुन्हि मांझ इंद्र बरम्हंडा।

सुन्नहिं ते टीके नवखंडा ॥

x x x x

सुन्नम सुन्नम सब उतिराई।

सुन्नहि महँ सब रहै समाई ॥"[75]

[73] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 456

[74] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 456

[75] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 450

यह जो शून्यवाद है और उस शून्य में ब्रह्म की उपस्थिति तथा ब्रह्म से मिलन की जो लालसा है वह बौद्ध धर्म का महाशून्यवाद से प्रेरित है। शून्यवाद की स्थिति एक चराचर ईश्वरीय सत्ता का द्योतक है।

प्रो. रविरंजन ने जायसी के सदंर्भ में लिखा है कि – "अपने समय में प्रचलित विभिन्न दार्शनिक मतवादों के प्रति जायसी का रवैया बिल्कुल खुला हुआ है, लेकिन प्रचलित मान्यताओं के इस पुंज का उपयोग जब भी वे करते हैं तो उनका उद्देश्य केवल कथा के विशिष्ट संदर्भ को अधिक जागरूक, अधिक संवेद्य, अधिक घनीभूत बनाना ही होता है।"[76] यह जो कथा के संदर्भ में जागरूकता एवं घनीभूत संवेदना इत्यादि की अतिशयता ही जायसी की अपनी पहचान है।

जायसी की रचना शिल्प एवं कथा शिल्प की अपनी पहचान ही कुछ अलग है। जायसी ने इस संसार की नश्वरता को अपनी दृष्टि के अनुरूप विश्लेषित किया है -

"पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतिराइ।
एकहि आवत देखिए, एक है जगत बिलाई॥"[77]

इस संसार की नश्वरता पर भी उन्होंने अपने मतों का जिस ढंग से प्रतिपादन किया है वह अत्यंत प्रवाहमयी शैली में रोचक प्रतीत होता है। जायसी को 'प्रेम का पीर' भी कहा जाता है। उन्होंने अपनी रचना 'पद्मावत' में तो प्रेम की अपनी अनोखी झांकी को दिखाया ही उसके अलावा भी उन्होंने 'अखरावट' ' में भी लिखा है। यथा –

"प्रेम तंतु तस लाग रहु, करहु ध्यान घित बाँधि।
पारस जैस अहेर कहँ, लाग रहै सर साधि॥"[78]

भावनात्मक हो या संज्ञानात्मक प्रेम का प्राण है समर्पण। देखना यह होता है कि जिसके प्रति समर्पण किया जा रहा है उसका स्वभाव कैसा है ? जिस भाषा में समर्पण का भाव व्यक्त किया जा रहा है उस भाषा का जीवन जगत के साथ क्या संबंध है ?

---

[76] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत : प्रो. रविरंजन, पृ.सं. 46

[77] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 461

[78] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 462

इस्लाम में ब्रह्म और जगत की दो अलग-अलग सत्ताएँ हैं। इनमें मालिक और नौकर का संबंध माना गया है। अत: उसमें जीवन या जगत को ब्रह्म कहना तथा जीव द्वारा ब्रह्मत्व प्राप्ति की घोषणा करना कुफ्र माना जाता है। पर कुछ सूफी तत्वचिंतकों ने भारतीय प्रभाव के कारण अपने सिद्धांतों में ब्रह्म, जीव और जगत में एकत्व स्थापित करते हुए अद्वैत का प्रतिपादन किया। हिंदी के सूफी कवियों ने भी इन विचारकों की पथ-सरणि का अनुगमन करते हुए अद्वैत का प्रतिपादन अपने काव्य के माध्यम से किया। जायसी ने लिखा है कि –

"तुहुप बास जस हिरदय, रहा नैन भरिपूरि।
निपटे से सुठि नीयरे, ओहट से सुठि दूरि॥"[79]

यह जो ईश्वर है वह प्रत्येक व्यक्ति के अंदर समाया है वह उसके अत्यंत करीब है। इतना ही नहीं, वह दूर भी इतना है कि उसे प्राप्त करना अत्यधिक कठिन है। जायसी ने आगे मुहम्मद का जिक्र करते हुए एक प्रेम कहानी का विश्लेषण किया है। यथा –

"कहा मुहम्मद प्रेम कहानी।
सुनि सो ज्ञानी भए धियानी॥
चेलै समुझि गुरू सौ पूछा।
देखहुँ निरखि भरा और छूछा॥"[80]

यह जो प्रेम कहानी तथा उसकी परंपरा है वह सूफियों में बहुत पहले से मिलती है। प्रतिबिंबवाद का स्पष्ट उल्लेख करते हुए जायसी कहते हैं –

"गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै।
सूरज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए॥"[81]

जायसी ने भारतीय साधना के साथ सूफी साधना का समन्वय बड़े सुन्दर ढंग से किया है। उन्होंने अपने काव्य में सूफी मार्ग के चार मंजिलों के पार करने का भी जिक्र किया है।

[79] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 464
[80] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 466
[81] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 465

जायसी जीव, ब्रह्म एवं प्रकृति को तत्वत: एक मानते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं जहाँ वे प्रकृति को उसकी छाया कहते हैं, वहाँ प्रतिबिंबवाद की झलक आ जाती है। जो अंतर है वह माया के कारण नहीं है, शैतान की करनी है। शैतान के भुलावे में आकर जीव अपने जमाल और जलाल को भूल जाता है। इसी से उसके अल्लाह के और प्रकृति के बीच में एक परदा पड़ गया है। परंतु जब सब अल्लाह ही अल्लाह है तो यह दु:ख-सुख, पाप-पुण्य इत्यादि द्वैध स्थिति क्यों है ? जायसी ने अपनी कविता के माध्यम से इसका भी समाधान प्रस्तुत किया है। जैसे जीवात्मा शुद्ध आनन्द स्वरूप है पर शरीर के संयोग में दु:ख आदि से दिखाई पड़ता है वैसे ही शुद्ध ब्रह्म संसार के व्यवहारिक क्षेत्र में भला-बुरा आदि कई रूपों में दिखाई पड़ता है। यथा –

"सुनु चेला जस सब संसारू।
ओहि भाँति तुम कया विचारू॥
जौ जिउ कया तौ दुख सौ भीजा।
पाप के ओट पुन्नि सब छीजा॥
जस सूरज उअ देख अकासू।
सब जग पुन्नि डहै परगासू॥
x x x x
सबै ठाँव औ सब परकारा।
ना वह मिला न रहै किनारा॥"[82]

इस गुरू चेला संवाद के माध्यम से जायसी ने जिस तथ्य को सामने लाने का प्रयास किया है वह एक अलग प्रकार है। यह जो शिष्य की प्रश्नाकुलता का भाव दिखाई देता है कि आकाश किस पर स्थित है ? बादल बिजली कहाँ से आते हैं ? आदि-आदि। यह प्रश्नाकुलता स्वभावत: एक सामान्य मनुष्य के भी हो सकते हैं। यह यशोगान है कि 'सब कुछ उसी की आज्ञा से होता है'। बाद में गुरू ईश्वर के गुणों का गान करता है और समझाता है कि यह विषय कहने से संबंध नहीं रखता, बिना मनन किये कुछ समझ में नहीं आ सकता। अत: धैर्यपूर्वक

[82] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 469

साधना में लग जाना चाहिए और प्रेम गाथाएँ वर्णन करनी चाहिए, क्योंकि कहने वाला तो शीघ्र नष्ट हो जाएगा। परंतु कहानी बहुत दिनों तक चलती रहेगी। इस प्रकार विचार तारतम्य स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा। यथा –

"कथा न अहै अकथा भा रहई।
बिना विचार समुझि का परई॥
सोऽहं सोऽहं बीस जो करई।
कहै प्रेम कै बरनि कहानी।
जो बूझै सो सिद्धि गियानी॥"[83]

यह जो पंक्ति है वह 'अखरावट' के चौपाई की अंतिम पंक्ति है। इस प्रकार 'अखरावट' की परिसमाप्ति गुरू-शिष्य संवाद से होती है।

उपरोक्त अनेकों विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए 'अखरावट' का जो विधान वह अनेकों तथ्यों को अपने में समावेशित किये हुआ है। 'अखरावट' में जायसी ने अपनी गुरू परंपरा का उल्लेख किया है तथा अपने प्रिय पीर सैयद असरफ जहाँगीर चिश्ती के प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्ति निवेदित की है। जायसी ने इस ग्रंथ की रचना अपनी साधना पर प्रकाश डालने के लिए किया था ऐसा प्रतीत होता है। काव्य सौंदर्यात्मकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से 'अखरावट' विचारणीय नहीं लगता है।

'अखरावट' जायसी कृत एक ऐसी रचना है जिसके नाम से ही ध्वनित होता है कि जायसी ने वर्णमाला के अक्षरों (देवनागरी) को लेकर काव्य की रचना की है। यह प्रवृत्ति उस काल में देखने को मिलती है। अथवा दूसरी भाषा में कहें तो अपभ्रंश काल से आती हुई यह परंपरा कुछ शताब्दियों तक बनी रही।

जायसी ने 'अखरावट' में परमात्मा, आत्मा, सृष्टि तत्व पर सूफी दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है और उसके बाद साधना और चरम लक्ष्य के रहस्य बतलाये हैं। जहाँ तक परमात्मा, आत्मा, सृष्टि तत्व और चरम लक्ष्य का प्रश्न है जायसी का दृष्टिकोण वही है जो साधारणत: सूफीमत में मान्य है लेकिन जब साधना की बात वह करते हैं

---

[83] जायसी ग्रंथावली : रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 471

तब स्पष्ट ही लगता है कि एक ओर तो उन्होंने सूफियों से प्रेरणा ग्रहण की है और दूसरी ओर भारतीय साधनाओं जैसे नाथपंथी जोगी और सिद्धों की साधना को अपनाया है।

"उपनिषदों में नासिदेय सूत्र की इसी चिंतन धारा का विशेष विकास हुआ। यह जो 'न सत था न असत' उसे ही उपनिषद ब्रह्म की संज्ञा देते हैं और अनेक विरोधी धर्माश्रयी गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं। बाद में बौद्ध दार्शनिकों ने 'शून्य' को ही परम तत्व माना, परंतु शून्य की उन्होंने जो परिभाषा की वह उपनिषदों की ब्रह्म की परिभाषा से बहुत भिन्न नहीं है।"[84] 'अखरावट' के कवि की कल्पना है कि प्रारंभ में जो महाशून्य था उसी से इस सृष्टि की रचना हुई है। इस्लामी रवायतों में है कि जब कुछ नहीं था तो केवल अल्लाह था, जिसे सूफी भक्तों तथा सूफी संगीतकारों के द्वारा गाया जाता है –

"जब कहीं पर भी कुछ नहीं था।
वही था वही था वही था वही था॥"[85]

जायसी ने मनुष्य के पैर, गुहोंद्रिय, नाभि, स्तन, कंठ दोनों भौहों के बीच के स्थान और कपाल को क्रमश: शनि, बृहस्पति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुद्ध और सोम स्वरूप कहा है। एक और ध्यान देने की बात है यह है कि कवि ने जिस क्रम से एक दूसरे के ऊपर ग्रहों की स्थिति लिखी है वह सूर्य सिद्धांतत: आदि भारतीय ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों के अनुकूल है।

तत्व दृष्टि से पिण्ड और ब्रह्मांड की एकता के निश्चय पर पहुँच जाने पर फिर उसी के अनुकूल साधना मार्ग सामने आता है, जो योगशास्त्र का विषय है। इन सभी विचारों एवं विमर्शों के आलोक में हम देख सकते हैं कि जायसी को आचार्य शुक्ल मुसलमान तथा सूफी कवि तो घोषित करते ही हैं परंतु जायसी ने किसी भी धर्म या मत का विरोध नहीं किया है। जायसी मध्यकाल में जिस प्रकार से सर्वधर्म समभाव की रचना अथवा कल्पना करते हैं वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

---

[84] मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन - रामरतन भटनागर, पृ.सं. 157

[85] राकस्टार फिल्म 2011, गायक - ए.आर. रहमान, जावेद अली, मोहित चौहान, गीतकार - इरशाद कामील, संगीत निर्देशक ए.आर. रहमान

पद्मावत

'पद्मावत' जायसी की सबसे प्रसिद्ध रचना है। 'पद्मावत' कृति के कारण ही जायसी की अपनी एक अलग पहचान कायम हो सकी है। हिंदी के अभी तक के उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में 'पद्मावत' सर्वश्रेष्ठ है। यह एक अत्यंत ही प्रौढ़ रचना है। 'पद्मावत' लोकप्रिय भी रहा है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि फारसी तथा नागरी लिपि में इसकी बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न स्थानों में पायी गयी हैं। आज भी सूफी प्रेमाख्यानकों में 'पद्मावत' की जितनी चर्चा हुई है उतनी अन्य रचनाओं की नहीं।

'पद्मावत' अवधी भाषा की एक सुन्दर कृति है। लेकिन आश्चर्य यह है कि हिंदी जगत इस ग्रंथ को प्राय: भूल चुका था। हिंदी के अध्येताओं का ध्यान इस ग्रंथ की ओर आकृष्ट करने का श्रेय पंडित सुधाकर द्विवेदी और जार्ज ग्रियर्सन को है। दोनों ने 'पद्मावत' की विशेषताओं को सुन्दर ढंग से उद्घाटित किया है। सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन के अधूरे कार्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पूरा किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'पद्मावत' को आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया। हिंदी जगत में इस ग्रंथ की लोकप्रियता का सबसे अधिक श्रेय आचार्य शुक्ल को है। 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में शुक्ल ने 'पद्मावत' की भाषा तथा व्याकरण के साथ-ही-साथ उसकी काव्यगत विशेषताओं पर सुंदर ढंग से प्रकाश डाला है। सूफियत पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने भारतीय चिंतन धारा के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि - " 'पद्मावत' हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है। ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य और भावों की गंभीरता की दृष्टि से यह काव्य निराला है।"[86] जायसी को भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के रूप में प्रतिष्ठित होने का मुख्य श्रेय 'पद्मावत' को ही है। 'पद्मावत' के माध्यम से उन्होंने जो उस समय के स्थिति का अंकन करते हुए जिस प्रकार से एक व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है वह बहुत ही साहसपूर्ण कार्य है।

[86] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. v

'पद्मावत' की कथा का आधार पूर्ण रूप से ऐतिहासिक नहीं है। 'पद्मावत' की कथा का आरंभिक अंश तो काल्पनिक है परंतु उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। 'पद्मावत' एक बहुत ही विस्तृत सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। आचार्य शुक्ल ने माना है कि "जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जाएगी। पर सूफी मत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासना की-सी ही सहृदयता थी। उपासना के व्यवहार के लिए सूफी परमात्मा को अनंत सौंदर्य, अनंत शक्ति और अनंत गुणों का समुद्र मानकर चलते हैं।"[87] यह जो सूफियों में परमात्मा को अनंत सौंदर्य एवं अनंत शक्ति के रूप में स्वीकार करने की बात है वह जायसी में भी लक्षित होती है। यथा –

"सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥"[88]

यह जो सर्वप्रथम उनकी (अल्लाह) की वंदना है वह सूफीमतवाद का ही प्रभाव पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है।

'पद्मावत' काव्य का शुभारंभ ईश्वर वंदना से हुआ है। कवि जायसी ने सर्वप्रथम उस परमेश्वर का स्तवन किया है जिसने संसार की रचना की है। जो अलख, अरूप एवं अनुपम है और जिसने अमूल्य मानव रत्न की सृष्टि की है। उसके बाद कवि ने पैगम्बर मुहम्मद शाह की प्रशंसा की है और फिर शाहेवक्त का वर्णन करते हुए तत्कालीन दिल्ली सुल्तान शेरशाह की सेना, उसकी न्यायप्रियता, उसकी रूप छवि एवं उसकी दानशीलता का अत्यंत रोचक निरूपण किया है। तदन्तर कवि ने अपनी गुरू परंपरा का उल्लेख करते हुए पीर सैय्यद अशरफ जहाँगीर और उनके पुत्र-पौत्रों का वर्णन किया है। यथा –

"सैयद अशरफ पीर पियारा।
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हियें प्रेन कर दीया।
उठी जोत भा निरमल हीया॥

[87] वही, पृ.सं. 107

[88] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.167

मारग हुत अँधियारा जो सूझा ।

आ अँजोर, सब जाना बूझा ॥"[89]

कवि ने आगे चिश्तियों की दूसरी शाखा के गुरू सैयद मुहम्मद महँदी का निरूपण किया है। तत्पश्चात् जायसी ने अपनी एक आँख के नष्ट होने का संकेत करते हुए बतलाया है कि सिंहल द्वीप में एक रानी पद्मावती रहती थी, उसे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन चित्तौड़गढ़ ले आये। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के सम्मुख राजा रत्नसेन के एक ज्योतिषी राघवचेतन ने रानी पद्मावती के अनुपम सौंदर्य का वर्णन किया। बादशाह ने यह सुनते ही चढ़ाई करके चित्तौड़गढ़ को घेर लिया। हिंदू और तुर्कों में भयंकर युद्ध हुआ। कवि ने कथा का इतना ही संकेत करके अपना आरंभिक खंड समाप्त कर दिया है।

'पद्मावत' की संपूर्ण कथा पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इस प्रबंध काव्य की कथा दो भागों में विभाजित है। इसके पूर्वार्द्ध में 'सिंहल द्वीप वर्णन' खंड से लेकर 'नागमती पद्मावती विवाह खंड' तक की कथा आती है और उत्तरार्द्ध में 'राघवचेतन देश निकाला खंड' से लेकर 'पद्मावती नागमती सती खंड' तक की कथा आती है। इस कथा का आरंभ जिस प्रकार स्तुति खंड से हुआ है उसी तरह अंत 'उपसंहार' से होता है। कवि ने उपसंहार में इस अनुपम प्रेम कथा को काव्य रूप देकर आत्म संतोष व्यक्त किया है और अपनी वृद्धावस्था का अत्यंत करूण एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

'पद्मावत' की कथा को (पूर्वार्द्ध की कथा को) पुन: चार भागों में विभाजित किया जा सकता है –

क. सिंहलद्वीप वर्णन खंड से लेकर सुआ खंड तक।

ख. रत्नसेन – जन्म खंड से लेकर सात समुद्र खंड तक।

ग. सिंहलद्वीप खंड से लेकर षट्ऋतु वर्णन खंड तक और

घ. नागमती वियोग खंड से लेकर नागमती-पद्मावती विवाद खंड तक।

[89] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.172

सिंहल द्वीप में सिंहल गढ़ के अंतर्गत चक्रवर्ती राजा गंधर्वसेन राज्य करते थे। उनके राज्य में बड़ी सुख समृद्धि थी, उन्होंने अपने नगर के चारों ओर सघन आमों के उद्यान लगवाये थे, जहाँ विविध प्रकार के पक्षी निरंतर कलरव करते थे। उन्होंने नगर में जहाँ-तहाँ कूप, बावड़ी, कुंड, मठ और मण्डपों का निर्माण कराया था। उनके यहाँ मंदिरों एवं मठों में कितने ही सिद्ध और साधक सदैव जप – तप में लीन रहते थे। उनके नगर में एक विशाल सरोवर था, जो मानसरोवर के नाम से विख्यात था, जिसके चारों और सुन्दर-सुन्दर घाट एवं फल फूलों से परिपूर्ण उद्यान शोभा देते थे। सिंहल नगर बड़ा ही ऐश्वर्यपूर्ण था, जहाँ अनेक धनी-मानी सज्जन निवास करते थे। राजा गंधर्वसेन का दरबार भी अत्यंत प्रभावशाली था। राजा के महल भी अत्यंत भव्य एवं सुखदायी थे। राजा गंधर्वसेन की रानी चंपावती थी। कालांतर में रानी चंपावती गर्भवती हुई और नौ माह उपरांत उनके गर्भ से कन्या रत्न की उत्पत्ति हुई। कन्या का नाम पद्मावती रखा गया। बचपन में उसकी शिक्षा का प्रबंध घर पर ही किया गया। जब वह युवती हुई तब उसके लिए एक पृथक अन्त:पुर एवं सखियों की व्यवस्था की गई। उसके पास एक हीरामन नाम का तोता था, जो बड़ा ही पंडित एवं चतुर वक्ता था और पद्मावती को उपदेश दिया करता था। जब राजा गंधर्वसेन को हीरामन तोते के उपदेश देने का पता चला तब राजा ने तोते को मार देने की आज्ञा दी, क्योंकि राजा ने सोचा कि जहाँ चन्द्रमा उग रहा है वहाँ यह तोता सूर्य की चर्चा कर रहा है। यथा -

"भयउ रजायसु मारहु सुआ।
सूर सुनाव चाँद जहँ उआ॥"[90]

रानी पद्मावती ने तोते को छिपा दिया। परंतु तोते को आशंका हो गई और उसने भयभीत होकर पद्मावती से वनवास की आज्ञा माँगी। पद्मावती बहुत दु:खी हुई किंतु हीरामन तोता उससे समझा-बुझाकर वन की ओर उड़ जाने का आग्रह करता रहा।

एक दिन पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने के लिए अपनी सखियों के साथ गई हुई थी। उसकी अनुपस्थिति में मौका पाकर हीरामन तोता वन की ओर उड़ गया। भंडारी ने रानी पद्मावती को तोते के उड़ जाने

[90] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.185

की सूचना दी और पद्मावती अत्यंत शोक में डूब गयी। तब सखियों ने उसे बहुत समझाया। उधर तोता वन में जाकर एक व्याघ के चंगुल में फंस गया।

इधर चित्तौड़ के राजा चित्रसेन के यहाँ एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम पंडितों ने रत्नसेन रखा और ज्योतिषियों ने बतलाया कि इसका विवाह सिंहलगढ़ की राजकुमारी के साथ होगा। एक दिन चित्तौड़ के कुछ व्यापारी व्यापार हेतु सिंहल नगर में पहुँचे। उनके साथ एक निर्धन ब्राह्मण भी गया था। अन्य व्यापारियों ने तो वहाँ हीरे, मूँगे आदि का क्रय – विक्रय किया, किन्तु निर्धन ब्राह्मण को वह हीरामन तोता पसंद आया, जिसे एक बहेलिये ने जंगल से पकड़कर सिंहल के बाजार में बेचने के लिए लाया था और वह तोता शास्त्रार्थ में निपुण था। उस तोते को लेकर वह ब्राह्मण व्यापारियों के साथ ही चित्तौड़ लौट आया। तब तक रत्नसेन युवा होकर चित्तौड़ के राज्य सिंहासन पर बैठ गया। राजा रत्न सेन ने सिंहल से लाए हुए पंडित तोते का समाचार सुना। राजा ने तुरंत अपना दूत भेजकर हीरामन तोते सहित उस ब्राह्मण को अपने दरबार में बुला लिया। हीरामन तोते ने दरबार में प्रवेश करते ही राजा को आशीर्वाद दिया और कहा कि मैं सिंहल द्वीप की रानी पद्मावती का हीरामन हूँ। राजा उसके शुद्ध संस्कृत उच्चारण को सुनकर आश्चर्य एवं आनंद में डूब गये और उन्होंने एक लाख रुपये देकर तोते को खरीद लिया। तोता राजा रत्नसेन को अनेक कथाएँ सुनाया करता था। एक दिन राजा रत्नसेन शिकार खेलने गए हुए थे। उनकी रानी नागमती तोते से प्रश्न करने लगी कि, तोते! यह बताओ कि तेरी दृष्टि में कौन श्रेष्ठ सुन्दरी है ? बताओ मैं रूपवती हूँ कि सिंहल की पद्मावती ? यथा –

"कौन रूप तोरी रूपमानी।
दुहुँ हौं लोनी कि तै पदुमिनी॥"[91]

तोते ने कहा कि रानी तुम सिंहल द्वीप की स्त्रियों की बात क्या पूछती हो ? भला दिन की तुलना क्या रात के अंधेरे से की ज सकती है ? वहाँ के सभी स्त्रियों के शरीर में पुष्प की सुगन्धि वास करती है। अत: पद्मावती के सामने तुम्हारी क्या गणना करूँ ? रानी नागमती ने यह सुनते ही सोचा कि यदि यह तोता राजमहल में रहेगा तो अवश्य किसी न किसी दिन पद्मावती के रूप सौंदर्य की चर्चा करके राजा को मोहित बना देगा। अत: उसे मरवा

[91] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.197

डालना चाहिए। इसी कारण उसने अपनी धाय को तोते को मारने की आज्ञा दी। धाय ने रानी की मूर्खता जानकर तोते को छिपा दिया। राजा के महल में आते ही तोते की तलाश आरंभ हुई। रानी नागमती ने तोते की बड़ी निंदा की और कहा कि उसे तो बिल्ली खा गई। राजा ने नागमती को तुरंत तोता लाने का आग्रह किया और कहा या तो तोते को जीवित करके लाओ अन्यथा तुम भी तोते के साथ सती हो जाओ।

राजा तोते के बिना बड़ा दु:खी हुआ। रानी नागमती भी काफी चिंता में पड़ गई और दौड़कर फिर धाय के पास गई। धाय ने उसे समझा-बुझाकर फिर तोता उसे ला दिया और रानी नागमती ने उस तोते को ले जाकर राजा को दे दिया।

राजा ने तोते को शपथ दिलाकर सब सच्चा हाल जान लिया। तोते की बात सुनते ही राजा रत्नसेन को पद्मावती के रूप – सौंदर्य के बारे में जानने की उत्सुकता हुई। तोते ने पद्मावती के सौंदर्य की खूब प्रशंसा की, जिसे सुनते ही राजा मूर्छित हो गया। सारे सगे संबंधी राजा के उपचार में लग गये। जैसे-तैसे राजा को होश आया, किन्तु अब वह पद्मावती की चर्चा में ही अनुरक्त हो गया था। हीरामन तोते ने राजा को समझाया कि यह प्रेम का मार्ग बड़ा कठिन है, परंतु राजा तो पद्मावती के नख-शिख का वर्णन सुनकर उसके प्रेम में निमग्न हो गया था। अंत में वह किसी का कहना न मानकर जोगी होकर पद्मावती को प्राप्त करने के लिए घर से निकल पड़ा। उसकी माता, रानी एवं अन्य संबंधियों ने बहुत समझाया और बड़ा विलाप किया, परंतु राजा अपने संकल्प से नहीं मुड़ा। साथ ही सोलह हजार राजकुमार भी जोगी का वेष धारण करके चल दिये। ये लोग सर्वप्रथम उड़ीसा के राजा गजपति के यहाँ पहुँचे और समुद्र यात्रा के लिए उससे जहाज माँगे। राजा गजपति से जहाज लेकर राजा रत्नसेन अपने साथियों सहित समुद्र यात्रा के लिए निकल पड़े। पहले उन्होंने खारी समुद्र को पार किया, फिर खीर समुद्र की यात्रा की तत्पश्चात उन्होंने दधि समुद्र को पार किया, फिर ज्वालाओं से परिपूर्ण उदधि समुद्र की यात्रा की, तदन्तर वे लोग सुरा समुद्र में पहुँचे और वहाँ से किला समुद्र की ओर बढ़े जो अत्यंत भयंकर था। तत्पश्चात् ये सातवें समुद्र मानसर में पहुँचे और वहाँ पहुँचने पर सबको अत्यंत प्रसन्नता हुई।

मान समुद्र में आते ही राजा ने हीरामन तोते से प्रश्न किया कि ये सूर्य, चन्द्र, बिजली, मेघ आदि सब एक साथ जो चमक रहे हैं ये क्या हैं ? तोते ने बतलाया कि ये सिंहलगढ़ के राजमहल हैं, जहाँ रानी पद्मावती निवास

करती हैं। यह गढ़ बहुत ऊँचा है और इस पर चढ़ना अत्यंत दुष्कर है। तब तोते ने राजा को बसंत पंचमी के दिन उस गढ़ पर चढ़ने की युक्ति बतलाई। राजा रत्नसेन पर्वत पर चढ़कर शिव मंडप में पहुँचे और शिव के दर्शन किये। राजा रत्नसेन ने वहाँ सिंहचर्म बिछाकर और समाधि लगाकर पद्मावती का जाप करना आरंभ कर दिया। उसके जाप से प्रभावित होकर पद्मावती भी राजा के वियोग में व्यथित रहने लगी। तब धाय ने उसे बसंत पंचमी के दिन शिव पूजा के द्वारा शिव को प्रसन्न करके पति समागम की प्रार्थना के लिए उसे उपदेश दिया। इधर तोते ने जाकर पद्मावती को राजा रत्नसेन के आगमन और उसके सच्चे प्रेम का हाल कह सुनाया। रानी पद्मावती वसंत पंचमी के दिन अपनी सखियों सहित शिव पूजा के लिए उसी शिव मंडप में आयी, जहाँ राजा रत्नसेन निरंतर जाप कर रहे थे। राजा रत्नसेन पद्मावती को देखते ही मूर्छित हो गये। तब पद्मावती ने उनके हृदय पर चंदन लगाकर ये अक्षर लिखे 'हे जोगी तूने भीख लेने की युक्ति नहीं सीखी। जब मैं तेरे द्वार पर आयी, तू सो गया। तुझे मुक्ति की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? अगर तुझे सूर्य बनकर मुझ चन्द्रमा को पाने के लिए सप्तखंड धौराहर आना पड़ेगा।' यथा –

"तब चंदन आखर हियं लिखे।
भीख लेइ तुइँ जोगी न सिखे॥
घरी आइ तब गा तैं सोई।
कैसे भुगुति परापति होइ॥
अब जौं सूर अहै ससि राता।
आइहि चढ़ि सो गँगन पुनि साता॥"[92]

इतना लिखकर पद्मावती अपनी सखियों के साथ गढ़ में लौट आयी। राजा रत्नसेन की जैसे ही मूर्च्छा दूर हुई वैसे ही वह पद्मावती को वहाँ न पाकर सिर धुन-धुनकर अत्यधिक विलाप करने लगा। फिर वह चित्ता बनाकर जैसे ही जलने को तैयार हुआ, वैसे ही तुरंत शिव और पार्वती उसके समीप आये। पार्वती ने एक अप्सरा का रूप धारण कर राजा के पास आयीं और उनकी परीक्षा लीं। राजा वास्तव में पद्मावती के विरह में व्याकुल था। तब शिव ने कृपा करके सिंहलगढ़ में प्रवेश की युक्ति बतलायी। शिव से सिद्ध गुटिका पाकर जोगियों ने सेंध लगाने के लिए सिंहलगढ़ को घेर लिया। राजा गंधर्वसेन ने पहले तो दूत भेजकर उन्हें ऐसा करने से रोका और भिक्षा

[92] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 244

लेकर लौट जाने के लिए कहा। परंतु राजा रत्नसेन ने कहा कि मैं तो पद्मावती को भिक्षा में चाहता हूँ। यह सुनकर राजा गंधर्वसेन कुपित हो गया और जोगियों को मार डालने की धमकी दी। इधर राजा ने तोते के द्वारा पत्र भेजकर पद्मावती को अपने सच्चे प्रेम का विश्वास दिलाया। फिर राजा रात को सुरंग के रास्ते से गढ़ पर चढ़ने की तैयारी करने लगा, परंतु प्रात: काल हो जाने पर सभी लोग पकड़े गये। राजा ने निर्णय किया कि जोगियों को सूली पर चढ़ा दिया जाए। परंतु मंत्रियों ने सलाह दिया कि ये चोर नहीं है, सिद्ध हैं इन्हें जीतने के लिए सेना की तैयारी करनी चाहिए। इधर राजा के साथियों ने भी लड़ने की इच्छा प्रकट की परंतु राजा रत्नसेन ने सबको शांत कर दिया। तब राजा रत्नसेन को सूली देने की तैयारी होने लगी राजा ने अंतिम समय में भी पद्मावती को ही याद किया। तब एक भाट ने आकर राजा गंधर्वसेन और रत्नसेन के सच्चे प्रेम का वर्णन किया। तोते ने भी इस कथन की सत्यता बतलाई। तब राजा गंधर्वसेन ने अपनी कन्या राजा रत्नसेन को देने का निश्चय किया। तुरंत विवाह की तैयारियाँ होने लगीं और शुभ लग्न में रत्नसेन तथा पद्मावती का विवाह हो गया। दोनों प्रेमी बड़े उल्लास के साथ राजमहल में मिले। परस्पर विनोद वार्ताओं मं उनकी रात्रि व्यतीत हुई। फिर राजा ने अपने साथियों को भी जोग समाप्त करके विवाह कर लेने की अनुमति दे दी। अब वहाँ पर राजा रत्नसेन सभी ऋतुओं में पद्मावती के साथ आनन्दोपभोग में जीवन व्यतीत करने लगे।

इधर बिचारी नागमती रात – दिन राजा रत्नसेन के वियोग में व्यथित रहने लगी। वह अपने प्रिय का स्मरण करती हुई सभी ऋतुओं में अत्यंत संतप्त रही आती थी। एक दिन वह रोती-रोती पति को ढूँढने के लिए घर से बाहर निकल पड़ी और वनवासी पक्षियों के सामने अपनी विरह व्यथा सुनाने लगी। यथा –

"रोइ गँवाए बारह भासा।
सहस सहस दु:ख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरख बरख पर जाइ।
पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
सो नहि आवै रूप मुरारी।
जासौं पाव सोहाग सुनारी॥"[93]

[93] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 308

एक पक्षी नागमती के रूदन को सुनकर दुखी हुआ। नागमती ने उसी पक्षी के द्वारा अपना संदेश राजा रत्नसेन के पास भेजा। वह पक्षी रानी नागमती का संदेश लेकर सिंहल द्वीप पहुँचा। उस समय राजा रत्नसेन वन में शिकार खेल रहे थे। तभी उस पक्षी ने सारा हाल सुनाकर रानी नागमती की व्यथा – कथा भी कह सुनायी। राजा रत्नसेन महलों में लौट आये और चित्तौड़ लौटने के लिए राजा गंधर्वसेन से आज्ञा मांगी। राजा से अनुमति पाते ही रत्नसेन – पद्मावती सहित चित्तौड़ के लिए चल दिये। मार्ग में एक राक्षस भीषण कुचक्र के कारण समुद्र में भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ, जिसमें राजा और रानी दोनों बिछुड़ गये। रानी पद्मावती बहते-बहते समुद्र की पुत्री लक्ष्मी के घाट पर जा लगीं। लक्ष्मी ने उसे होश में लाकर उसका हाल-चाल पूछा। रानी पद्मावती पति के वियोग में मूर्च्छित हो गयी। अंत में लक्ष्मी ने अपने पिता समुद्र से आग्रह करके पद्मावती को राजा रत्नसेन से मिलवा दिया। दोनों फिर लक्ष्मी और समुद्र से विदा होकर अपनी यात्रा पर चल दिये। उस समय राजा की सारी संपत्ति नष्ट हो चुकी थी। समुद्र ने राजा को पाँच रत्न – अमृत, हँस, राजपक्षी, शाईल और पारस उपहार में दिये। तदन्तर राजा रत्नसेन उन रत्नों और रानी पद्मावती के साथ चित्तौड़ आ गये। वहाँ आकर वे अपनी माता तथा पहली रानी नागमती से मिले। पद्मावती को दूसरे महल में ठहराया गया। रानी नागमती ने राजा से रूठकर मुँह फेर लिया, किन्तु राजा ने उसे सम्मान देकर मना लिया। एक दिन राज वाटिका में नागमती और पद्मावती की भेंट हो गयी और दोनों में पर्याप्त विवाद हो गया। क्रोध में भरकर दोनों मरने मारने को तैयार हुई थीं कि राजा को पता चल गया और राजा रत्नसेन ने आकर दोनों को समझाया बुझाया कि, 'धूप और छाँह दोनों प्रियतम के रंग हैं, दोनों एक साथ मिलकर रहो। लड़ना छोड़ो और दोनों समझो। सेवा करो और सेवा से ही कुछ प्राप्त करो। तुम दोनों गंगा जमुना के समान हो। तुम्हारे लिए परस्पर संयोग लिखा है। अत: दोनों मिलकर सेवा करो और सुख मांग करो।' यथा –

"धूप छाँह दुह पिय के रंगा।
इनौ मिली रहहु एक संगा॥
जूझव छाँडहु बूझहु दोउ।
सेव करहुँ सेवा कछु होऊ॥

गंगा जमुना नारी दोउ लिखा मुहम्मद जोग।

सेव करहुँ मिली दूनौ औमानहु सुख भोग॥"[94]

यह जो उपरोक्त कथा प्रस्तुत की गई वह 'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध की कथा है। इसी प्रकार से 'पद्मावत' के उत्तरार्द्ध की कथा को भी चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1) राघव चेतन देशनिकाला खंड से पद्मावती रूप चर्चा खंड तक।
2) बादशाह चढ़ाई खंड से रत्नसेन बंधन खंड तक।
3) पद्मावती नागमती विलाप खंड से बादशाह दूती खंड तक।
4) पद्मावती गोरा बादल संवाद खंड से पद्मावती नागमती सती खंड तक।

आलोचकों का मानना है कि 'पद्मावत' का उत्तरार्द्ध खंड ऐतिहासिक है। इस ऐतिहासिक घटना का पता तो चलता है लेकिन हू-ब-हू वही नहीं है जैसा जायसी ने वर्णित किया है। कथा का उत्तरार्द्ध भाग कुछ इस प्रकार है –

एक दिन राजा रत्नसेन के दरबार में राघव चेतन नाम का एक अत्यंत विद्वान पंडित और ज्योतिष आया। वह व्यास के समान कवि और सहदेव के सामन पंडित था। राजा रत्नसेन भी गुण ग्राहक थे। अत: राघव चेतन से उनका प्रेम हो गया और उसे दरबार में स्थान मिल गया। एक दिन अमावस्या का दिवस था। राजा ने राघव चेतन से पूछा 'दौज कब है ?' उसने कहा 'दौज तो आज ही है' जबकि उस दिन अमावस्या थी। राज दरबार के सभी पंडितों ने कहा कि आज तो स्पष्ट ही अमावस्या है दौज कहाँ है ? उधर राघव यक्षिणी का पुजारी था। उसने यक्षिणी के प्रताप से अमावस्या की रात को ही दौज का चन्द्रमा दिखा दिया। परंतु दो दिन उपरांत पुन: दौज का चन्द्रमा उदित हुआ। पंडितों ने राजा से सारे रहस्य को कह सुनाया और बताया कि यह राघव चेतन तो जादू-टोना जानता है। इसी कारण इसने अमावस्या को दौज दिखा दी थी। यह किसी दिन आपके ऊपर भी जादू चलाकर आपको ग्रस लेगा। राजा यह सुनते ही बहुत क्रुद्ध हुआ और सोचने लगा कि इसका वध करा दिया जाए या इसे

[94] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 345

देश से निकाल दिया जाए। अंत में राजा ने उसे देश से निकालने का निर्णय लिया। जब यह समाचार पद्मावती ने सुना तो उसने राघव को अपने पास बुलाया। राघव ने आते ही झरोखे में से खड़ी पद्मावती को आशीर्वाद दिया। पद्मावती ने तुरंत झरोखे में से ही अपना एक रत्न जड़ित कंगन उतारकर राघव को दे दिया। परंतु राघव पद्मावती को देखते ही मूर्च्छित हो गया। रानी पद्मावती ने हंसकर झरोखा बंद कर लिया और सोचने लगी यदि ब्राह्मण मर गया तो इसका पाप मुझको ही लगेगा। उसने सखियाँ भेजकर उसका उपचार कराया। होश में आते ही राघव चेतन को सखियों ने बहुत समझाया। अंत में राघव ने दिल्ली जाकर अलाउद्दीन को पद्मावती के रूप सौंदर्य की बात कहने का निश्चय किया। राघव चेतन ने दिल्ली जाकर बादशाह अलाउद्दीन का वैभव देखा और समीप पहुँचकर कंगन को दिखाया, उसके बाद कंगन को धारण करने वाली रूप सुन्दरी पद्मावती के अनुपम सौंदर्य की चर्चा की। पद्मावती की वेणी, मांग, ललाट, भौंहें, नेत्र, नासिका, अधर आदि के अद्वितीय सौंदर्य की चर्चा सुनते ही बादशाह अलाउद्दीन मूर्च्छित हो गया और होश में आते ही उसने पद्मावती को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की। इतना ही नहीं बादशाह ने राघव चेतन को अत्यधिक सम्मान किया और राजा रत्नसेन को एक पत्र लिखा, जिसमें पद्मिनी की मांग थी।

राजा रत्नसेन के समीप बादशाह का दूत सरजा उस पत्र को लेकर पहुँचा। राजा उस पत्र को पढ़ते ही आग बबूला हो गया और उसने बड़ी अवहेलना के साथ उसका उत्तर बादशाह के पास भेजा। राजा के उत्तर को पढ़ते ही बादशाह अलाउद्दीन ने तुरंत अपनी सेना को चित्तौड़ पर आक्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। शाही अश्वसेना ने तुरंत चित्तौड़ के लिए कूच कर दिया, हाथी की सेना पीछे चल रही थी और अन्य अनेक देशों की सेना भी बादशाह ने बुला ली। उधर राजा को भी आक्रमण का समाचार मिल गया। और वह भी चित्तौड़ में सेना सुसज्जित करने लगा। इधर बादशाह की सेना ने चित्तौड़ के निकट आकर पड़ाव डाल दिया। उधर राजा भी सामंतों को बुलाकर युद्ध के लिए मंत्रणा करने लगा। अंत में तुर्क और हिंदू सेना में मुठभेड़ हो गई। बड़ी भयंकर मारकाट हुई। यथा –

“दिनहिं रात अस परी अचाका।

भा रवि अस्त, चंद्र रथ हाँका॥

मंदिर जगत दीप परगसे।

पंची चलत बसेरै बसे॥

दिन के पंखि चरत उड़ि भागै।

निसि के निसरि चटै सब लागै॥

x x x x

गिरि पहार सब मिलिगे माटी।

हस्ति हेराहिं तहाँ होइ चाँटी॥"[95]

दिन निकलने पर शाही सेना लगातार बाण-वर्षा किया करती थी और बारूदों के सुरंगों तथा तोपों की मार के कारण दुर्ग के परकोटे टूट जाते थे। परंतु रात में तुरंत सबकी मरम्मत कर दी जाती थी। इस प्रकार जैसे – तैसे बादशाह से संधि का प्रस्ताव किया गया तथा संधि मंजूर भी हुई। तब राजा के निमंत्रण पर बादशाह अलाउद्दीन चित्तौड़गढ़ में भोज के लिए आया। राजा ने बादशह के लिए मांस, पकवान आदि का प्रबंध किया। राजा ने बादशाह को भोजन कराया, परंतु अलाउद्दीन का मन तो पद्मावती की ओर लगा हुआ था। अत: उसे भोजन कोई रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। तभी दासियों ने पद्मावती से अनुरोध किया कि तुम भी जाकर दिल्ली के बादशाह को एक बार देख लो। पद्मावती उनके अनुरोध पर वहीं झरोखे से बादशाह को देखने आयी तो उसका प्रतिबिंब नीचे दर्पण में पड़ा जिसे देखते ही बादशाह वहीं बेहोश हो गया। जैसे-तैसे रात्रि तो बादशाह ने बेहोशी में ही काटी और प्रात: भी वह बड़ी देर से सोकर उठा। परंतु रथ पर बैठकर जैसे ही बादशाह अपने डेरे की ओर चलने लगा, वैसे ही बातों में लगाकर वह राजा रत्नसेन को भी अपने साथ ले चला। गढ़ के नीचे आते ही बादशाह ने तुरंत छल से पकड़कर राजा को बंदी बना लिया। इस घटना से चित्तौड़ में खलबली मच गयी। उधर बादशाह राजा रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली ले आया और बंदीगृह में डालकर उसे भारी यंत्रणा देने लगा।

[95] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 372

राजा रत्नसेन के बंदी होते ही राजा के वियोग में रानी पद्मावती और नागमती विलाप करने लगी, वे विरह की ज्वाला में जलने लगी और उन्हें मरण के समान वेदना होने लगी। सखियों के आग्रह करने पर पद्मावती गोरा बादल के पास गई और रूदन करते हुए अपना दु:ख उनसे निवेदन किया। साथ ही पति को छुड़ाने के लिए अपना निश्चय भी उनके सामने प्रकट किया। तब गोरा बादल ने भी द्रवित होकर राजा को छुड़ा लाने की प्रतिज्ञा की। यथा –

"कही रोइ पद्मावती बाता।
नैनन्ह रकत दीख जग राता॥
उथल समुद्र जस मानिक भरे।
रोइस रूहिर आँसु तख ढरे॥
रतन के रंग नैन पर वारौं।
रती रती कै लोहू ढारौं॥
भँवरा ऊपर कँवल भवावौं।
केई चलु तहाँ सूर जहँ पावौं॥
x x x x
चढ़ी भुअंगिनी लट लट केसा।
भइ रोवति जोगिन के भेसा॥"[96]

पद्मावती नवीन उत्साह के साथ घर लौट आयी। बादल की माता और उसी नववधू ने उसे रोकना चाहा, किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञा वीर कब पीछे हट सकता था। दोनों वीरों ने राजा की मुक्ति के लिए उपाय सोचना आरंभ किया। उन्होंने सोलह सौ सैनिक तैयार किए और यह समाचार फैला दिया कि रानी पद्मावती अपने को बंधक में रखकर राजा को छुड़ाने आ रही है। बंदीगृह के अध्यक्ष को रिश्वत देकर गोरा ने उसे अपने पक्ष में कर दिया। तब रक्षकों

[96] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.418

ने बादशाह से जाकर निवेदन किया कि चित्तौड़ की रानी पद्मावती अपनी सोलह सौ दासियों के साथ यहाँ आयी हैं और चित्तौड़गढ़ की कुंजी राजा को सौंपकर बादशाह की सेवा में रहना चाहती है। बादशाह की आज्ञा हुई कि 'अच्छा एक घड़ी के लिए उसे राजा के पास रहने दो।"[97] पद्मावती का चंडोल राजा के पास पहुँचा। उस चंडोल में पद्मावती के स्थान पर एक लुहार बैठा हुआ था। उसने तुरंत निकलकर राजा के बंधन काट डाले और राजा को प्रणाम किया। राजा मुक्त होते ही क्रोध से भर उठा वह घोड़े पर चढ़ा और सिंह के समान गरजने लगा। गोरा-बादल ने भी तलवार निकाल ली। अब गोरा तो राजा को लेकर चित्तौड़ की ओर चल दिया और बादल बादशाह की चढ़ती हुई सेना से मुकाबला करने के लिए मार्ग में ही रूक गया। गोरा के साथ अन्य शूर-सामंत भी वहीं रूक गये। तभी शाह की सेना वहाँ आ पहुँची। गोरा ने भयंकर मारकाट मचाई। धीरे-धीरे रणक्षेत्र में गोरा के सभी साथी मारे गये और वह अकेला रह गया। तब उसने अकेले ही भयंकर युद्ध किया और अंत में सरजा के प्रहार से उसका भी प्राणांत हो गया। चित्तौड़ में पहुँचते ही राजा रत्नसेन के स्वागत के लिए पद्मावती ने बड़ी तैयारी की। पद्मावती और राजा का मिलन हुआ। तब पद्मावती ने बादल के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। रात के समय पद्मावती ने राजा को देवपाल की दूती की सभी बातें कह सुनाईं। उन्हें सुनते ही राजा रत्नसेन क्रोध में भर उठा और देवपाल को पकड़ लाने का निश्चय करके उसने कुंभलनेर पर चढ़ाई की। देवपाल और राजा रत्नसेन का एकाकी युद्ध हुआ जिसमें देवपाल मारा गया, किन्तु राजा रत्नसेन भी मरणासन्न हो गये। तब चित्तौड़ आकर राजा ने चित्तौड़गढ़ को बादल के सुपुर्द कर दिया और स्वयं स्वर्गवासी हो गये। राजा के मरते ही पद्मावती और नागमती दोनों रानियाँ राजा के साथ सती हो गयी। तभी राजा की मृत्यु का समाचार पाते ही अलाउद्दीन ने तुरंत चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वहाँ उसे पद्मावती की राख ही हाथ लगी, अंत में बादल भी मरते-मरते रणक्षेत्र में मारा गया। संपूर्ण स्त्रियों ने जौहर कर लिया, समस्त वीर युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हो गये और चित्तौड़ गढ़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

[97] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं.425

यह जो अब तक जायसी कृत 'पद्मावत' की उपरोक्त चर्चा हुई है वह 'पद्मावत' की संपूर्ण कहानी है। जायसी को सेक्युलर बताते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि, "सेक्युलर मानसिकता के माने यह नहीं है कि व्यक्ति किसी धर्म विशेष से संबंध न रखे। सेक्युलर मानसिकता का अर्थ यह है कि अपने धर्म पर निष्ठा रखते हुए भी व्यक्ति दूसरे धर्मों का सम्मान करे तथा अपनी धार्मिक निष्ठा को दूसरे धर्मों में निष्ठा रखने वालों से जुड़ने में बाधा न माने। जायसी या कि उनके तत्कालीन अनेक समानधर्मी इसी अर्थ में सेक्युलर माने जा सकते हैं।"[98]

जायसी को लेकर सेक्युलर होने की बात इसलिए की जाती है क्योंकि वे एक मुसलमान एवं सूफी कवि होकर भी भारतीय एवं हिन्दूवादी प्रेम पद्धति तथा परंपरा को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से ऐसा चित्रित किया कि वह एक प्रतिमान बन गया।

'पद्मावत' के संबंध में जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने लिखा है कि, "मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' हिंदी प्रेमाख्यानक परंपरा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। 'पद्मावत' की रचना का उद्देश्य लौकिक प्रेम के माध्यम से प्रेम के विश्वव्यापी, उदात्त और आध्यात्मिकता की कोटि तक पहुँचे हुए रूप की परोक्ष अनुभूति का आभास देकर मानव मात्र को मोक्ष की प्राप्ति कराना माना जा सकता है।"[99]

'पद्मावत' एक ऐसी कृति है जिसमें कथा तो भारतीय हिंदू परिवार की है लेकिन उसका स्वरूप सूफीवादी पद्धति का है। सूफीवाद में 'इश्क हकीकी' का संबंध ईश्वर की प्राप्ति से होता है। जायसी ने भी पद्मावती को ईश्वरीय सत्ता के रूप में चित्रित किया है। यहाँ नागमती को माया के रूप में चित्रित किया गया है। जायसी के प्रेम दर्शन की अपनी मौलिक उपलब्धि है। उसकी तीव्रता तथा उसका आवेग फारस की प्रेम कथाओं जैसा ही है परंतु भारतीय कहानियों के तत्व ने उसमें गुणात्मक रूप से इजाफा किया है और उसे जीवन की नाना दशाओं के बीच से गुजारा और निखारा है। जायसी प्रेम के गूढ़ तत्वों को समझते थे, उसके जीवनव्यापी प्रभाव से परिचित थे।

---

[98] भक्तिकाव्य और लोकजीवन : शिवकुमार मिश्र, पृ.सं. 62

[99] जायसी के पद्मावत का मूल्यांकन : जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा, पृ.सं. 4

'पद्मावत' की कथा के पहले जो दो भाग किया गया है उसमें पहले भाग में कथा अधिकांशत: क्या सर्वांशत: कल्पित प्रतीत होती है। उसमें जिस प्रकार से सात समुद्रों का वर्णन किया गया है वह महज कल्पना ही हो सकती है यथार्थ नहीं। और यह महज लोक में कही जाती रही होगी। कथा के इस अंग तक ही अपने को सीमित रखकर जायसी फारसी प्रेम पद्धति का बखूबी निर्वाह कर सकते थे, जिसके अंतर्गत प्रेम का वेग नायक में ही दिखाई देता है और वह प्रेमिका को पाने के लिए भाँति-भाँति की बाधाओं को पार करता है। यहाँ प्रेम एकांतिक और अपने में ही सिमटा हुआ बन जाता है, वह अपना साध्य स्वयं होता है, किन्तु जायसी ने कथा के परवर्ती भाग में इतिहास का आश्रय लिया है, और कुछ कल्पना यहाँ भी है, परंतु काफी कुछ कथा इतिहासोनुमोदित है। कथा के इस अंश ने 'पद्मावत' में और जो भी रचनात्मक योग दिया हो कम से कम जायसी की प्रेम पद्धति में एक गुणात्मक विकास उसके नाते भी आया है। कारण न केवल प्रेम तत्व की व्याप्ति लोक की व्यापक भूमिकाओं की ओर हुई है, वह जीवन की नाना दशाओं की ओर भी व्याप्त हुआ है। सबसे बड़ी बात जो घटित हुई है, वह यह कि प्रेम का वेग नायक तथा नायिका दोनों पक्षों में बराबर हो गया है।

डॉ. कन्हैया सिंह ने लिखा है कि, " 'पद्मावति' भारतीयता का महाकाव्य है। यह भारतीयता का विश्वकोश है। जायसी ने भारतीयता का मूर्त चित्र खींचा है। जो उदात्त और राष्ट्रीय धारा का अनुकरणीय आदर्श है। जायसी ने कोई सांस्कृतिक समन्वय किया है ऐसा मैं नहीं मानता। उन्होंने एक ऐसी संस्कृति का प्रकाश बिखेरा है जो मानव संस्कृति है और जो मानव मात्र के अंत:करण को अपनी दिव्य आभा से आलोकित करती है।"[100]

जायसी ने हिंदू घर की कहानी को अपनाया, हिंदू धर्म और दर्शन को अपने काव्य में स्थान दिया, सूफी प्रेम साधना तथा भारतीय योग साधना का समन्वय किया, भारतीय सामाजिक जीवन का मनोरम निरूपण किया, लोक संस्कृति को उजागर किया। इसी नाते उन्हें हम एक आस्थावान मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति की गहराइयों को पहचानने वाले मानते हैं। जायसी जो कुछ भी कहते हैं उसे ऐसे ढंग से कहते हैं कि वह सर्वग्राह्य हो। आस्तिक जन ईश्वर को जगत का निर्माता पालक और संहारक मानते हैं। सभी मजहब के लोग ईश्वर को

[100] मलिक मुहम्मद जायसी : डॉ. कन्हैया सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 36

मानते हैं पर संसार में झगड़े की सबसे बड़ी जड़ ईश्वर ही रहा है। हिंदू और मुसलमान की ईश्वर संबंधी मान्यताओं में भी बड़ा फर्क है। एक पूरब-एक पश्चिम। एक रूपाकार भी निराकार भी। एक महज निराकार और तरह-तरह के भेद हैं।

जायसी ने जिस प्रबंध काव्य की रचना की है वह उस समय की रचना है जब हिंदू राज शासन समाप्त हो चुका था अथवा समाप्ति की ओर था तथा मुसलमान राजाओं की शासन एवं सत्ताएँ स्थापित हो चुकी थीं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "सौ वर्ष पूर्व कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता 'राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी। ... बहुत दिनों तक साथ रहते-रहते हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलने लगे थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था।"[101] प्रेम पद्धति एवं प्रेमादर्श की दृष्टि से अगर 'पद्मावत' की परीक्षा की जाए तो स्पष्ट होता है कि इसमें प्रेम का वही स्वरूप और आदर्श प्रस्तुत किया गया है जो पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य में उपलब्ध होता है। आचार्य शुक्ल ने 'पद्मावत' की प्रेम पद्धति की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वस्तुत: वे सभी फारसी मसनवियों में नहीं पाई जाती।

प्रो. रविरंजन ने लिखा है कि, "मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' को यदि कुछ अधिक ताजगी के साथ पढ़ा जाए तो स्पष्ट होगा कि कवि के तेवर में तनाव और आवाज में कड़क के साथ भौतिक रूप में एक प्रभावशाली या चुम्बकीय आकर्षण से परिपूर्ण व्यक्तित्व की कमी के बावजूद उसकी कविता अपनी अंतर्वस्तु व रूप रचना या वैधानिक संरचना व भाषिक संरचनाओं की खूबियों के बल पर दुनिया की किसी भी महत्त्वपूर्ण कलाकृति के सम्मुख रखी जाने योग्य हो सकती है।"[102]

यदि हम 'पद्मावत' को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि जायसी की इस कृति में निहित प्रेमानुभूति की व्यंजना एकायामी न होकर त्रिआयामी है, जो कथा में आये ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्रों के साथ ही लेखक तथा पाठक को भी साथ लेकर चलती है। जायसी की इस कृति में प्रेम के विरह एवं मिलन दोनों

[101] जायसी ग्रंथावली : सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, पृ.सं. 1

[102] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत – रविरंजन, पृ.सं. 64-65

ही पहलुओं से संबंधित अनेकानेक मनोदशाएँ चित्रित हुई हैं। आरंभ में रत्नसेन को पद्मावती के सौंदर्य के बारे में ब्यौरेवार परिचय देने के बाद अंत में हीरामन तोता कहता है –

"बरनि सिंगार न जानेऊँ नखसिख जैस अभोग।
तब जग किछौ न पावौं उपमा देऊँ ओहि जोग॥"[103]

कवि ने इसके बाद प्रेमखंड में विस्तार के साथ रत्नसेन की प्रेम विह्वलता का चित्र खींचा है–

"सुनतहिं राजा गा मुरूछाई।
जानहुँ लहरि सुरूज कै आई॥
पेम घाव दुख जान न कोई।
जेहि लाग जानै पै सोई॥
परा सो पेम समुँद अपारा।
लहरहिं लहर होइ विसँभारा॥
विरह भँवर होइ भाँवरि देई।
खिन-खिन जीव हिलोरहिं लेई॥"[104]

वस्तुत: 'पद्मावत' में प्रेमी रत्नसेन को एक ऐसे साधक के रूप में पेश किया गया है जो साधना की आरंभिक अवस्था में परमतत्व के अप्रतिम सौंदर्य की एकमात्र झलक पाता है, जो उसके मन को पूरी तरह अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। उसके मन में पद्मावती के प्रति जिज्ञासा की भावना जाग्रत होती है और उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि पद्मावती को प्राप्त करने के लिए वह आकुल व्याकुल हो उठता है। वह इस संबंध में जितना ही सोचता है उतना ही उसकी ओर खींचता चला जाता है। जाहिर है कि 'पद्मावत' की प्रेम पद्धति पर सूफी मसनवियों का एक हद तक अवश्य प्रभाव है। इसलिए यहाँ भी प्रेम पहले विरह वियोग के रूप में ही प्रस्फुटित हुआ है और

---

103 जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 210
104 जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 211

अंतत: प्रेमी को अत्यंत व्याकुल करने लग जाता है। सूफियों की विरह पद्धति के अनुरूप ही 'पद्मावत' में रत्नसेन हीरामन तोते से पद्मावती के रूप सौंदर्य का बखान सुनते ही अचेत होकर प्रेम के उर्मिल सागर में उत्पन्न विरह की भँवरों में डूबने उतराने लगते हैं।

राजा रत्नसेन के द्वारा पद्मावती को प्राप्त करने के लिए जिस गुरू का वर्णन किया गया है वह एक आध्यात्मिक पक्ष (सूफीवादी आध्यात्मिक पक्ष) को चित्रित करता है। यथा –

"पूछा राजै कहु गुरू सूआ।
न जानौं आजु कहाँ दहुँ ऊआ॥
पौन बास सीतल लेइ आवा।
काया दहत चंदन जनु लावा॥"[105]

यह जो सुआ के रूप में गुण है और माया के रूप में नागमती है वह आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक है। 'पद्मावत' में एक बड़ी विशेषता देखने को यह मिलती है कि नागमती अपने राजा को जाने देती वह उन्हें रोकती नहीं है। केवल अपने आंसुओं के माध्यम से ही वह अपने दु:खों को प्रकट करती है। नागमती का यह प्रेम तथा यह स्त्रीत्व की रक्षा मध्यकालीन चेतना का प्रतीक है।

आलोचकों का मानना है कि जायसी कुरूप थे, काने थे तथा अत्यंत विकृत शरीर के थे। जायसी के द्वारा पद्मावती की रचना तथा उसके सौंदर्य की रचना उनकी कल्पनाशीलता का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि एक काने एवं कुरूप व्यक्ति ने जो एक स्त्री की रचना की वह अद्भुत है।

जायसी का सारा प्रेम संसार तथा 'इश्क मजाजी' से 'इश्क हकीकी' तक पहुँचने की प्रक्रिया तक निराधार साबित हो जाती है जब वे अंत में अपनी मध्यकालीन मानसिकता का परिचय देते हुए नागमती तथा पद्मावती को सती बना देते हैं। यथा –

"नागमती पद्मावति रानी।
दुवौ महा सत सती बखानी॥

[105] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 228

दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं ।

औ शिवलोक परा तिन्ह होठी ॥

बैठौ कोइ राज ओ पाटा ।

अंत सबै बैठे पुनि खाटा ॥"[106]

यह जो अंत है वह अत्यंत मारक बन गया है । जायसी ही नहीं उस समय के लगभग सभी कवि मध्यकालीन संकीर्णतावादी विचारधारा से प्रभावित थे । तुलसी की भी दृष्टि नारी के प्रति एक जगह ऐसी है –

"कत विधि सृजीं नारि जगमाही ।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाही ॥"[107]

यह जो चिंता है वह मध्यकालीन से ऊपर उठने की स्थिति का द्योतक है । यह जो स्थिति है वह उन्हें आगे तो ले जाती है परंतु वह खुद अपनी ही उक्तियों के द्वारा संकीर्णतावादी घोषित कर दिये जाते हैं । जायसी भी उसी समय के कवि रहे हैं अत: इनसे भी कुछ अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती है । जायसी प्रासंगिक इस अर्थ में हैं कि सही रूप में वे एक भारतीय कवि हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय मानस की संकल्पनाओं को सही रूप में प्रस्तुत किया है ।

आचार्य शुक्ल ने जायसी के 'पद्मावत' में निहित वियोग पक्ष की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "जायसी का विरह वर्णन कहीं-कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है उसमें गांभीर्य बना हुआ है । इनकी अति युक्तियाँ बात की करामात नहीं जान पड़ती । हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द संकेत प्रतीत होती हैं । उनके अंतर्गत जिन पदार्थों का उल्लेख होता है वे हृदयस्य ताप की अनुभूति का आभास देने वाले होते हैं ।"[108]

जायसी की विरह वेदना के आचार्य शुक्ल कायल हो गये हैं । यथा –

[106] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 436

[107] श्रीरामचरितमानस (बाल काण्ड) - गोस्वामी तुलसीदास, पृ.सं. 94 गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण 2012 (दोहा 101 के अंतर्गत)

[108] जायसी ग्रंथावली : सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, पृ.सं. 28

"कुहुकि – कुहुकि जस कोइल रोइ।
रकत आँसु धुँधुची बन बोई॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होई बनवासी।
तहँ तहँ होइ धुँधची कै रासी॥
बूँद-बूँद महँ जानहुँ जीउ।
गूँजा गुँजि करै, 'पीउ पीउ'॥
तेहि दुख भए परास निपाते।
लोहू बूड़ि उठे होड राते॥"[109]

यह जो संवेदना है वह रानी नागमती को एक साधारण स्त्री के रूप में चित्रित करती है। रानी नागमती वहाँ रानी नहीं रह पाती वह केवल और केवल नागमती बन जाती हैं।

कहरनामा

'कहरनामा' का रचनाकाल 947 हिजरी बताया गया है। यह काव्य-ग्रंथ कहरवा या कहार गीत उत्तर प्रदेश की एक लोक-गीत पर आधारित में कवि ने 'कहरनामा' के द्वारा संसार से डोली जाने की बात की है।

जायसी ने हिंदी में कहारा लोक धुनि के आधार पर इस ग्रंथ की रचना करके स्वयं को गाँव के लोक जीवन एवं सामाजिक सौन्दर्य बनाने का प्रयत्न किया है। 'कहरनामा' में कहरा का अर्थ कहर, कष्ट, दुःख या कहा और गीत विशेष है। हमारे देश भारत में ब्रह्मा का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेमपरक गीत गाने की अत्यंत प्राचीन लोक-परंपरा है।

'कहरनामा' तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इस कथानुमा काव्य में लेखक जायसी के कथानुसार संसार एक सागर के समान है। इसमें धर्म की नौका पड़ी हुई है। इस नौका का केवट एक ही है। वे कहते हैं कि कोई पंथ

[109] जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 309

को तलवार की धार कहता है, तो कोई सूत कहता है। कई लोग इस सागर में तैरते हुए हार गए हैं और कोई बीच में खड़ा है, कोई मध्यसागर में डूबता है और सीप ले आता है, कोई टकटोर करके छूंछे ही लौटता है, कोई हाथ छोड़कर पछताता है। जायसी बड़े ही अच्छे अंदाज में दुनिया की बेवफाई और संसार की बेरुखी को जगजाहिर करते हैं।

जो नाव पर चढ़ता है, वह पार उतरता है और नाव चले जाने पर, जो बांह उठाकर पुकारता है और केवट लौटता नहीं, तो वह पछताता है, ऐसे लोगों को 'मुख अनाड़ी' कहते हैं। बहुत दूर जाना है, रोने पर कौन सुनता है। जो गाँव पूरे हैं, जो दानी हैं, उनसे हाथ पकड़कर केवट नाव पर चढ़ा लेता है, वहाँ कोई भाई, बंधु और संघाती नहीं। जायसी कहते हैं कि साधक को इस संसार में पैर संभालकर रखना चाहिए अन्यथा पथ-भ्रष्ट होने का भाय है। जायसी ने योग युक्ति, मन की चंचलता को दूर करने, भोगों से दूर रहने और प्रेम प्रभु में मन रमाने की बातें कहीं हैं। इससे वे आगे कहते हैं, ईश्वर जिसे अपना सेवक समझता है, उसे वह भिखारी बना देता है।

'कहरनामा' में कहारों के जीवन और वैवाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

चित्ररेखा

जायसी ने 'पद्मावत' की ही भांति 'चित्ररेखा' की शुरुआत भी संसार के सृजनकर्ता की वंदना के साथ की है। इसमें जायसी ने सृष्टि के उद्भव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके अलावा इसमें उन्होंने पैगंबर मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों का वर्णन सुंदरता के साथ किया है। इस प्रशंसा के बाद जायसी ने इस काव्य की असल कथा आरंभ की है।

इसकी कथा चंद्रपुर नामक एक अत्यंत सुंदर नगर के राजा, जिनका नाम चंद्रभानु था, की कथा से प्रारम्भ किया है। इसमें राजा चंद्रभानु की चाँद के समान अवतरित हुई पुत्री चित्ररेखा की सुंदरता एवं उसकी शादी को इस प्रकार बयान किया है –

चंद्रपुर के राजमंदिरों में 700 रानियाँ थीं। उनमें रूपरेखा अधिक लावण्यमयी थी। उसके गर्भ से बालिका का जन्म हुआ। ज्योतिष और गणक ने उसका नाम चित्ररेखा रखा तथा कहा कि इसका जन्म चंद्रपुर में हुआ है, किन्तु यह कन्नौज की रानी बनेगी। धीरे-धीरे वह चाँद की कलि के समान बढ़ती ही गयी। जब वह सयानी हो गयी, तो राजा चंद्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे वर ढूंढ़ते- ढूंढ़ते सिंध देश के राजा सिंघनदेव के यहाँ पहुंचे और उसके कुबड़े बेटे से संबंध तय कर दिया।

कन्नौज के राजा कल्याण सिंह के पास अपार दौलत, जन व पदाति, हस्ति आदि सेनाएँ थीं। तमाम संपन्नता के बावजूद उसके पास एक पुत्र नहीं था। घोर तपस्या एवं तप के पश्चात उनके घर एक राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम प्रीतम कुंवर रखा गया। ज्योतिषियों ने कहा कि यह भगवान अल्पायु हैं। इनकी आयु केवल बीस वर्ष की है। जब उसे पता चला कि उसकी उम्र सिर्फ ढाई दिन की ही रह गयी है, तो उन्होंने पूरा राजपाट छोड़ दिया और काशी में अंत गति लेने के लिए चल पड़ा।

रास्ते में राजकुमार की भेंट राजा सिंघनदेव से हो गयी। राजा सिंघनदेव ने राजकुमार प्रीतम कुँवर के पैर पकड़ लिए। उनका पूरा नाम पूछा तथा विनती की, कि हम इस नगर में ब्याहने आए हैं। हमारा वर कुबड़ा है, तुम आज रात ब्याह कराकर चले जाना और इस प्रकार चित्ररेखा का ब्याह, प्रीतम सिंह से हो जाता है। प्रीतम सिंह को व्यास के कहने से नया जीवन मिलता है।

जायसी एक महान सूफी संत थे। प्रेम ही उनकी साधना का स्थान था। वे व्यर्थ की तपस्या तथा बाह्यडंबर को महत्वहीन मानते थे। वह विरह को आवश्यक बताते थे। विरह के माध्यम से भी प्रेम-प्रभु की प्राप्ति होती है ऐसा उनका मानना है –

"का भया परगट कया पखारें।
का भया भगति भुईं सिर मारे॥
का भया जटा भभूत चढ़ाएँ।
का भया गेरु कापरि लाएँ॥

का भया भेस दिगंबर छांटे।

का भया आयु उलटि गए कांटे॥

जो भेखहि तजि मौन तु गहा।

ना बग रहें भगत बेचहा॥

पानिहिं रहईं मंछि औ दादुर।

माँगे नितहिं रहईं फुनि गादुर॥

पसु पंछी नांगे सब खरे।

भसम कुम्हार रहइं नित भरे॥

बर पीपर सिर जटा न थोरे।

अइस भेस की पावसि भोरे॥

जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम।

तब लगि हाथ न आव ताप करम-धरम सत नेम॥"[110]

जायसी बाह्याडंबर और निष्प्रेम साधना की निस्सारता के विषय में लिखते हैं – प्रकट भाव से काया प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं हो सकता है। धरती पर सिर फटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बढ़ाने – चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। गैरिक वसन धारण करने से कुछ नहीं होता है। दिगंबर योगियों का सा रहना भी बेकार है। कांटे पर उतान सोना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश त्याग का मौनव्रती होना भी व्यर्थ है। इस प्रकार के योगियों की तुलना वह बगुला और चमगादड़ से करते हैं। वे कहते हैं कि केश-वेश से ईश्वर कदापि नहीं मिलता है। जब वह विरह नहीं होता, हृदय में प्रेम की निष्पत्ति नहीं हो सकती है। बिना प्रेम के तप, कर्म, धर्म और सत्यनाम की सच्चे अर्थों की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जायसी सहज प्रेम विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

110 चित्ररेखा (मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रेमकाव्य) – (सं.) पं. शिवसहाय पाठक, पृ. सं. – 70

1.5 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचनों एवं विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए यह आसानी से कहा जा सकता है कि जायसी ने मुसलमान सूफी कवि होते हुए भी भारतीय प्रेम कहानी की परंपरा को आगे बढ़ाया है जिस तरह जायसी का जीवन संघर्षों से भरा हुआ प्रतीत होता है उसी तरह उनका रचनात्मक – जीवन भी अनेक तरह के उतार – चढ़ाव का रहा है। जायसी ने भी उसी हद तक इस कहानी परंपरा को आगे बढ़ाया जिस हद तक तुलसी ने 'रामचरित मानस' में अवधी भाषा का प्रयोग किया। जायसी की प्रेमकथा तो भारतीय है परंतु उसकी घटनाओं की एक जो स्थिति है वह फारसी प्रतीत होती है। मसनवी शैली परंपरा को उन्होंने अपने कथाओं में लागू किया है, चाहे वे 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'पद्मावत' या 'कन्हावत' हो।

जायसी लोक परंपरा से जुड़े हुए थे। लोक परंपरा से जुड़ने की कुछ वृत्तियाँ जायसी में मिलती है। अवधी बोली के ठेठ रूप का प्रयोग आलोचकों ने इस क्रम में कई बार उल्लिखित किया है। जायसी में तुलसी की तरह तत्सम शब्दों की मिलावट है। 'पद्मावत' के कथा-विधान में सर्ग जैसे विभाजन को अस्वीकार करके लगातार वर्णन क्रम को चलाना आलोचकों द्वारा फारसी मसनवी शैली का प्रभाव माना गया है। पर इस शैली के पीछे देसी लोक गाथाओं का संस्कार भी देखा जा सकता है, जिनमें शास्त्रीय दृष्टि का कोई विभाजन नहीं है, कथा लगातार चलती है। लोक और शिष्ट को एक दूसरे के आमन-सामने करके इस टकराहट में से कुछ सिरजने का एक उपक्रम हमें 'पद्मावत' के कथा विधान में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की भिन्न प्रकृति रखने में मिलता है। जायसी ने अपने कथानक का विधान इस तरह किया है कि पूर्वार्द्ध लोक कथा के रूप में काल्पनिक वृत्त है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक बनावट लिए हुए है। लोक कथा की रंगत लिए पूर्वार्द्ध में अनेक अतिप्राकृत चरित्र और घटनाएँ हैं – देवी, देवता, राक्षस, मनुष्य की बोली बोलने वाला तोता, सिद्ध गुटिका आदि। उत्तरार्द्ध में ये अतिप्राकृत तत्व एकदम अनुपस्थित है। उनका कहीं कोई उल्लेख नहीं होता। रोचक बात यह है कि समुद्र द्वारा दिये गये पाँच अमूल्य पदार्थ – अमृत, हंस, राजपक्षी, शाईल और पारस पत्थर रत्नसेन के पास है जबकि बरसों तक अलाउद्दीन चित्तौड़ का घेरा डाले रहा और इनके उपयोग की बात राजा को नहीं सूझी।

लोकवृत्त और ऐतिहासिकता का इस प्रकार से आमना-सामना जायसी के अपने रचना विधान की निजी उपज है। लोक और शिष्ट को भी अगल-बगल रखना सबके बस की बात नहीं है। अंतत: यही कहा जा सकता है कि जायसी की यह रचना प्रेम काव्य का एक प्रतिमान बनाती है जिसे आज तक कोई भी रचनाकार नहीं तोड़ सका।

दूसरा अध्याय

शुक्लपूर्व हिंदी साहित्येतिहास-लेखन की परंपरा और जायसी

2.1 भूमिका

2.2 नाभादास की 'काव्यगाथा' एवं जायसी

2.3 गार्सा-द-तासी का जायसी संबंधी चिंतन

2.4 शिवसिंह सेंगर का जायसी संबंधी चिंतन

2.5 ग्रियर्सन का जायसी संबंधी चिंतन

2.6 'मिश्रबंधु-विनोद' में जायसी संबंधी चिंतन

2.7 निष्कर्ष

2.1 भूमिका

हिंदी साहित्येतिहास – लेखन की परंपरा आधुनिक युग की देन है। हालांकि इसमें कुछ – कुछ छोटे प्रयास होते रहे हैं लेकिन व्यवस्थित ढंग से लेखन की परंपरा कुछ लोग गार्सा-द-तासी से मानते हैं तो कुछ आचार्य रामचंद्र शुक्ल से। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'भक्तमाल' आदि ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें छिटपुट अथवा बेतरतीब ढंग से कवियों के बारे में लिखा गया है। साहित्येतिहास लेखन की अपनी समस्याएँ भी हैं। साहित्य का इतिहास लेखन के लिए सबसे जरूरी है तटस्थ होना जिसको लगभग सभी इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है। लेकिन इसका पूर्णरूपेण निर्वाह किसी भी इतिहासकार (साहित्येतिहास लेखक) के यहाँ नहीं दिखाई देता है। साहित्य के इतिहासकार की दिक्कतों को लक्ष्य करते हुए रेने वेलेक ने लिखा है कि, "साहित्य के इतिहास में इस तरह के सामग्री का सर्वथा अभाव है जिसे तटस्थ 'तथ्य' कहा जा सके।"[1] साहित्य का इतिहास केवल तथ्यों का संकलन हो सकता है लेकिन जिसे साहित्य (कोई रचना) कहा जाता है वह केवल तथ्यों के आधार पर नहीं लिखा जाता उसमें कल्पना का भी समावेश होता है। कल्पना में तथ्य और वह भी तटस्थ तथ्य की खोज संभव नहीं है।

हिंदी साहित्येतिहास – लेखन की सुगठित एवं समीक्षात्मक परंपरा का प्रस्थान बिंदु आचार्य रामचंद्र शुक्ल से माना जाता है। उन्होंने साहित्य के इतिहास को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल – पूर्व, साहित्येतिहास – लेखन की परंपरा में कालक्रम की दृष्टि से सबसे पहले गार्सा-द-तासी का नाम लिया जाता है। हालांकि कुछ विद्वान नाभादास कृत 'भक्तमाल' को भी इसी परंपरा में मानते हैं लेकिन 'भक्तमाल' केवल भक्त कवियों का ही विवरण प्रस्तुत करता है। बावजूद इसके यह ग्रंथ इतना महत्त्वपूर्ण है कि लगभग अधिकांश भक्तिकालीन कवियों के विषय में दो चार टिप्पणियाँ ही सही लेकिन कुछ न कुछ लिखा

[1] साहित्य – सिद्धान्त – रेने वेलेक, आस्टिन वारेन (अनु. – बी. एस. पालीवाल), पृ.सं. - 53, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

गया है। सभी लेखकों की अपनी सीमाएँ होती हैं जिसके कारण कुछ चीजें छूट जाती हैं लेकिन उस छूटने वाली चीज से उनकी मानसिक संकल्पना का पता चलता है और साथ ही साथ तद् युगीन संदर्भों का पता चलता है।

गार्सा-द-तासी ने 'इस्तवार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐंदुस्तानी' नाम से फ्रेंच भाषा में पुस्तक लिखी। इसका हिंदी अनुवाद लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' नाम से किया। इन्होंने अपनी पुस्तक में सभी कवियों की कृतियों एवं उनके जीवन - वृत्त का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह आज के संदर्भ में भले ही प्रासंगिक न हो लेकिन वह पहली पुस्तक है जिसमें कवियों के जीवन – वृत्त के साथ – साथ उनकी रचनाओं की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया गया। उन्होंने हिंदी के कुछ ही कवियों का विवरण दिया है। उर्दू के कवियों पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया है। इसका कारण तत्कालीन परिस्थिति हो सकती है अथवा साहित्यिक रुझान हो सकता है। जहाँ हम देखते हैं कि उस समय हिंदी कविता की भाषा ब्रज भाषा थी तथा हिंदी के अधिकांश कवि उर्दू में भी दूसरे नाम (उपनाम) से कविता लिख रहे थे। यह तथ्य इस बात को सूचित करता है कि जनता का झुकाव उर्दू के तरफ था। शायद इसी झुकाव को देखते हुए गार्सा-द-तासी ने अपनी पुस्तक में उर्दू कवियों को प्रमुखता से वर्णित किया हो। इनकी यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई थी। पहला भाग 1839 ई. में तथा दूसरा भाग 1847 ई. में प्रकाशित हुआ था।

इस परंपरा में दूसरा प्रयास शिवसिंह सेंगर ने किया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'शिवसिंह सरोज' की रचना 1883 ई. में की थी। इन्होंने अपनी पुस्तक में लगभग एक हजार के आसपास कवियों का उल्लेख किया है। उन्होंने रचनाकारों की रचनाओं से कुछ पंक्तियों को उद्धृत किया तथा रचना के स्वरूप को प्रस्तुत किया। यह उस समय के लिए यह एकदम नया प्रयोग था।

शिवसिंह सेंगर का 'वृत्त – संग्रह' इस मायने में भी महत्त्वपूर्ण है कि उसी के तत्व के आधार पर ग्रियर्सन ने अपनी मंज़िल खड़ी की। 'शिवसिंह सरोज' के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि, "एक देशी ग्रंथ जिस पर मैं अधिकांश में निर्भर रहा हूँ और प्रायः सभी छोटे कवियों और अनेक प्रसिद्ध कवियों

के भी संदर्भ में प्राप्त सूचनाओं के लिए जिसका मैं ऋणी हूँ, शिवसिंह सेंगर द्वारा विरचित अत्यंत लाभदायक 'शिवसिंह सरोज' है।"[2] ग्रियर्सन का कथन उसकी महत्ता को प्रमाणित करता है।

सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' की रचना 1888 ई. में की। यह पुस्तक 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की पत्रिका के विशेषांक के रूप में पहली बार प्रकाशित की गयी थी। इसका टिप्पणी सहित अनुवाद किशोरीलाल गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से सन् 1957 ई. में किया। इस पुस्तक में पहली बार वर्णानुक्रम की परंपरा को खारिज करके कालक्रम की परंपरा को अपनाया गया। हालांकि इनके कालक्रम एवं विवेचन की पद्धति पर एक हद तक ईसाइयत की छाप देखने को मिलता है। ग्रियर्सन की आलोचकीय दृष्टि का विकास आचार्य रामचंद्र शुक्ल में देखने को मिलती है।

आचार्य शुक्लपूर्व हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की कड़ी में अंतिम नाम मिश्रबंधुओं (गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र एवं शुकदेवबिहारी मिश्र) का आता है। इन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' की रचना चार भागों में की थी जिनमें से प्रथम तीन भाग का प्रकाशन सन् 1913 ई. में हुआ था तथा अंतिम भाग सन् 1934 ई. में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने अपनी पुस्तक में लगभग पाँच हजार कवियों का विवरण प्रस्तुत किया है। इन्होंने उस पुस्तक में कवियों के साथ – साथ युगीन प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला है। इन्होंने जो सबसे बड़ा काम किया वह यह कि अनेक अज्ञात कवियों के साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया तथा कवियों का सापेक्षिक महत्त्व निर्धारित करते हुए उनकी श्रेणियाँ बनायी। उस समय के साहित्य बोध को देखते हुए यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका साहित्य के प्रति कितना योगदान रहा है।

सभी हिंदी साहित्येतिहास लेखकों ने अपने – अपने ढंग से साहित्य को देखने एवं समझने का प्रयास किया है। इस प्रयास में इन इतिहासकारों ने जायसी को कहाँ स्थान दिया है तथा उनके संबंध में उनकी विचारधारा क्या रही है ? इसी तथ्य का आकलन करना हमारा यथेष्ट है।

---

[2] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स. अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 95, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में शुक्लपूर्व जिन साहित्येतिहासकारों ने जायसी संबंधी चिंतन को विकसित करने में विशिष्ट भूमिका निभाई उनके मतों को सामने रखकर उसका विश्लेषण विवेचन और आलोचना करने का प्रयास इस अध्याय का मूल अभिप्रेत है। इस अध्याय में हम देखते हैं कि जायसी संबंधी शुक्ल पूर्व जो साहित्येतिहासकार हैं उनके तीन वर्ग उभरते हैं। पहला वर्ग वो है जो जायसी के समकालीन भी थे और परवर्ती भी थे जिन्होंने जायसी का न नोटिस लिया है और ना ही नामोल्लेख किया है, दूसरा वर्ग ऐसा है जिन्होंने नोटिस भी लिया है और नामोल्लेख भी किया है, तीसरा वो है जिन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ रखी जिनका विकास परवर्ती हिंदी आलोचना में हुआ इसका असर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा उनके परवर्ती आलोचकों में दिखाई देता है। अब विस्तार से इनके बारे में विवेचन किया जा रहा है –

2.2 नाभादास का 'भक्तमाल' एवं जायसी

'भक्तमाल' नाभादास कृत भक्तों का जीवन चरित काव्य है। 'भक्तमाल' के छंद हिंदी साहित्य के अध्येताओं के संदर्भग्रंथ के रुप में अत्यंत प्रचलित रहा है, क्योंकि इस रचना में जिन भक्तों की जीवन झाकियाँ अंकित हुई हैं, उनमें से अनेक हिंदी के प्राचीन कवि भी हैं। दीनदयालु गुप्त ने उसकी अपूर्णता में भी पूर्णता का विशद विश्लेषण करते हुए लिखा है कि, "नाभादास जी ने जो वृत्तांत इस ग्रंथ में दिए हैं, वे बहुत ही अपूर्ण और केवल भक्तों की महिमासूचक हैं, फिर भी हिंदी के भक्त कवियों का जो कुछ भी वृत्तांत इस संग्रह में दिया हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ को सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है।"[3] इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज भी इस पुस्तक को कुछ विद्वान प्रामाणिक मानते हैं।

'भक्तमाल' के उल्लेखों का महत्त्व भक्त कवियों के अस्तित्व की प्रामाणिकता के दृष्टिकोण से स्वयंसिद्ध है। 'भक्तमाल' तथा उसी की शैली पर लिखी गयी अनेक रचनाएँ इस बात का साक्ष्य उपस्थित करती हैं कि भक्तिकाल से ही भक्ति के व्यापक प्रचार के साथ – साथ भारतीय धर्म साधना में भक्तों के महत्त्व की प्रतिष्ठा रही

[3] अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय – डॉ. दीनदयालु गुप्त, पृ.सं. – 123., भाग – 1, प्रथम संस्करण – 2004 वि.सं., हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

है। यद्यपि भक्तों के पौराणिक विशेषतः 'भागवत' के आख्यान इस महत्त्व के पूर्वकालीन स्थिति का द्योतन करते हैं तथापि भक्त और भगवान का समान महत्त्व और संसार – सागर से पार उतरने के लिए भक्तों के गुणगान की ही पर्याप्तता का परिचय 'भक्तमाल' की रचना से प्राप्त होता है। भक्तमालकार का उद्देश्य भक्तों के गुण – दोषों की आलोचना करना न था, वह तो भक्तों के अलौकिक चरित्रों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर भारत की धर्मप्राण जनता में भक्ति की चेतना को जागृत करना चाहता था। परवर्तीकाल में 'भक्तमाल' की परंपरा में आने वाले अनेक ग्रन्थों की रचना उसकी लोकप्रियता और व्यापकता का परिचय प्रस्तुत करने के साथ – साथ यह भी प्रमाणित करती है कि कवि अपने उपर्युक्त उद्देश्य में सफल हुआ है।

'भक्तमाल' की रचना के पीछे उसके रचनाकार का उद्देश्य किसी भी रचनाकार को प्रतिष्ठित करने तथा किसी की निंदा करना नहीं था। नाभादास ने तो केवल भक्त कवियों की महिमा का बखान किया है। महिमा का बखान भी पंडिताऊपन वाली भाषा में किया गया, जिसमें जबरदस्ती किसी मनुष्य को देवतुल्य घोषित किया जाता है। जिस समय में 'भक्तमाल' की रचना हुई उस समय में भक्तिकालीन कवि किसी परिचय के मोहताज नहीं थे परंतु फिर भी नाभादास की अपनी सीमाएं थीं जिसको लांघना उन्होंने उचित नहीं समझा। इस संदर्भ में रेने वेलेक ने एक बहुत ही मजेदार बात लिखी है। उन्होंने लिखा है कि, "यह सवाल तो वहीं आ जाता है जहाँ हम पुस्तकों में और साहित्य में भेद करने लगते हैं, जब हम इस या उस लेखक पर कम या अधिक पृष्ठ लिखने का निश्चय करते हैं।"[4] बहरहाल उन्होंने जो काव्यगाथा लिखी वही आगे के इतिहासकारों का पथ – प्रदर्शन करता चला आ रहा है लगभग सभी इतिहासकारों ने उनसे कुछ न कुछ लिया है।

'भक्तमाल' में कुल 214 छंदों में से 'मंगलाचरण' और 'उपसंहार' के 18 छंदों को छोड़कर शेष 196 छंदों में भक्तों से संबन्धित विवरण है। ये भक्त दो प्रकार के हैं –

1. पौराणिक भक्त जिनके अंतर्गत सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग के भक्त आते हैं तथा

[4] साहित्य – सिद्धान्त – रेने वेलेक एवं आस्टिन वारेन, (अनु. – बी. एस. पालीवाल), पृ.सं. – 53, संस्करण -2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. ऐतिहासिक भक्त जिनके अंतर्गत शंकराचार्य से लेकर नाभादास जी के समय तक के सभी प्रधान भक्त आते हैं। इन्हें ग्रंथकार ने कलियुग के भक्तों की श्रेणी में रखा है।

पौराणिक भक्तों से संबन्धित विवरण में उन्होंने अधिक तन्मयता नहीं दिखाई हैं नाभादास जी के एक छप्पय से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संभवतः पौराणिक भक्तों से संबन्धित विवरण को हम कल्पना और आश्चर्य की वस्तु समझ सकते हैं। अतएव कलियुग के भक्तों का,

“कलि विशेष परचौ प्रकट आस्तिक ह्वै कै चित धरौ।”[5]

इस कथन के साथ अधिक विस्तार के साथ परिचय दिया जा रहा है कि उनके उत्कर्ष और सफलता को दृष्टिगत कर लोगों की निष्ठा इस दिशा में प्रतिष्ठित हो।

‘भक्तमाल’ में नाभादास जी ने भक्तिकालीन कवियों की महिमा का बखान अपने मानदंड पर किया है। उन्होने संत कवियों का वर्णन तो किया है परंतु सूफी कवियों को उन्होंने अपनी काव्य – गाथा में स्थान नहीं दिया है। रैदास, कबीर, धन्ना, पीपा, सेन आदि संत कवियों की याद उन्हें आती है परंतु कुतुबन, मंझन, जायसी, दाऊद इत्यादि सूफी कवियों की याद उन्हें नहीं आती है। इन सूफी कवियों के प्रति एक तरह से उपेक्षा का भाव दिखता है नाभादास जी के यहाँ। यह उदासीनता लगभग सभी भक्तमाल ग्रंथकारों के यहाँ दिखाई पड़ता है। नाभादास जी ने सूरदास, परमानंददास एवं विट्ठलनाथ आदि सभी भक्त कवियों के विषय में कुछ – न – कुछ लिखा, विवेचन किया, परंतु सूफी कवियों के प्रति उनकी उदासीनता कई पक्षों पर सोचने को मजबूर करती है। हालांकि पहले इस बात का जिक्र किया गया है कि नाभादास ने केवल भक्त कवियों को लिया है तब यह प्रश्न उठता है कि क्या सूफी कवि भक्त नहीं थे ? क्या उनकी भक्ति अथवा अपने आराध्य के प्रति समर्पण की भावना भक्ति के अंतर्गत नहीं आती है ? अथवा क्या केवल मुसलमान होने के कारण वह अछूत माने जाएँगे तथा उनकी भक्ति अपवित्र मानी जाएगी ?

[5] भक्तमाल – नाभादास, छप्पय - 202, पृ.सं. – 493, संस्करण – 2013, गीताप्रेस, गोरखपुर (कल्याण पत्रिका के विशेषांक के रुप में प्रकाशित)

'भक्तमाल' में नाभादास जी ने कबीर के संबंध में लिखा है कि –

"भक्ति बिमुख जो धर्म सोई अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिंदू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहीं बचन सबहि के हित की भाषी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबिर कानि राखि नहीं बरनाश्रम षटदरसनी॥"[6]

इससे संबन्धित दो तीन बातें ध्यान में आती हैं। पहला यह कि कबीर ने वर्णाश्रम एवं षट्दर्शन को महत्त्व नहीं दिया। उस व्यवस्था की खामियों को देखते हुए उन्होंने इसका त्याग किया। दूसरा यह कि उन्होंने किसी का पक्ष नहीं लिया, पक्षपात नहीं किया। सबके हित (सर्वमंगल) के लिए सोचा समझा। अंतिम बात यह कि उन्होंने भक्ति के विरुद्ध धर्म को अधर्म माना। इन सभी बातों को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो बाद के आलोचकीय विस्तार का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कबीर को समाज – सुधारक तथा मस्तमौला कहने की जो परंपरा आरंभ हुई उसकी मूल जड़ 'भक्तमाल' में जमीं हुई है। बाद में चलकर पुरुषोत्तम अग्रवाल सरीखे आलोचकों ने उन्हें कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने का सबसे बड़ा कार्य किया। हालांकि हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी एप्रोच वही था परंतु उसका विस्तृत रूप पुरुषोत्तम अग्रवाल के यहाँ देखने को मिलता है। बहरहाल 'भक्तमाल' के रचनाकार ने अपने अनुरूप कवियों का वर्णन किया।

'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी ने कबीर को श्री रामानन्द जी का शिष्य बनने की घटना का जिक्र करते हुए लिखा है कि, "एक दिन आकाशवाणी हुई कि, 'अपने शरीर में तिलक रमाओ, आचार्य श्री रामानन्द जी को अपना गुरु बनाओ, गले में तुलसीमाला धारण करो' ।"[7] यह आकाशवाणी की परंपरा, जिसको

[6] भक्तमाल – नाभादास, छप्पय – 60, पृ.सं. – 242, संस्करण – 2013, गीताप्रेस, गोरखपुर (कल्याण पत्रिका के विशेषांक के रुप में प्रकाशित)
[7] भक्तमाल – नाभादास, पृ.सं. – 242, संस्करण – 2013, गीताप्रेस, गोरखपुर (कल्याण पत्रिका के विशेषांक के रुप में प्रकाशित)

पंडिताऊपन की भाषा (परंपरा) कहा जा सकता है, का निर्वाह नाभादास तथा 'भक्तमाल' के टीकाकारों की प्रवृत्ति है।

रैदास के संबंध में नाभादास ने 'भक्तमाल' में लिखा है कि,

"सदाचार श्रुति सास्त्र वचन अबिरुद्ध उचासो।
नीर खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धारयो॥
भगवत कृपा प्रसाद परम गति इति तन पाई।
राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई।
बरनाश्रम अभिमान तजि पद रज बंदहि जासु की।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रैदास की।।"[8]

इसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि, "आपने इसी मर्त्य शरीर से भगवान की कृपा और परम श्रेष्ठ गति प्राप्त की। राजसिंहासन पर बैठकर अपने शरीर में सोने का यज्ञोपवीत दिखाकर अपने पूर्व जन्म की ब्राह्मण जाति का विश्वास लोगों को दिलाया। महान पुरुषों ने अपने उच्चवर्ण एवं आश्रम को छोड़कर जिनकी चरण धूलि की वंदना की, उन रैदास जी की वाणी शंकाओं को खंडन करने में अति ही चतुर है।"[9] इस प्रकार की व्याख्या से यह तथ्य प्रतिपादित होता है कि भक्तमालकार का उद्देश्य चमत्कार उत्पन्न करने का रहा है। उन्होंने कुछ ऐसा लिखने का प्रयास किया जो उस समय की भोली – भाली जनता को चमत्कृत कर सके। रैदास जी को पूर्व जन्म का ब्राह्मण बनाया जाना इसी मानसिक स्थिति का प्रतिफलन है। इससे यह भी पता चलता है कि कहीं न कहीं भक्तमालकार की आस्था वर्णव्यवस्था में रही है। ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान देने वाली धारणा इस तरह उनके मनोमस्तिष्क पर कब्ज़ा जमा चुकी है कि बन गया तो सीधे – सीधे नहीं तो दरेरा देकर जबरदस्ती उसकी सर्वोच्चता को स्थापित किया है।

---

[8] भक्तमाल – नाभादास, छप्पय – 59, पृ.सं. – 238, संस्करण – 2013, गीताप्रेस, गोरखपुर (कल्याण पत्रिका के विशेषांक के रुप में प्रकाशित)
[9] भक्तमाल – नाभादास, छप्पय – 59, पृ.सं. – 239, संस्करण – 2013, गीताप्रेस, गोरखपुर (कल्याण पत्रिका के विशेषांक के रुप में प्रकाशित)

इन सभी स्थितियों के अलावा एक और पहलू दिखता है वह यह कि नाभादास तथा सभी भक्तमालकारों ने हिंदू भक्त कवियों के माध्यम से जनता में उनके आराध्य के प्रति विश्वास जगाने का कार्य किया है। कुछ हिंदी आलोचक इस धारणा के समर्थक हैं। यह जरुरी भी नहीं है कि हम एक ही व्यक्ति से सभी प्रकार के आलोचकीय दृष्टि की मांग करें। इसके लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल को उदाहरण स्वरुप लिया जा सकता है कि उन्होंने जायसी, सूर, तुलसी सभी के विषय में बहुत ही बढ़िया तरीके से लिखा जो आज तक के आलोचकों के लिए चुनौती बना हुआ है परंतु कबीर में केवल प्रतिभा को देखकर संतोष किया तात्पर्य यह कि उन्होंने कबीर के विषय में उस तरह से नहीं लिखा जिस तरह से अन्य भक्तिकालीन कवियों के विषय में लिखा। यह उनकी अपनी सीमा हो सकती है और इस कारण उनका महत्त्व कम नहीं हो जाता है।

2.3 गार्सा-द-तासी का जायसी संबंधी चिंतन

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा सर्वप्रथम गार्सा-द-तासी से आरंभ होती है। ग्रेट ब्रिटेन की सम्राज्ञी को अपनी पुस्तक समर्पित करते हुए तासी ने लिखा है कि, "मैं सम्राज्ञी से एक ऐसा ग्रंथ समर्पित करने का सम्मान प्राप्त करने की प्रार्थना करूँ जिसका संबंध भारतवर्ष, आपके राजदंड के अंतर्गत आए हुए इस विस्तृत और सुन्दर देश, और जो इतना खुशहाल कभी नहीं था, जितना कि वह इंग्लैण्ड के आश्रित होने पर है, के साहित्य के एक भाग से है।"[10] तात्पर्य यह कि उनका ग्रंथ भारतीय साहित्य के एक भाग से सम्बंधित है और यह सही भी है। क्योंकि पूरे भारतीय साहित्य को किसी एक ग्रंथ में समेट पाना संभव नहीं था।

गार्सा – द – तासी ने अपने समय तथा उससे पूर्व में लिखे गए सभी इतिहास ग्रंथों तथा जीवनियों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने 'भक्तमाल' का भी अध्ययन किया था। भक्तमाल के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है कि, "हिन्दुई और हिंदुस्तान में जीवनी संबंधी कुछ रोचक रचनाएँ भी मिलती हैं। 16 वीं शताब्दी के अंत में

[10] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 1, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

लिखित अत्यधिक प्रसिद्ध हिंदू संतों की एक प्रकार की जीवनी ‘भक्तमाल’ प्रधान है।”[11] उन्होंने ‘भक्तमाल’ को जीवनी विधा के रूप में देखा है। इस विषय पर मतैक्य स्थापित नहीं हो सकता कि भक्तमाल जीवनी है अथवा प्रशस्ति गायन अथवा आलोचना या फिर कुछ और भी।

जायसी संबंधी किसी भी प्रकार की सामग्री गार्सा-द-तासी के इतिहास लेखन के पहले ‘भक्तमाल’ अथवा अन्य वार्ताओं में दिखाई नहीं पड़ती है। लोक परम्परा में तुलसीदास तथा अन्य भक्त कवियों को जो स्थान प्राप्त था वह जायसी को नहीं मिल सका था। इसके कारणों की चर्चा आगे चलकर विजयदेव नारायण साही तथा रघुवंश ने की है। जायसी के संबंध में उस समय में सबसे प्रमाणिक रूप से यदि कुछ मिलता भी है तो वह गार्सा-द-तासी के इतिहास ग्रंथ में मिलता है। तासी ने लोकप्रचलित बातों तथा कहीं – कहीं इतिहास – ग्रंथों में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर जायसी का विवेचन एवं निरूपण किया है।

जायसी के संबंध में तासी ने लिखा है कि, “मलिक मुहम्मद जायसी ने (यद्यपि मुसलमान थे) हिंदुई में कवित्त और दोहरों की रचना की है।”[12] यह जो जायसी के धर्म को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उनकी महत्ता को प्रतिस्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है वह कहीं – न – कहीं उनके पाश्चात्याभिमुख चिंतन को प्रतिबिंबित करता है। जबकि जायसी से पूर्व हिन्दुई में काव्य की रचना अमीर खुसरो कर चुके थे।

हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की परम्परा में गार्सा-द-तासी को प्रस्थान बिंदु माना जाता है। इनके चिंतन को आगे के कई आलोचकों ने अपनाया तथा अपने – अपने ढंग से व्याख्यायित भी किया। गार्सा-द-तासी ने अपने ग्रंथ ‘इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी’ में जायसी के काव्य के विषय में लिखा है कि, “वे पद्मावती शीर्षक काव्य के रचयिता हैं। यह हिन्दुई छंदों और आठ चरणों के पदों में चित्तौड़ की रानी पद्मावती की

[11] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 6, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

[12] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 83, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

कथा है।"[13] इस बात का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जिस समय सूफी एवं इस्लाम से सम्बंधित साहित्य से इस मुल्क की अवाम परिचित नहीं थी तब उस समय में गार्सा-द-तासी ने अनेक संग्रहालयों में घूमकर तथा फारसी लिपि का अध्ययन करके उससे संबंधित जानकारियाँ प्रदान की।

गार्सा-द-तासी के योगदान को विभिन्न सन्दर्भों में देखा एवं परखा जाता रहा है। उन्होंने भारतीय साहित्य (विशेषकर हिंदी एवं उर्दू) के लिए जो अपनी सेवा प्रदान की वह अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने 'पद्मावत' के अंतर्वस्तु की व्याख्या करते हुए लिखा है कि, "पद्मावत सिंहल की राजकुमारी थी। उसका विवाह चित्तौड़ के राजा, रत्नसेन के साथ हुआ था ; किन्तु 1303 ई. में अलाउद्दीन द्वारा इस नगर पर अधिकार करते समय, वह और तेरह हजार अन्य स्त्रियाँ मुसलमान विजेताओं का शिकार बनने के स्थान पर, एक गुफा में बंद होकर स्वयं जलाई हुई भीषण अग्नि में नष्ट हो गई।"[14] गार्सा – द – तासी ने अपने इस वक्तव्य में यह नहीं दिखाया है कि लड़ाई का कारण रानी पद्मावती थी, बल्कि उन्होंने इस मुद्दे पर चुप्पी साध ली है। इतिहास लेखकों ने जायसी संबंधी चिंतन की आधुनिक परम्परा में इस कृत्य का मूल कारण पद्मावती का रूपवती होना तथा अलाउद्दीन का उस पर मोहित हो जाना माना है। मजुमदार, रायचौधरी तथा दत्त ने अपनी इतिहास पुस्तक 'भारत का बृहत् इतिहास' में लिखा है कि, "यह आक्रमण भी संभवतः रणथम्भौर के विरुद्ध किए गए आक्रमण के सदृश सुल्तान की राज्य विस्तार की महत्त्वकांक्षापूर्ण इच्छा का फल था। यदि परम्पराओं का विश्वास किया जाए तो इसका तात्कालिक कारण था राणा रतन सिंह की अत्यंत रूपवती रानी पद्मिनी के प्रति उसका मोहित होना किन्तु इस बात का किसी भी समकालीन इतिहास अथवा अभिलेखों में स्पष्ट उल्लेख नहीं है।"[15] इतिहास में उल्लेख भले ही न हो लेकिन लोक परम्परा इस बात में विश्वास करती है कि अलाउद्दीन के राज्य विस्तार वाली घटना हो सकती है लेकिन उसका मूल कारण पद्मिनी के सौन्दर्य के प्रति सुल्तान का आकर्षित होना है।

---

[13] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 84, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

[14] वही, पृ.सं. – 85

[15] भारत का बृहत् इतिहास (भाग -2) – मजुमदार, रायचौधरी, दत्त ; पृ.सं. – 27, तृतीय संस्करण – 1970, मैकमिलन प्रकाशन. दिल्ली

गार्सा-द-तासी ने 'पद्मावती' के स्वयं अग्नि में जल जाने वाली जिस घटना का उल्लेख किया है उसके संबंध में इतिहासकारों ने भी लिखा है। कर्नल टॉड का हवाला देते हुए मजुमदार, रायचौधरी एवं दत्त ने लिखा है कि, "जौहर नामक एक भयंकर यज्ञ रचा गया, जिसमें अपवित्रता या कारावास से बचाने के लिए स्त्रियों की आहुति दे दी जाती है। बड़े तहखाने के कमरे में जहाँ दिन में भी प्रकाश नहीं पहुँच पाता था चिता जलाई गयी तथा चित्तौड़ के प्रतिरक्षकों ने हजारों की संख्या में रानियों, अपनी स्त्रियों तथा कन्याओं को जुलूस में जाते हुए देखा। सुन्दर पद्मिनी द्वारा भीड़ की समाप्ति हुई। ... वे कन्दरा में ले जायी गई, बाहर से उसका मुँह बंद कर दिया गया और उन्हें भस्म करने वाले तत्व (अग्नि) में अपमान से छुटकारा पाने के लिए छोड़ दिया गया।"[16] यह केवल इतिहासकारों के यहाँ ही नहीं बाद के जितने भी जायसी ग्रंथकार एवं जायसी ग्रंथावली के संपादक हुए हैं लगभग सभी ने इस तथ्य को स्वीकारा है। डॉ. मनमोहन गौतम ने जायसी की इन पंक्तियों को लिखा है –

"लागीं कंठ आगि दै होरी। छार भई, जरि अंग न मोरी।"[17]

इसके अलावा उन्होंने चित्तौड़ के सभी स्त्रियों के संबंध में लिखा है कि –

"जौह भई इस्तिरी, पुरुख भए संग्राम।

पातसाहि गढ़ चूरा, चितउर भा इस्लाम।"[18]

इन सभी विवेचनों को देखते हुए यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि गार्सा – द – तासी का चिंतन आगे के साहित्येतिहासकारों के लिए एक आधारभूमि के रूप में सहायता प्रदान करता रहा है। उनके समय में सामग्री का अभाव था जिसके आधार पर उन्होंने सोचा, समझा था वह भी कोई बहुत प्रमाणिक रचना अथवा ग्रंथ नहीं था।

---

[16] भारत का बृहत इतिहास – मजुमदार, रायचौधरी, दत्त ; पृ.सं. – 27-28, तृतीय संस्करण – 1970, मैकमिलन प्रकाशन. दिल्ली

[17] जायसी ग्रंथावली (सटीक) – मनमोहन गौतम, पृ.सं. – 669, संस्करण – 1977, रीगल बुक डिपो, नई दिल्ली

[18] वही, पृ.सं. – 670

इन सभी असुविधाओं के बीच उन्होंने जो विचार किया वह उस समय सापेक्ष के हिसाब से बहुत ही उच्च कोटि का चिंतन रहा है।

गार्सा-द-तासी ने जायसी के ग्रंथों के विषय में उल्लेख करते हुए लिखा है कि, "इसी लेखक की एक 'सोरठा' शीर्षक रचना है ; वह दोहरा नाम के पद्य भेद में लिखी गयी है। कलकत्ते में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में उसकी एक प्रति सुरक्षित है।"[19] उन्होंने जिस संग्रहालय एवं पुस्तकालय की यात्रा की और उसमें से जो कुछ भी मिला उसकी चर्चा उन्होंने उसी रूप में की है। इस क्रम में उन्होंने आगे लिखा है कि, "अंत में इसी लेखक की 'परमार्थ जपजी' शीर्षक रचना जिसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ते के एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में है और 'घनावत' कविता जिसकी छोटे फोलियो में, 1067 (1656 - 57) में प्रतिलिपि की गयी, एक अत्यंत सुन्दर हस्तलिखित प्रति डॉ. ए. सेंगर के पास है।"[20] तासी ने जिन रचनाओं की चर्चा की है उनमें से केवल 'पद्मावत' पर ही आलोचकों में मतैक्य दिखता है। 'पद्मावत' के अलावा 'सोरठा' , 'परमार्थ जपजी' तथा 'घनावत' पर आलोचकों में मतैक्य नहीं बन पाता है। कयास यह भी लगाया जाता है कि जिस रचना को उन्होंने 'घनावत' कहा है वह शायद 'कन्हावत' हो।

2.4 शिवसिंह सेंगर का 'वृत्त – संग्रह' और जायसी

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की परम्परा गार्सा – द – तासी से आरंभ होती है लेकिन उसके क्रमशः विकास में कई सारे साहित्येतिहास ग्रंथों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी आलोचना का एक स्वरुप हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों के यहाँ भी देखने को मिलता है। लगभग सभी साहित्येतिहास रचनाकारों ने अपने – अपने ग्रंथों में अपनी दृष्टि का परिचय दिया है। उनकी दृष्टि एवं उनके आग्रह के आधार पर ही हिंदी

[19] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 85, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

[20] वही, पृ.सं. – 86

साहित्येतिहास की परम्परा एवं हिंदी आलोचना का विकास हुआ है। शिवसिंह सेंगर भी इसी श्रेणी के सदस्य हैं। हालाँकि शुक्लपूर्व साहित्येतिहास लेखकों के यहाँ सामग्री का अभाव रहा है परंतु जितनी सामग्री उपलब्ध थी उसके माध्यम से उन्होंने कवियों अथवा रचनाकारों के संबंध में कौन – सा रूप अख्तियार किया है ? यह प्रश्न आज भी हमारे सामने मौजूद है।

'शिवसिंह सरोज' की चर्चा मिश्रबंधु तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल दोनों के यहाँ अलग – अलग रूपों में होती है। यह सर्वविदित है कि शिवसिंह सेंगर पुलिस इंस्पेक्टर थे। 'शिवसिंह सरोज' के आरंभ में लिखा गया है कि –

"जिस्को श्री सेंगर वंशायतंस श्री मन्महाराजकुमार ठाकुर

रंजीत सेंगर तालुकेदार

कांचा जिले

उनाव के पुत्र

शिवसिंह इंस्पेक्टर पुलिस ने

बनाया।"[21]

यह तथ्य ग्रंथाकार के साथ – साथ उनके पिता, श्री रंजीत सिंह सेंगर, एवं उनके गाँव एवं पद को सूचित करता है।

'शिवसिंह सरोज' की रचना केवल और केवल कवियों के जीवनवृत्त एवं उनके काव्य का परिचय देने के उद्देश्य से की गयी है। जबकि इस ग्रंथ के लेखन से पहले गार्सा-द-तासी की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी जिसमें कवियों का परिचय वर्णक्रमानुसार दिया गया था। उस पुस्तक में कवियों का विवरण गार्सा – द – तासी ने कालक्रमानुसार से देने की योजना बनाई थी जो पूर्ण नहीं हो पायी। गार्सा-द-तासी ने लिखा है कि, "मौलिक

[21] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 29, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

जीवनियाँ जो मेरे ग्रंथ का मूलाधार हैं सब अकारादिक्रम में रखी गयी हैं। मैंने यही पद्धति ग्रहण की है, यद्यपि शुरू में मेरा विचार कालक्रम ग्रहण करने का था : और मैं यह बात छिपाना नहीं चाहता कि यह क्रम अधिक अच्छा रहता, या कम से कम जो शीर्षक मैंने अपने ग्रंथ को दिया है उसके अधिक उपयुक्त होता ; किन्तु मेरे पास अपूर्ण सूचनाएँ होने के कारण उसे ग्रहण करना कठिन ही था।"[22] उन्होंने अपनी जो असमर्थता जाहिर की है वह शिवसिंह सेंगर के यहाँ भी पूरी नहीं होती है। 'शिवसिंह सरोज' के लेखन के कारणों की चर्चा करते हुए शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि, "संवत् 1933 में हमने दो एक ग्रंथ भाषा कवि लोगों के जीवन – चरित्र विषयक ऐसे देखे जिन्हें मतिराम इत्यादि ब्राह्मणों को ग्रंथकर्ता ने लिखा है कि, वे महापात्र भाट असनी के हैं और इसी भाँति बहुत सी बातें देखि हमसे चुप नहीं रहा गया। हमने सोचा कि अब कोई ग्रंथ ऐसा बनाया चाहिए जिसमें प्राचीन और नवीन कवि लोगों के जीवन चरित्र सहित सन संवत् औ जाति औ निवास औ कविताई के ग्रंथों समेत विस्तारपूर्वक होवै।"[23] इनके इस कथन से साफ़ जाहिर होता है कि इन्होंने इन कवियों का केवल संग्रह तैयार किया। उन्होंने रचनाकारों के विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन की तरफ ध्यान भी नहीं दिया। इस कथन के कारण तथा उनके समग्र कार्यों के मूल्यांकन के बाद ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "हिंदी के कवियों का एक वृत्त – संग्रह 'शिवसिंह सरोज' ने सन् 1883 ई. में प्रस्तुत किया था।"[24] इस तथ्य को ख़ारिज नहीं किया जा सकता कि 'शिवसिंह सरोज' वृत्त – संग्रह है।

'शिवसिंह सरोज' की स्थिति कुछ उसी प्रकार दिखती है जैसे नाभादास कृत 'भक्तमाल' की थी। जिस प्रकार से नाभादास ने 'भक्तमाल' में अन्य भक्त कवियों का परिचय तो दिया है लेकिन जायसी के संबंध में उन्होंने एक पंक्ति तक नहीं लिखा ठीक उसी प्रकार शिवसिंह सेंगर के 'शिवसिंह सरोज' में भी जायसी संबंधी किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। भूमिका में जिस बात पर शिवसिंह सेंगर ने बल दिया है उसी बात पर कायम नहीं रह पाते। भूमिका में उन्होंने लिखा है कि, "इस संग्रह के बनाने का कारण केवल कवि लोगों के काल

[22] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 12, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

[23] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 31, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

[24] हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. – 3, संस्करण – 2009, (प्रथम संस्करण का वक्तव्य), कमल प्रकाशन, नई दिल्ली

औसर देश सन् संवत् बताने का है।"[25] उन्होंने स्वयं निर्धारण कर लिया है कि किस कवि के देश और समय को बताया जाएगा और किस कवि के देश और समय को नहीं बताया जाएगा। उन्होंने जायसी को छोड़कर भक्तिकाल के प्रमुख कवियों (कबीर, सूर, तुलसी और मीराबाई) के विषय में लिखा है। उन्होंने कबीर की पंक्तियों को उद्धृत किया है –

"एक दो होई तो मैं समझाऊँ, जग से कहा बसाइ।
समुझि 'कबीर' रहै घट भीतर, को बकि मरै बलाइ॥
पथरी भीतर अगिनि है, बाँटै पिसै कोइ।
लाख जतन करि काढ़बी, आगि न परगट होइ॥"[26]

इन पंक्तियों को देखने से यह प्रतीत होता है कि जो परम्परा गार्सा-द-तासी के यहाँ दिखाई देती है उससे आगे बढ़कर शिवसिंह सेंगर ने कुछ नया साहित्य प्रेमियों के लिए प्रस्तुत करने का प्रयास किया, लेकिन वह नयापन कितना प्रासंगिक रहा उस समय में यह कह पाना कठिन है। आज के समय में वह उतना प्रासंगिक नहीं है क्योंकि उन्होंने किसी भी कवि के काव्य की समीक्षा एवं विश्लेषण करने का बीड़ा नहीं उठाया जबकि तासी के यहाँ एक तरह से धुंधली ही सही लेकिन विवेचनात्मक – विश्लेष्णात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टि दिखाई पड़ती है। शिवसिंह सेंगर जहाँ कबीर की दो चार पंक्तियों को उद्धृत करके ही संतोष कर लेते हैं वहीं गार्सा-द-तासी ने कबीर के संबंध में लगभग 16 पृष्ठों तक विवेचनात्मक ढंग से लिखा है। हालाँकि उन्होंने भी बहुत कुछ नाभादास कृत 'भक्तमाल' से उठाकर रख दिया है, परंतु जहाँ उन्होंने स्वयं कबीर के संबंध में लिखा है वह आज भी प्रासंगिक है। गार्सा-द-तासी ने कबीर के संबंध में लिखा है कि, "कबीर ने न केवल हिंदी में लिखा ही, वरन् इस सामान्य भाषा के प्रयोग पर जोर दिया, और उन्होंने संस्कृत तथा पंडितों की अन्य भाषाओं का विरोध किया।"[27] आज गार्सा-द-तासी के लेखन के लगभग 150 वर्ष बाद भी यह तथ्य उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में रहा होगा। बहरहाल

[25] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 31, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[26] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 87-88, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[27] हिन्दुई साहित्य का इतिहास – गार्सा द तासी (अनु. – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), पृ.सं. – 23, संस्करण – 1953, हिंदुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

शिवसिंह सेंगर ने कबीर के अलावा तुलसीदास के संबंध में लिखा है। उन्होंने उनकी प्रचलित पंक्ति को उद्धृत किया है –

"बंदौ गुरु पद पदुम परागा
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारु
समन सकल भाव रुज परिवारु॥"[28]

इसी प्रकार से उन्होंने अन्य भक्तिकालीन कवियों का परिचय दिया है उनकी कविताओं के माध्यम से। उन्होंने सूरदास के पदों का भी उल्लेख किया है। सम्पूर्ण 'शिवसिंह सरोज' में जायसी नामक किसी कवि का कहीं भी जिक्र नहीं पाया जाता है। 'जोइसी कवि' नाम से किसी कवि के कविताओं का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया गया है –

"रुचि पाँइ झँवाइ दई मिहँदी, जिहिको रंग होत मनौ नगु है
अब ऐसे में श्याम बुलावै सखी, कहि क्यों चलौं, पंक भयो मगु है।
अधराति, अंधेरी, न सूझै कछू, भनि 'जोइसी' दूति न क्यौं संगु है
अब जाऊँ तो जात धुयो रंगु है, रंगु राखौ तौ जात सबै रंगु है।।"[29]

'जोइसी' नाम कुछ –कुछ जायसी से मिलता जुलता प्रतीत होता है लेकिन उनके काव्य शिल्प एवं भाषा को देखकर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि जोइसी और जायसी दो कवि हैं एक नहीं। शिवसिंह सेंगर ने जोइसी का विवरण प्रस्तुत किया है जायसी का नहीं। 'शिवसिंह सरोज' के अंतिम भाग में कवियों का जीवन – चरित्र लिखा गया है उसमें 'जोयसी कवि' नामक कवि के जीवन चरित्र के विषय में केवल यही लिखा गया है

[28] शिवसिंह सरोज – शिवसिंग सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 208, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[29] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 197, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

कि, "इनके कवित्त हजारा में हैं।"[30] पूरा विवेचन देखने पर यह लगता है कि इन्होंने जायसी को अपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया है। जबकि इनसे पहले एक पाश्चात्य साहित्येतिहास लेखक (गार्सा-द-तासी) ने अपने ग्रंथ में जायसी को स्थान दिया था और उनकी महत्ता को प्रतिपादित करने का सार्थक प्रयास किया था।

'शिवसिंह सरोज' में सबसे हैरान कर देने वाली बात यह दिखाई पड़ती है कि जिन ग्रंथों को आधार बनाकर यह ग्रंथ लिखा गया है उसमें कर्नल टॉड का भी ग्रंथ शामिल है। शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि, "जिन – जिन पुस्तकों से हमको इस ग्रंथ के बनाने में सहायता मिली है, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं – .... 11. टॉड साहेब रजीडंट राजपूताने कृत राजिस्तान नाम तवारीख जो संवत् 1880 में बनायी गयी औ जिसमें प्राचीन कवीश्वरों चंद इत्यादि का वर्णन है।"[31] इस पुस्तक से सहायता लेने के बावजूद भी उन्होंने जायसी कृत 'पद्मावत' की चर्चा नहीं की है। जबकि इतिहासकारों ने कर्नल टॉड के हवाले से पद्मावती के सती होने की घटना को अपने इतिहास ग्रंथ में प्रमुखता से शामिल किया है। इन सभी विवेचनों के बावजूद भी कहीं न कहीं यह भासित होता है कि शिवसिंह सेंगर से चूक हो गई जो उन्होंने जायसी के सन्दर्भ में नहीं लिखा। जायसी भक्तिकालीन प्रमुख कवियों में से हैं जिनको आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास तथा सूरदास से तनिक भी कम करके नहीं आँका है। गार्सा-द-तासी और शिवसिंह सेंगर के इतिहास ग्रंथ को देखा जाए तो गार्सा-द-तासी का चिंतन शिवसिंह सेंगर के चिंतन से बहुत आगे है। गार्सा-द-तासी ने अपने चिंतन में आलोचकीय दृष्टि का प्रयोग किया है जबकि शिवसिंह सेंगर ने केवल संग्रह किया है किसी प्रकार के चिंतन एवं मनन की आवश्यकता उन्होंने महसूस नहीं की है। हालाँकि 'शिवसिंह सरोज' सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में आज भी इस्तेमाल किया जाता है और जार्ज ग्रियर्सन के इतिहास ग्रंथ की आधारभूमि इसी ग्रंथ को माना जाता है।

---

[30] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 32-33, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

[31] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर (सं. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 32-33, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

2.5 ग्रियर्सन का इतिहास-लेखन एवं जायसी

जायसी संबंधी चिंतन की परम्परा साहित्येतिहास के माध्यम से सबसे पहले गार्सा-द-तासी के यहाँ दिखाई देती है। गार्सा-द-तासी और ग्रियर्सन के चिंतन में अनेक भिन्नताएँ हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' की रचना 1888 ई. में की। कुछ विद्वानों का मत है कि हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन में गार्सा-द-तासी को प्रस्थान बिंदु माना जाना चाहिए। किशोरीलाल गुप्त ने ग्रियर्सन की पुस्तक का टिपण्णी सहित अनुवाद 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से सन 1957 ई. में किया। गार्सा-द-तासी ने जो 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी' नामक हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा उसमें केवल कवियों का संग्रह किया गया है। उसमें न तो किसी काल का जिक्र किया गया है और न ही किसी युग प्रवृत्ति विशेष का। उल्लेख न करने के पीछे चाहे कोई भी कारण रहा हो या उनकी स्वयं की विवशता ही क्यों न रही हो, जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में किया है, लेकिन इस तथ्य का अभाव उनके यहाँ प्रत्यक्ष रूप में दिखाई पड़ता है। इन सभी तथ्यों को लेकर कुछ आलोचक यह मानते हैं कि जार्ज ग्रियर्सन से पहले जो प्रयास किया गया वह किसी भी अर्थ में साहित्य का इतिहास नहीं हो सकता। किशोरीलाल गुप्त ने हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास का संपादन करते हुए आरंभ में ही लिखा है कि, "तासी ने अपने ग्रंथ को यद्यपि इतिहास कहा है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें न तो कवियों का विवरण काल – क्रमानुसार दिया गया है न काल विभाग किया गया है ; और जब काल विभाग ही नहीं है तब काल – प्रवृत्ति – निरूपण की आशा कैसे की जा सकती है। इस ग्रंथ में वर्णानुक्रम से कवि प्रस्तुत किए गए हैं। यही दशा 'सरोज' की भी है। यह भी वर्णानुक्रम से कवियों का संक्षिप्त परिचय, अधिकांश में नामोल्लेख मात्र, देता है और इतिहास संज्ञा का अधिकारी नहीं हो सकता।"[32] यह सत्य है कि गार्सा-द-तासी तथा शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रंथ में कालक्रम का ध्यान नहीं रखा बल्कि उन्होंने पहले से चली आ रही वर्णानुक्रम की परम्परा का निर्वाह किया। 'शिवसिंह सरोज' की भूमिका कुछ इस तरह से लिखी

[32] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 4, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

गयी है कि ग्रंथकार अपनी पुस्तक (ग्रंथ) को न भूतो न भविष्यत् की तरह समझ रहा है। तात्पर्य यह कि न आज तक ऐसा ग्रंथ लिखा गया और न ही आगे लिखे जाने की कोई उम्मीद भी है। 'शिवसिंह सरोज' की भूमिका में शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि, "हमको इस बात के प्रकट करने में कुछ संदेह नहीं है कि ऐसी संग्रह कोई आज तक नहीं रची गयी।"[33] यह तथ्य इस बात को साबित करता है कि उनकी नजर में वह ग्रंथ सबसे अधिक प्रमाणिक एवं रोचक था।

जार्ज ग्रियर्सन ने पहली बार उस प्रणाली की शुरुआत की जिसमें काल – क्रमानुसार कवियों का वर्णन एवं उस युग की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया। इस प्रणाली की शुरुआत तो ग्रियर्सन ने किया लेकिन इसका सम्यक् विकास अथवा पूर्ण रूपेण विकास आचार्य रामचंद्र शुक्ल के यहाँ दिखाई पड़ता है। किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है कि, "यह हिंदी साहित्य के इतिहास के नींव का वह पत्थर है, जिस पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भव्य भवन निर्मित किया है।"[34] यह तथ्य ग्रियर्सन के चिंतन की ऊंचाई को प्रमाणित करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे कवि – वृत्त – संग्रह कहा है। उन्होंने लिखा है कि, "सन 1889 में डॉ. (अब सर)ग्रियर्सन ने 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' के नाम से एक वैसा ही बड़ा कवि – वृत्त – संग्रह निकाला।"[35] शुक्ल जी के अनुसार भले ही कवि – वृत्त – संग्रह हो लेकिन उसने जो परिपाटी बनायी उसका सम्यक निर्वाह शुक्ल जी के यहाँ दिखाई पड़ता है। हालाँकि ग्रियर्सन के यहाँ कई ऐसे प्रसंग आते हैं जिसमें उन्होंने किसी प्रकार से सोचने – विचारने का कार्य नहीं किया वरन् उन्होंने तो 'शिवसिंह सरोज' से उठाकर रख दिया है।

ग्रियर्सन के यहाँ जायसी संबंधी विवेचन दृष्टि का विस्तार होता है। पहले लिखे गए अन्य दो ग्रंथों को देखते हुए यह बेहिचक कहा जा सकता है कि जायसी संबंधी आलोचना एवं विवेचन दृष्टि का विस्तार ग्रियर्सन

[33] शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर, पृ.सं. – 31, संस्करण – 1970, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

[34] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 5, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

[35] हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. – 3, संस्करण – 2009, (प्रथम संस्करण का वक्तव्य), कमल प्रकाशन, नई दिल्ली

के यहाँ दिखाई पड़ता है। जायसी एवं उनके द्वारा रचित 'पद्मावत' का विवेचन – विश्लेषण भिन्न – भिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से किया है। किसी को उसमें प्रेम के अलौकिक स्वरुप का दर्शन होता है तो किसी को सूफीवाद की प्रतिष्ठा दिखाई पड़ती है। ग्रियर्सन ने 'पद्मावत' को दार्शनिक महाकाव्य की संज्ञा प्रदान की है। उन्होंने लिखा है कि, "मलिक मुहम्मद (उपस्थित 1540 ई.) ने मुसलमान और हिंदू दोनों आचार्यों से पढ़ा था और उन्होंने अपने युग की शुद्धतम भाषा में 'पद्मावत' नामक दार्शनिक महाकाव्य लिखा।"[36] इसी दार्शनिकता को आगे के आलोचकों ने इश्क मजाजी से इश्क हकीकी तक का सफ़र बताया है। मतलब वही है लेकिन उसका स्वरूप बदल गया है। लगभग सभी सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में आत्मा का परमात्मा से मिलन कराया है। जायसी ने भी इस परम्परा का निर्वाह अपनी रचना में किया है।

'पद्मावत' अथवा किसी भी सूफी काव्य रचना में जिस प्रकार से तत्वचिंतन तथा ईश्वर के प्रति अनुराग का भाव दिखाई देता है वह भाववाद की स्थापना करता है। केवल सूफी काव्य ही नहीं वरन पूरा भक्तिकालीन साहित्य (कुछ कवियों को छोड़कर) भाववाद पर टिका हुआ है, परंतु उस भाववाद में भी एकरूपता दिखाई नहीं पड़ती है। यही भाववादी चिंतन सूफियों के यहाँ किसी और रूप में दिखाई पड़ता है तो संत कवियों के यहाँ किसी और रूप में। हिंदी के सूफी कवियों में जायसी का नाम बहुत ही आदर तथा प्रमुखता से लिया जाता है। जायसी के काव्य के स्वरुप तथा अंतर्वस्तु में कई ऐसे स्थान आते हैं जहाँ उन्होंने भारतीय – दर्शन तथा सूफी – दर्शन का समन्वय किया है। यह समन्वयवादी परम्परा लगभग सभी सूफी कवियों के यहाँ दिखाई देती है। यह काव्य में निहित दर्शन ही कहीं – न – कहीं ग्रियर्सन को प्रेरित करता है जिसके कारण उन्होंने उसे 'दार्शनिक – महाकाव्य' की संज्ञा प्रदान की है।

जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक में प्रमुख कवियों के नाम के हिसाब से अलग – अलग अध्याय ही बना दिया है। उन्होंने जायसी, सूर तथा तुलसीदास जैसे कवियों के नाम एवं तद्-युगीन काव्य – प्रवृत्तियों के आधार

[36] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 3, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

पर अध्याय का नाम रखा है जैसे – मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेम (Romantic) कविता । ग्रियर्सन ने इस अध्याय में जायसी के वर्णन के साथ – साथ इस अध्याय के परिशिष्ट में दो कवियों (दिल्ह एवं नरोत्तमदास) के विषय में भी सूचनात्मक जानकारी प्रस्तुत की है। ग्रियर्सन ने जायसी का विवेचन अपने मानदंडों के आधार पर किया है । उन्होंने लिखा है कि, "वह कोई बहुत विद्वान व्यक्ति नहीं कहे जाते, परंतु अपनी बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। यह इस तथ्य से भी प्रकट होता है कि उन्होंने जनता के लिए जनता की बोलचाल की भाषा में लिखा ।"[37] ग्रियर्सन ने उस नब्ज़ को पकड़ा है जिसके आधार पर आज तक भक्तिकालीन कवियों की प्रशंसा की जाती है। तुलसीदास को यदि देखा जाए तो उन्हें संस्कृत का पूरा ज्ञान था लेकिन उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना लोकभाषा में की। यह हम सभी जानते हैं कि इसी कारण आज तक 'रामचरितमानस' लोगों का कंठहार बना हुआ है। भक्तिकाल के लगभग सभी कवियों की यह प्रवृत्ति रही है कि सभी कवियों ने अपने काव्य की रचना जनभाषा अथवा लोकभाषा में की है। चाहे कबीर को देखा जाए चाहे सूर अथवा मीराबाई को, तुलसी को तो इसमें महारत हासिल है। ग्रियर्सन ने जायसी के संबंध में लिखते समय सबसे बड़ा काम यह किया कि उन्होंने 'पद्मावत' का कथासार एवं कर्नल टॉड द्वारा लिखा गया 'राजस्थान का इतिहास' इन दोनों पुस्तकों में आए हुए पद्मावती संबंधी प्रसंग को आमने – सामने रखकर उसके महत्त्व एवं ऐतिहासिकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। सबसे पहले उन्होंने 'पद्मावत' के कथासार को विस्तार से लिखा है तदुपरांत टॉड के इतिहास ग्रंथ में उल्लिखित बिंदु के सारांश को लिखा है। टॉड के हवाले से उन्होंने लिखा है कि "मलिक मुहम्मद ने नायक का नाम भिमसी से रतन में बदल दिया है जो उस समय मेवाड़ का राजा था, जब यह ग्रंथ लिखा गया।"[38] आधुनिक आलोचकों की मान्यता है कि जायसी रचित 'पद्मावत' का पूर्वार्द्ध काल्पनिक है तथा उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक। उतरार्द्ध में इतिहास की प्रतिछाया बहुत ही साफ़ ढंग से दिखाई पड़ती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि जायसी ने इसके उत्तरार्द्ध भाग में भी कल्पना का सहारा लिया है। इसी तथ्य को कर्नल टॉड ने भी लिखा

---

[37] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 81, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

[38] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 84, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

है। पूर्वार्द्ध भाग में जिस तरह से जायसी ने फारसी प्रेम पद्धति का निरूपण किया है वह प्रेम पद्धति उत्तरार्द्ध में आते – आते भारतीय शैली की हो जाती है।

'पद्मावत' संबंधी आलोचना की एक लम्बी परंपरा है, जिसमें 'पद्मावत' के ग्रंथकार तथा आलोचकों की एक लम्बी श्रृंखला है। ग्रियर्सन तथा गार्सा-द-तासी इसके आरंभिक बिंदु अथवा प्रस्थान बिंदु (Point of departure) माने जा सकते हैं। हालाँकि गार्सा-द-तासी ने कुछ भी उस तरह से नहीं लिखा है जायसी के संबंध में जिस आधार पर उन्हें आलोचकीय परम्परा में शामिल किया जा सके। बहरहाल ग्रियर्सन ने जायसी संबंधी चिंतन उनकी रचना 'पद्मावत' को केंद्र में रखकर किया है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि, "मलिक मुहम्मद की कृति एक उत्कृष्ट तथा प्रायः अकेले उदाहरण के रूप में है, जो यह संकेत करती है कि एक हिंदू मस्तिष्क जो साहित्य और धर्म के जंजाल से अलग हो गया हो क्या कर सकता है।"[39] यहाँ आकर ग्रियर्सन ने कुछ ऐसा लिख दिया है जिससे मामला गड़बड़ा जाता है हिंदू मस्तिष्क के रूप में जायसी को लिया नहीं जा सकता और यदि रत्नसेन को मान भी लिया जाए तो स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती है।

ग्रियर्सन के चिंतन पर पाश्चात्य (ईसाइयत) प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह प्रभाव कहीं गौण तो कहीं मुखर रूप में दिखाई देता है। जायसी संबंधी चिंतन में ग्रियर्सन ने हिंदू तथा मुसलमान दोनों धर्मों को आमने – सामने रखकर उनको मापने का कार्य किया है। उन्होंने लिखा है कि, "मालिक मुहम्मद का आदर्श अत्यंत उच्च है और इस मुसलमान फ़क़ीर के सम्पूर्ण काव्य में, अपने देशवासी हिंदुओं के कुछ महात्माओं की सी विशालतम उदारता और सहानुभूति की शिराएँ सर्वत्र प्रवाहित हैं, जबकि हिंदू लोग अभी अँधेरे में ही उस प्रकाश के लिए टटोल रहे थे, जिसकी झलक उनमें से कुछ को मिल भी गयी थी।"[40] यह अजीब त्रासदी मानी जानी चाहिए कि कवियों की तुलना धर्मगत आधार पर ग्रियर्सन जैसा व्यक्ति कर रहा है। इस कारण एक ऐसी परंपरा की शुरुआत हुई जिसमें

[39] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 85, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

[40] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – जार्ज ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 51, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

जायसी तथा अन्य सूफी कवियों के प्रति एक अलग रवैया अपनाया गया। हालाँकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सेक्युलर मानसिकता का परिचय देते हुए जायसी को उच्च स्थान प्रदान किया। ग्रियर्सन के यहाँ द्वन्द्व की स्थिति बनी रहती है। एक तरफ तो उन्होंने जायसी में हिंदुओं के कुछ महात्माओं के लक्षण देखे हैं और दूसरी तरफ हिंदू कवियों के विषय में टिप्पणी कर रहे हैं कि वो अभी अँधेरे में ही इधर – उधर भटक रहे हैं। जायसी सूफी कवियों में भी सबसे पहुंचे हुए सूफी कवि थे। उनके प्रेम की ऊँचाई तक अन्य कोई सूफी कवि नहीं पहुँच पाया है। लेकिन ग्रियर्सन ने उसे धर्म विशेष से जोड़ दिया। जायसी के चिंतन के संबंध में तब से लेकर आज तक आलोचना सक्रिय रही है। लेकिन आलोचकों ने हिंदू तथा मुसलमान हृदय को अलग रखकर काव्य को चिंतन का आधार बनाया न कि धर्म को। ग्रियर्सन के समय को ध्यान में रखा जाय तो उस समय तक आलोचना की परम्परा भी ठीक ढंग से आरंभ नहीं हुई थी। भारतेंदु तथा उनके मंडल के कुछ कवियों ने इस क्षेत्र में छिट – पुट प्रयास किया था। उस युग को देखते हुए ग्रियर्सन की महत्ता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

इन सभी विवेचनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि ग्रियर्सन ने कई ऐसे तथ्यों को सामने लाने का प्रयास किया जो उनके पूर्ववर्ती इतिहासकार नहीं ला सके थे। उन्होंने व्यवस्थित रूप से कालक्रम तथा युगीन प्रवृत्ति के विश्लेषण की परम्परा आरंभ की जिससे प्रेरित होकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में इस परम्परा का निर्वाह किया। ग्रियर्सन ने जायसी संबंधी चिंतन को नया फलक प्रदान किया। उन्होंने जायसी का मूल्यांकन तद् युगीन सन्दर्भों तथा ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में किया। हालाँकि उनके यहाँ विश्लेषण – विवेचन की वह प्रखरता दिखाई नहीं देती है जो आगे के अन्य साहित्येतिहासकारों के यहाँ दिखाई देती है। बहरहाल ग्रियर्सन का महत्त्व उस समय को देखते हुए अत्यंत बढ़ जाता है कि जब साहित्य के इतिहास लेखन में शिवसिंह सेंगर जैसे लोग केवल वृत्त – संग्रह तैयार कर रहे हो तब ग्रियर्सन जैसा व्यक्ति तमाम खतरों को मोलकर आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश करता है, इससे ज्यादा और क्या उम्मीद की जा सकती है !

2.6 मिश्रबंधु का चिंतन एवं जायसी

आचार्य रामचंद्र शुक्लपूर्व हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में प्रमुख व अंतिम नाम मिश्रबंधुओं का लिया जाता है। 'मिश्रबंधु – विनोद' की रचना 1913 ई. में संपन्न हुई। इस पुस्तक के तीन भागों का प्रकाशन सन् 1913 में हुआ तथा अंतिम चौथे भाग का प्रकाशन सन् 1934 ई. में हुआ। मिश्रबंधुओं ने इतिहास लेखन का विचार बहुत पहले किया था जो किसी कारणवश संभव नहीं हो पाया, उन्होंने लिखा है कि, "हिंदी इतिहास ग्रंथ बनाने का विचार पहले पहल दिसंबर संवत् 1958 की सरस्वती पत्रिका में प्रकट हुआ था। उस समय एक सौ समालोचकों के सहारे ऐसा करने का भाव था।"[41] यह भाव सन् 1901 से चला आ रहा था जिसकी पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति 'मिश्रबंधु – विनोद' में होती है। इन लेखकों ने पूर्ववर्ती साहित्येतिहास लेखकों की पुस्तकों का यथोचित उपयोग किया। 'मिश्रबंधु – विनोद' के प्रकाशन के लगभग साथ ही साथ तुलनात्मक हिंदी आलोचना (देव बनाम बिहारी) की परंपरा आरंभ होती है। मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक में इस अवधारणा का निर्वाह किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक के विस्तार के संबंध में लिखा है कि, "प्रत्येक कवि की विस्तृत आलोचना करने में, कवि – संख्या – बाहुल्य से, ग्रंथ बहुत बढ़ जाता, और कुछ भी स्पष्ट अनुमति न देने से कविता से कम परिचित पाठकों को प्रत्येक कवि कि बड़ाई छोटाई का बहुत कम ज्ञान हो सकता।"[42] तात्पर्य यह कि इन्होंने किसी कवि के सम्यक् विवेचन की महत्ता को ध्यान नहीं दिया बल्कि उस कवि को अन्य कवि की अपेक्षा बड़ा या छोटा साबित करने का प्रयास किया।

मिश्रबंधुओं के यहाँ आते – आते हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा काफी हद तक समृद्ध हो गयी थी। उस समय तक नागरी प्रचारणी सभा की कई खोजें सामने आ चुकी थीं। कई अज्ञात कवियों के विषय में नई – नई सूचनाएँ प्राप्त हो रही थीं। इन सभी सूचनाओं एवं खोजों का उपयोग करते हुए मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु – विनोद' नामक एक ऐसा संग्रह तैयार किया जिसमें लगभग 4600 कवियों का विवरण उपलब्ध था। आचार्य

---

[41] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 2, गंगा – ग्रंथाकार, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., लखनऊ

[42] वही, पृ.सं. – 10

रामचंद्र शुक्ल ने भी कई जगहों पर इनका उपयोग किया है। उन्होंने लिखा है कि, "सन् 1913 ई. में सारी सामग्री (काशी नागरी प्रचारणी सभा की खोजों एवं रिपोर्टों) का उपयोग करके मिश्रबंधुओं (श्रीयुत पं. श्यामबिहारी मिश्र आदि) ने अपना बड़ा भारी कवि – वृत्त – संग्रह 'मिश्रबंधु – विनोद', जिसमें वर्तमान काल के कवियों और लेखकों का भी समावेश किया गया है, तीन भागों में प्रकाशित किया।"[43] आधुनिक काल के लगभग 750 लेखकों की सूची उन्होंने पहले संस्करण में शामिल किया था बाद में परिवर्धित संस्करण में इन आधुनिक कवियों को अन्य सभी कवियों के साथ ही शामिल किया।

मिश्रबंधुओं ने साहित्येतिहास लेखन में कालक्रम का ध्यान रखा है। उन्होंने जायसी को प्रौढ़ मध्यकाल में सौरकाल के अंतर्गत रखा है। जायसी के संबंध में लिखते हुए उन्होंने उनकी रचनाओं का जिक्र किया है जिसमें उनके द्वारा प्रणीत दो ग्रंथ ही बताए गए हैं। उन्होंने लिखा है कि, "इन्होंने (जायसी ने) 'अखरावट' और 'पद्मावत' दो ग्रंथ बनाए जो हमारे पास प्रस्तुत है।"[44] इससे यह पता चलता है कि गार्सा-द-तासी से मिश्रबंधु तक आते – आते जायसी की दो रचनाओं की जानकारी मिल चुकी थी और उसका संपादन भी लगभग हो चुका था। 'अखरावट' तथा 'पद्मावत' की प्रमाणिक जानकारी के आधार पर ही मिश्रबंधुओं ने इस बात का उल्लेख किया है कि वह हमारे पास प्रस्तुत है।

'मिश्रबंधु – विनोद' में जायसी के विविध पक्षों पर चर्चा की गयी है। मिश्रबंधुओं ने 'पद्मावत' के आरंभ में आए मसनवी शैली की परंपरा को बहुत ही रोचक ढंग से व्याख्यायित किया है उनका प्रयास रहा है कि कोई पाठक यह न समझे कि जायसी मुसलमान होने के कारण तत्कालीन शासक की प्रशंसा करते हैं। उन्होंने लिखा है कि, "शेरशाह ने हिंदुओं को भी अपने राज्य में उच्च पद दिए सो वह एक लोकप्रिय शासक था भी। बादशाह के नाम लिखने की यह आवश्यकता पड़ी कि फारसी नियमानुसार ग्रंथ बनाने में खुदा, रसूल और खलीफाओं की

[43] हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. – 03, संस्करण – 2009, (प्रथम संस्करण का वक्तव्य), कमल प्रकाशन, नई दिल्ली

[44] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 245, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ

स्तुति करके उस समय के बादशाह की भी तारीफ की जाती है ।"[45] हालाँकि मसनवी शैली के संबंध में आगे चलकर विजयदेवनारायण साही ने कई तरह के प्रश्नों की बौछार कर दी है। उन्होंने जायसी को सूफीवाद के घेरे से निकालने का प्रयास किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ तथा दंतकथाएँ आज भी प्रचलित हैं। कभी उनके जन्मस्थान को लेकर तो कभी उनके नामकरण को लेकर विद्वानों ने अपना – अपना मत व्यक्त किया है। मिश्रबंधुओं ने उनके नामकरण के संबंध में लिखा है कि, "इनका नाम मोहम्मद था, मलिक पद इनके नाम से आगे सम्मान सूचक लगा दिया गया है, और जायस में रहने के कारण ये जायसी कहलाने लगे। इस प्रकार इनका पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी पड़ गया। आप बहुश्रुत और बहुज्ञ थे ।"[46] नाम के आगे अपने निवास स्थान को जोड़ने की परम्परा आज भी उर्दू शायरों एवं ग़ज़लकारों में दिखाई देती है। इस कारण मिश्रबंधुओं के बात से असहमति नहीं हो सकती है। इन्होंने जायसी को बहुश्रुत तथा बहुज्ञ माना है जबकि इनके पहले के साहित्येतिहासकारों ने इन्हें विद्वता के लिए नहीं बल्कि बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध माना था।

'पद्मावत' को केंद्र में रखकर आलोचकों ने जायसी के विभिन्न पक्षों का विवेचन –विश्लेषण किया है। 'पद्मावत' को कुछ आलोचक अवधी भाषा का पहला प्रबंधकाव्य मानते हैं। स्वयं ग्रियर्सन ने लिखा है कि, "मालिक मुहम्मद के साथ भाषा साहित्य का शैशवकाल समाप्त समझा जाता है ।"[47] यह तर्क उनके समय में प्रासंगिक हो सकता है क्योंकि उनके समय तक बहुत छानबीन नहीं हुई थी लेकिन 'नागरी प्रचारणी सभा' के रिपोर्टों एवं खोजों के कारण अनेक नवीन तथ्य सामने आए हैं। इन तथ्यों के आधार पर मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि, "बहुत लोगों का मत है कि यह महाशय (जायसी) भाषा के वस्तुतः प्रथम कवि हैं। हमारा इस मत से विरोध

[45] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 246, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[46] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 247, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[47] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – ग्रियर्सन (स.अनु. – किशोरीलाल गुप्त), पृ.सं. – 52, संस्करण – 1957, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

है। पद्मावत बनने के 15 वर्ष पूर्व संवत 1558 में दादर आश्रम निवासी हरप्रसाद पुरुषोत्तम ने 'धर्मस्वमेध' नामक बड़ा ग्रंथ बनाया।"[48] आज ऐसे ग्रंथों की जानकारी प्राप्त हो चुकी है जो 'पद्मावत' से पहले लिखी गयी है।

जायसी के लेखन संबंधी चर्चा में 'पद्मावत' की भूमिका अग्रणी रही है। 'पद्मावत' को कभी सूफी काव्यधारा से जोड़ा गया तो कभी विशुद्ध कविता के रूप में पढ़ने का आग्रह किया गया। 'पद्मावत' को इतिहास तथा कल्पना का सम्मिश्रण कहा जाता है। आलोचकों का मत है कि 'पद्मावत' में भारतीय तथा फारसी प्रेमाख्यानक परंपरा का बहुत ही बेहतरीन ढंग से निर्वाह हुआ है। मिश्रबंधुओं ने इसे ऐतिहासिकता से जोड़ते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि इसमें पूर्णरूपेण ऐतिहासिक तथ्यों एवं विवरणों का ध्यान रखा गया है। उन्होंने लिखा है कि, "इस ग्रंथ की कथा मनगढ़ंत नहीं है, वरन् सिवा एक दो छोटी – छोटी बातों के और सब इतिहास से मिलती हैं।"[49] जबकि किसी भी साहित्यिक कृति में विशुद्ध रूप से इतिहास को खोज पाना संभव नहीं है। इस तथ्य को स्वयं मिश्रबंधुओं ने स्वीकार करते हुए लिखा है कि, "कथा – भर (पद्मावत की कथा) में कल्पना और इतिहास दोनों का अच्छा ही मिश्रण है।"[50] इस कथन से लगभग सभी आलोचक सहमत हैं।

मिश्रबंधुओं के इतिहास लेखन से पहले जायसी के भाषायी पक्ष अर्थात 'पद्मावत' और 'अखरावट' में व्यवहृत भाषा के संबंध में किसी साहित्येतिहासकार ने आवाज नहीं उठाई। यह परम्परा विशुद्ध रूप से मिश्रबंधुओं के यहाँ से आरंभ होती है। ग्रियर्सन ने इस सन्दर्भ में कुछ प्रयास किया था। मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि, "जायसी की भाषा कुछ तत्सम शब्द युक्त ठेठ ग्रामीण पूर्वी हिंदी है, परंतु इसमें इस कवि ने 'उकुति विशेषो कब्बो भाषा जाहो साहो' की यथार्थता सिद्ध कर दी है।"[51] जायसी ने जिस अवधी भाषा का प्रयोग 'पद्मावत' में किया है उसकी पहचान मिश्रबंधुओं ने की है। जायसी के भाषा के संबंध में कहा जा सकता है कि उन्होंने लोकभाषा में अपने काव्य की रचना की ताकि सामान्यजन उसका लाभ प्राप्त कर सकें। यह प्रवृत्ति पूर्व मध्यकालीन सभी

[48] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 247, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[49] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 249, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[50] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 253, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[51] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 253, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ

कवियों की रही है। इसका सबसे बड़ा कारण यह रहा है कि सभी कवि सामान्य धरातल से आए हुए थे। किसी भी कवि को राजा का आश्रय प्राप्त नहीं था इस कारण सबकी चिंतनधारा लोक से होकर ही विकसित होती थी। जायसी फारसी के बहुत बड़े जानकार थे लेकिन उन्होंने अपने काव्य की रचना अवधी भाषा में की जो उस क्षेत्र के लोगों की आम बोलचाल की भाषा थी। तुलसीदास संस्कृत के ज्ञाता थे फिर भी 'रामचरितमानस' की रचना उन्होंने अवधी में की। इन कवियों का लक्ष्य पांडित्य प्रदर्शन नहीं था, इनका लक्ष्य तो लोगों का कंठहार बनना था जिसमें कमोबेश सभी कवि सफल हुए हैं। मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि, "इन्होंने (मलिक मुहम्मद जायसी) अपनी समस्त कविता में ऐसा कोई भी फारसी शब्द व्यवहृत नहीं किया हैं जो हिंदी में प्रचलित न हो।"[52] इन्होंने लोक को लोक की दृष्टि से देखा, समझा एवं लोक की भाषा में अभिव्यक्त भी किया है।

जायसी के संबंध में जिस सूफी मतवाद की चर्चा आधुनिक आलोचकों के यहाँ दिखाई पड़ती है उसका संकेत मिश्रबंधुओं के साहित्येतिहास में उपस्थित है। उन्होंने लिखा है कि, "कुतुबनशेख के पीछे जायसी ने ही पद्मावत द्वारा सूफीवादात्मक रहस्यवादपूर्ण प्रेम कहानी कही। सूफीमत मनुष्य में नफस (इन्द्रिय), रूह (आत्मा), कल्ब (हृदय) और बुद्धि (अक्ल) मानता है। नफस का दमन श्रेय है कल्ब और रूह द्वारा साधना का कार्य किया जाता है। कल्ब पर सभी वस्तुओं का प्रतिबिंब पड़कर उसका ज्ञान होता है।"[53] जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' में भी कहीं – कहीं इस सूफी मतवाद एवं सिद्धांतों की झलक दिखाई पड़ती है इस पद्धति पर अगर विचार किया जाए तो कहीं न कही यह वेदांत से भी जुड़ती हैं। 'कल्ब' वह अत्यंत सूक्ष्म वृत्ति है जिसे परमात्मा का निवास स्थान माना जाता है। उपनिषदों में भी हृदय तत्व को ही परमात्मा का अधिष्ठान बताया गया है परंतु वहाँ भी हृदय से भौतिक हृदय का अर्थ नहीं होता है। सूफियों के कल्ब की तरह वह भी मूल अंतर्वृत्ति है जिसका परिमार्जन आवश्यक है। जप, तप, नाम साधन इत्यादि साधनाओं द्वारा कल्ब का परिमार्जन संभव है। यही कल्ब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का निवास स्थल है। अंततः यह वही है जिसे वेदांती अंतःकरण कहते हैं। जब ब्रह्म मिलन की आकुलता बढ़ जाती है तब इसी कल्ब (हृदय) में अत्यंत अभाव, अत्यधिक उत्कंठा और व्याकुलता का जन्म

[52] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 247, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ
[53] वही, पृ.सं. – 253-54

होता है। लेकिन केवल इसी आधार पर जायसी को वेदांती नहीं माना जा सकता है। यह सत्य है कि सूफीवाद पर भारतीय दर्शन का प्रभाव पड़ा है।

मिश्रबंधुओं ने जायसी के संबंध में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण सूत्र दे दिये थे जिसके आधार पर जायसी संबंधी हिंदी आलोचना पुष्पित एवं पल्लवित हुई। उन्होंने सूफी कवियों के आराध्य की चर्चा तो की ही है साथ ही साथ जायसी के प्रेम – पक्ष का उद्घाटन भी बहुत ही सटीक ढंग से किया है। उन्होंने लिखा है कि, "कला पक्ष पर विशेष ध्यान न देकर जायसी ने हृदय पक्ष पर परिश्रम किया है ... सूफियों का परमेश्वर निर्गुण निराकार होकर भी अनंत प्रेम का भंडार है।"[54] बार – बार जायसी के जिस प्रेम की चर्चा की जाती है वह केवल 'मानुष प्रेम' पर आधारित है उस प्रेम की पहचान मिश्रबंधुओं ने भी की थी। मिश्रबंधुओं ने इस बात का उल्लेख करना नहीं भूला कि जायसी तथा अन्य सभी सूफी कवियों ने प्रेम के उस तार पर चोट की है जिसका संबंध सम्पूर्ण मानव जगत से है। सूफी काव्यधारा में साधना की पद्धतियाँ भले ही अलग हैं लेकिन प्रेम की प्रतिष्ठा एक तरह की है, चाहे वो सूफी कवि हों, संत कवि हों अथवा अन्य कोई भी भक्तिकालीन कवि हों।

2.7 निष्कर्ष

आचार्य रामचंद्र शुक्लपूर्व हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन के माध्यम से जायसी संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों का परिचय प्राप्त होता है। साहित्येतिहासकारों के अपने – अपने आग्रह हैं जिसके आधार पर उन्होंने किसी कवि के साथ न्याय किया तो किसी कवि के साथ अन्याय। 'भक्तमाल' के लेखक ने जहाँ अपने ग्रंथ में केवल भक्त कवियों को शामिल किया वहीं गार्सा-द-तासी ने लगभग सभी प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करने का प्रयास किया। नाभादास की यह सीमा मानी जानी चाहिए कि उन्होंने अपने आप को सीमित रखा। गार्सा-द-तासी ने तमाम संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों की काफी छानबीन की तत्पश्चात् उन्होंने कवियों का विवरण उपलब्ध कराया। यह उस समय के लिए बहुत कठिन कार्य था। गार्सा-द-तासी के बाद शिवसिंह सेंगर के यहाँ

[54] मिश्रबंधु विनोद – मिश्रबंधु, पृ.सं. – 253-54, चतुर्थ संस्करण – 1994 वि., गंगा – ग्रंथाकार, लखनऊ

केवल कवियों का विवरण ही प्राप्त हो सका है। शिवसिंह सेंगर ने भी जायसी के संबंध में चुप्पी साध ली है। यह इन साहित्येतिहासकारों की सीमा कही जाएगी। जिस प्रकार की सीमा 'भक्तमालकार' के यहाँ दिखाई पड़ती है कुछ उसी प्रकार की सीमा शिवसिंह सेंगर के यहाँ भी दिखाई पड़ती है। ग्रियर्सन ने इस सन्दर्भ में सार्थक प्रयास किया है। उन्होंने जायसी संबंधी साहित्यिक भूमि एवं ऐतिहासिक भूमि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। मिश्रबंधुओं के यहाँ विवेचन का एक स्वरूप निर्मित होता है जिसका सम्यक् निर्वाह आगे के आलोचकीय परम्परा में दिखाई पड़ता है।

तीसरा अध्याय

मलिक मुहम्मद जायसी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल

3.1 भूमिका

3.2 आचार्य शुक्ल द्वारा जायसी के काव्य का किया गया मूल्यांकन

3.3 आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी महत्वपूर्ण स्थापनाएँ और उन स्थापनाओं का परवर्ती हिंदी आलोचना में पिष्ट-पेषण

3.4 आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी आलोचना की शक्ति, संभावनाएं और सीमाएँ

3.5 निष्कर्ष

3.1 भूमिका

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्यधारा में उसी तरह प्रसिद्ध हैं जिस तरह रामभक्ति काव्यधारा में तुलसी एवं संत काव्यधारा में कबीर। भक्तिकाल एक ऐसा समय रहा है जिसमें सभी कवियों ने अपने आराध्य एवं स्वयं के बीच किसी माध्यम की आवश्यकता महसूस नहीं की। इन सभी कवियों का अपने आराध्य को प्राप्त करने का माध्यम चाहे जो रहा हो लेकिन चिंतन की ऊंचाई लगभग समान थी। शुक्लपूर्व आलोचकों (साहित्येतिहास लेखकों) ने जायसी के संबंध में जो कुछ लिखा पढ़ा है उसकी चर्चा मैंने पूर्ववर्ती अध्याय में की है। ऐसा माना जाता है कि शुक्लपूर्व हिंदी आलोचना ने जायसी के साथ न्याय नहीं किया है। हालांकि ग्रियर्सन ने जायसी के संबंध में कुछ मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया जो परवर्ती आलोचकों के लिए पथ – प्रदर्शन का कार्य करता रहा है। यह सर्वविदित है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी को तुलसी के समतुल्य माना है। जायसी को यह स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चिंतन से पहले प्राप्त नहीं हुआ था। शुक्लपूर्व आलोचना के केंद्र में भक्तिकालीन कवियों में से यदि कोई था तो वो सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने व्यवस्थित हिंदी आलोचना की नींव रखी है। यदि कहा जाए कि व्यवस्थित रूप से व्यक्तिवादी एवं प्रवृत्तिवादी आलोचना की परंपरा आचार्य रामचंद्र शुक्ल से आरंभ होती है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में जो काल विभाजन प्रस्तुत किया है उसका आधार युगीन प्रवृत्तियां ही रही हैं। उन्होंने कवियों की आलोचना के केंद्र में उनके काव्य को रखा न की अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तरह उनके पंथ, संप्रदाय एवं धर्म को। हिंदी साहित्य में विधेयवादी आलोचक के रूप में आचार्य शुक्ल को याद किया जाता है। चूंकि उनसे पहले के आलोचकों ने तुलनात्मक आलोचना के नाम पर केवल देव बनाम बिहारी का विवाद खड़ा किया था। इससे इतर उन लोगों ने ऐसा कुछ नहीं किया था जिसका आगे के आलोचकों में पिष्टपेषण दिखाई पड़ता हो। आचार्य शुक्ल ने इस परंपरा को तोड़ा और तुलसीदास, सूरदास और जायसी को लेकर स्वतंत्र आलोचना की किताब लिखी। इसमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण आज कालजयी रचना मानी गयी वह जायसी ग्रंथावली थी जिसमें 'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' का संपादन किया गया है।

मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य विविध रंगों से भरा हुआ है। इसके अनेक पक्ष हैं जिसकी चर्चा तमाम विद्वानों ने अपने – अपने ढंग से की है। शुक्लपूर्व साहित्येतिहास लेखकों ने जायसी के काव्य से कुछ गिने – चुने तथ्यों को ही उद्धृत किया जिससे उनका कार्य सरलता पूर्वक हो जाए। लेकिन उसके विशद् विवेचन की आवश्यकता बनी रही। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली' की लंबी भूमिका लिखी। इतना ही नहीं उन्होंने 'त्रिवेणी' में भी सूरदास और तुलसीदास के साथ जायसी का विस्तार से विवेचन किया है। शुक्लपूर्व आलोचकों ने जायसी को सबसे पहले एक मुसलमान कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने उनके काव्य में सूफ़ी काव्य परंपरा के निर्वाह की बात कही है। इसका समर्थन लगभग शुक्लपूर्व सभी साहित्येतिहास लेखकों ने किया है। इस परंपरा का प्रभाव शुक्लयुगीन आलोचकों पर भी गहरा पड़ा है। इसी परंपरा से आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी प्रभावित थे। आगे चलकर शुक्ल जी की मान्यताओं से विजयदेव नारायण साही ने अपनी असहमति व्यक्त की। लेकिन यह परंपरा आज भी किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है जिसमें जायसी के काव्य का मूल्यांकन कम बल्कि उनके जाति/धर्म का मूल्यांकन अधिक किया जाता है।

जायसी का काव्य भारतीय समाज का चित्रण करता है न कि किसी मुस्लिम, हिंदू, सिख अथवा ईसाई समाज का। भारतीयता उनके अंदर कूट – कूट कर भरी हुई थी। केवल सूफ़ीमत तथा मसनवी शैली के आधार पर जायसी का मूल्यांकन करने पर सबसे बड़ा संकट यह है कि उनका कवि कर्म ओझल हो जाएगा। यह पद्धति नितांत भ्रामक एवं अधूरी मानी जाएगी। चूंकि आधुनिक आलोचना के अनुसार किसी भी विचारधारा का पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्पाठ जरूरी होता है। अतः इस आधुनिक अवधारणा के अनुसार सूफीमत की अवधारणा का पुनर्मूल्यांकन भी बहुत जरूरी है। सूफ़ीमत को परिभाषित करते हुए डॉ. कन्हैया सिंह ने लिखा है कि, "इस्लाम धर्म के अंतर्गत उद्भूत आत्मचिंतन एवं अनुभूतिप्रधान विशिष्ट दार्शनिक मतवाद को 'सूफ़ीमत' कहा जाता है। इस मत के मानने वाले को सूफ़ी तथा उनके दर्शन को 'तसव्वुफ़' कहते हैं।"[1] सूफियों ने धार्मिक रूढ़िवाद एवं उसमें व्याप्त तमाम तरह की बुराइयों से आहत थे, इसलिए उन्होंने स्वयं को इस पंथ अथवा धर्म से अलग कर

[1] उदार इस्लाम का सूफ़ी चेहरा – डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – 31, संस्करण : 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

लिया। हालांकि यह पंथ इस्लाम के भीतर से निकला हुआ था लेकिन बाद में इस्लाम की कट्टरवादिता ने इन्हें अलग होने के लिए मजबूर कर दिया। इसकी व्याख्या आगे चलकर कन्हैया सिंह ने इस प्रकार से की है "आरंभ में यह कोई मतवाद या संप्रदाय न होकर एक ऐसी जीवन विधि के रूप में विकसित हुआ, जिसे सभी इस्लाम धर्मानुयायी आदर की दृष्टि से देखते थे। आगे चलकर सूफ़ी मत ने इस्लाम के दर्शन शून्य पक्ष की पूर्ति में योगदान दिया। अन्य दर्शनों के श्रेष्ठ तत्व को अपने अंदर समाहित करके तथा सर्वेश्वरवाद की भावना का आधार ग्रहण करके इसने इस्लाम को अन्य धर्मों से अविरोधी तथा विश्वजनीन बनाने का प्रयास किया।"[2] यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाय तो जायसी के काव्य के भीतर कहीं भी किसी मुस्लिम शासक की प्रशंसा नहीं की गयी है। इनके काव्य में तो मुस्लिम शासक को माया का रूप माना गया है जो ईश्वर से मिलन में बाधा उत्पन्न करता है। उन्होंने लिखा है कि,

"माया अलाउदीन सुलतानू॥"[3]

हालांकि जिस तरह से आलोचना पद्धति का विकास हुआ है उसमें सहमति और असहमति की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है। यही सहमति और असहमति उसके लोकतांत्रिक होने का सबसे प्रबल प्रमाण है। यह सर्वविदित है कि भक्तिकालीन कवियों के यहाँ 'माया' शब्द का किस रूप में प्रयोग किया गया है। चूंकि सूफ़ी कवियों के ऊपर भी अद्वैतवाद का प्रभाव था इसलिए यहाँ भी माया का वही स्वरूप सामने आता है जो कि संत कवियों के यहाँ आता है। लेकिन वागीश शुक्ल ने बहुत छान – बीन के उपरांत लिखा है कि, " 'माया' का प्रयोग जायसी ने 'कृपा', 'अनुग्रह', के अर्थ में अवश्य किया है। ... मेरा मानना है कि 'माया अलाउदीन सुलतानु' में 'माया' इसी अर्थ में है और अलाउद्दीन जायसी की दृष्टि में 'अल्लाह की रहमत' है।"[4] जरूरी नहीं कि हम वागीश शुक्ल

---

[2] वही

[3] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 461, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[4] कथा – सं. मार्कण्डेय (जायसी का अलाउदीन – वागीश शुक्ल), पृ. सं. – 67, अक्तूबर 2007

के विचारों को पूर्णतया स्वीकार ही कर लें। लेकिन यह जरूर है कि जायसी संबंधी चिंतन के क्षेत्र में उन्होंने एक नई दिशा की तलाश की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन बहुत गंभीर और दर्शनिकता से भरा हुआ है। इनके ऊपर पूर्ववर्ती आलोचकों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि इनके समय तक नागरी प्रचारणी सभा की (साहित्य संबंधी) कई खोजें सामने आ गयी थीं। इन सभी खोजों एवं रिपोर्टों का इन्होंने बहुत सार्थक उपयोग किया। उस समय का यह सबसे बड़ा कार्य था जब सभी साहित्येतिहास लेखक जायसी को सही ढंग से व्याख्यायित नहीं कर पा रहे थे तब इस कार्य का बीड़ा शुक्ल जी ने उठाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना का कार्य उस युग में शुरू किया था, जब हिंदी अशिक्षितों और गँवारों की भाषा समझी जाती थी और शिक्षित समुदाय घर – बाहर धड़ल्ले से उसका प्रयोग करने में हिचकता था। भारतीय परिवार अंग्रेजी और उर्दू के संस्कारों से आक्रांत थे। इस कठिन समय में शुक्ल जी हिंदी भाषा और साहित्य के साथ हिम्मत से आगे बढ़े।

इस तथ्य को परवर्ती आलोचकों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि जायसी को हिंदी साहित्य (आलोचना के केंद्र) में ले आने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। इस तथ्य से सभी आलोचक सहमत हैं चाहे वो विजयदेव नारायण साही हों, डॉ. रघुवंश हों चाहें, वागीश शुक्ल हों चाहें, बच्चन सिंह हों या अन्य कोई भी आलोचक हो। जायसी एक लंबे समय से हिंदी आलोचना के केंद्र में बने हुए हैं। इनके ऊपर तमाम तरह की चर्चाएँ आज भी हो रही हैं। मजे की बात यह है कि ये सभी चर्चाएँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के आलोचना दृष्टि का विस्तार ही हैं। इससे अलग किसी ने ऐसा कुछ नहीं कहा जिससे आचार्य शुक्ल की उपयोगिता ही खत्म हो गयी। जिस प्रकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के द्वारा रीतिकाल को श्रृंगारकाल कहने से आचार्य शुक्ल की ऐतिहासिक दृष्टि का विस्तार दिखाई पड़ता है ठीक उसी प्रकार विजयदेवनारायण साही के ग्रंथ 'जायसी' में भी उनकी दृष्टि का विस्तार नज़र आता है। यदि किसी भी आलोचक को जायसी संबंधी आलोचना से टकराना है तो उसे शुक्ल जी से होकर ही जाना होगा। वागीश शुक्ल जी ने कई जगह अपने लेखों में शुक्ल जी को भी खारिज किया है।

आज भी जायसी के संबंध में जो तमाम तरह की भ्रांतियाँ मौजूद हैं उसे दूर करने की आवश्यकता ठीक उसी तरह से बनी हुई है जिस तरह से कभी आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने पूर्ववर्ती आलोचकों एवं इतिहासकारों के कार्यों को आगे बढ़ाने का कार्य किया था। बहरहाल उन्होंने जो कुछ लिखा पढ़ा वो आज हमारे सामने है। इस अध्याय में हम जायसी संबंधी उनके विचारों एवं लेखों का अध्ययन करेंगे –

3.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा जायसी के काव्य का किया गया मूल्यांकन

जायसी का प्राप्त साहित्य बहुत कम है। एक बहुत बड़ा भाग ऐसा भी है जो आज तक प्राप्त नहीं हो पाया है। यदि कहीं उस अप्राप्त साहित्य का कोई अंश मिला भी है तो उसकी प्रामाणिकता संदेहास्पद है। लेकिन उनका प्राप्त साहित्य जितना है वह किसी भी रचनाकार की प्रसिद्धि के लिए कम नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके द्वारा रचित तीन ग्रंथों ('पद्मावत', 'अखरावट' और 'आख़िरी कलाम') को ही प्रामाणिक माना है। इन ग्रंथों में भी सबसे ज्यादा महत्त्व 'पद्मावत' को मिला है। 'पद्मावत' ही आलोचना के केंद्र में रहा है। 'पद्मावत' की लिपि फ़ारसी है तथा भाषा अवधी है, इसलिए उसके पाठ संबंधी अनेक त्रुटियों के कयास भी लगाए जाते हैं। आलोचकों ने 'पद्मावत' के कई सारे अंश को प्रक्षिप्त माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के संपादन से पूर्व इस ग्रंथ के चार संस्करण छापे जा चुके थे। इसे संकलित करने का प्रयास ग्रियर्सन एवं सुधाकर द्विवेदी ने भी किया जिसमें पद्मावत का कुछ अंश मात्र ही है। इन लोगों ने सम्मिलित रूप से 'पद्मावत' का संपादन किया। इसके बाद 'पद्मावत' को संपादित करने का प्रयास शुक्ल जी ने किया। इन्होंने 'जायसी ग्रंथावली' की रचना की तथा जायसी संबंधी आलोचना को एक नई दृष्टि प्रदान की। उन्होंने अपने पूर्व में संकलित चार संस्करणों की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि, "इस ग्रंथ के चार संस्करण मेरे देखने में आए हैं – एक नवल किशोर प्रेस का, दूसरा पं. रामजसन मिश्र संपादित काशी के चंद्रप्रभा प्रेस का, तीसरा कानपुर के किसी पुराने प्रेस का फ़ारसी अक्षरों में और म. प. पं. सुधाकर द्विवेदी और डॉ. ग्रियर्सन संपादित एशियाटिक सोसाइटी का, जो पूरा नहीं, तृतीयांश मात्र है।"[5] एक प्रकार से उन्होंने साहित्य का पुनरावलोकन प्रस्तुत किया है। यह उस परंपरा का बोध करता है जिसमें लेखक

[5] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 5, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अपनी साहित्यिक परंपरा को सदृढ़ करने एवं आगे बढ़ाने का सार्थक प्रयास करता है। आगे शुक्ल जी ने इसकी विशद व्याख्या की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने पूर्ववर्ती 'पद्मावत' के संपादकों की जो सूची गिनाई है उसमें सबसे अंत में उन्होंने सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन का नाम लिया है। सुधाकर द्विवेदी जी के ज्ञानकांड पर उन्होंने चुटकी ली है तथा इस संस्करण की कमियों को उजागर करते हुए इसे 'भड़कीला संस्करण' कहा है। उन्होंने लिखा है कि, "अब रहा चौथा, सुधाकर जी और डॉ. ग्रियर्सन साहब वाला भड़कीला संस्करण। इसमें सुधाकर जी की बड़ी लंबी – चौड़ी टीका – टिप्पणी लगी हुई है ; पर दुर्भाग्य से या सौभाग्य से 'पद्मावत' के तृतीयांश तक ही यह संस्करण पहुंचा। ... सुधाकर जी में एक गुण यह सुना जाता है कि यदि कोई उनके पास कोई कविता अर्थ पूछने के लिए ले जाता तो वह विमुख नहीं लौटता था, वे खिंचतान कर कुछ-न-कुछ अर्थ लगा ही देते थे। बस इसी गुण से इस टीका में भी काम लिया गया है। शब्दार्थ में कहीं यह नहीं स्वीकार किया गया है कि इस शब्द से टीकाकार परिचित नहीं। सब शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ मौजूद है, चाहें वह अर्थ ठीक हो या न हो।"[6] यह जायसी ग्रंथावली लिखने की पूर्वपीठिका थी जिससे कमोबेश कुछ-न-कुछ शुक्ल जी ने ग्रहण भी किया है। उनकी यह तैयारी इस बात का सूचक है कि उन्होंने पूर्ण मनोयोग एवं शोधपूर्ण तरीके से 'जायसी ग्रंथावली' का संपादन किया है।

आचार्य शुक्ल की यह बहुत बड़ी देन है कि काव्य विवेक के मर्म से सबको परिचित करवाया। इस विषय पर उन्होंने स्वतंत्र निबंध भी लिखा है। निबंधों की दुनिया में उनकी तुलना यदि किसी से की जाती है वह केवल और केवल अंग्रेजी साहित्य के लेखक एवं आधुनिक निबंध के जनक फ्रांसिस बेकन से की जाती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में कई आलोचकों ने उनकी तुलना जे. कृष्णमूर्ति से की है। बहरहाल यह उनका काव्य विवेक था जिसे वे जनता से जोड़कर देखने के पक्षपाती थे। वे उन लोगों का सर्वथा विरोध करते थे जो काव्य का अर्थ बैठने के लिए अनाप – शनाप कुछ भी कह बैठते थे। वे मानते थे कि काव्य का मर्म समझने के लिए केवल शब्द का अर्थ

[6] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 6, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

समझना भर जरूरी नहीं है उसके पीछे भी बहुत कुछ छिपा होता है जिसे सहृदय पाठक ही समझ सकता है। आगे चलकर उन्होंने सुधाकर जी की आलोचना इस बात के लिए की है कि वे शब्द के ठीक अर्थ को भी नहीं जानते लेकिन दावा परम ज्ञानी होने का करते थे। हिंदी शब्दकोश की दुनिया में 'हिंदी शब्दसागर' के महत्त्व तथा उसकी व्यापकता एवं विस्तार को नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता है। इस शब्दकोश का निर्माण आचार्य शुक्ल एवं उनके अन्य सहयोगियों ने कठिन साधना से किया था। उस समय एक – एक शब्द को लेकर जितनी चर्चा – परिचर्चा की जाती थी, वैसी न उस समय कहीं हुई न आगे यह संभव दिख रहा है। इसलिए वे बार – बार शब्दों के सही अर्थ पर ज़ोर देते हैं। इस आधार पर सुधाकर जी के अर्थ विवेक एवं काव्य विवेक को बहुत ओछा मानते हैं।

जायसी के संबंध में आचार्य शुक्ल जी ने जो बातें कही हैं वह 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में संकलित है। उन्होंने 'त्रिवेणी' में भी बहुत कुछ उन्हीं बातों को संकलित किया है जो उस ग्रंथावली में संकलित है। इसके अलावा 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भी जायसी के कवि – कर्म एवं उनकी रचनाओं की चर्चा उन्होंने की है। 'पद्मावत' की संपूर्ण कथा को आचार्य शुक्ल ने दो भागों में विभाजित किया है – पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध को उन्होंने पूर्ण रूप से कल्पित माना है तथा उत्तरार्द्ध को ऐतिहासिक। बहरहाल इस संदर्भ में शुक्ल जी ने लिखा है कि, "पद्मावत की संपूर्ण आख्यायिका को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। रत्नसेन की सिंघलद्वीप यात्रा से लेकर चित्तौर लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं और राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध। ध्यान देने की बात यह है कि पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है।"[7] कथा के ऐतिहासिक होने का मतलब यह नहीं है कि ऐसा ही इतिहास में लिखा गया है। ऐतिहासिक होने का मतलब यह है कि यह काव्य अपने समाज एवं संस्कृति से प्रभावित है। रचना में वर्णित पात्र और समाज के विभिन्न चरित-नायकों के बीच एक झीना परदा होता है जिसका अतिक्रमण कभी-कभी रचनाकार कर देता है। बड़ा कवि वही माना जाता है जिसकी रचनाओं में समाज का निरूपण होता है। आधुनिक

[7] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 34, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

युग का कवि अपने आस-पास हो रहे तमाम तरह के झंझावातों से प्रभावित होता है और उनको साहित्यिकता का पुट देकर अपनी रचना में उतार देता है। यदि कवि अपने समाज से प्रभावित नहीं होगा तो उसे न जाने पलायनवादी, कल्पनावादी की तरह कितने प्रकार के विशेषणों से नवाजा जाएगा। भक्तिकालीन कवियों ने समाज की तत्कालीन समस्याओं को गहराई से देखा एवं भोगा था इसीलिए उन्होंने पंडे, पुरोहितों एवं मुल्लाओं का मज़ाक भी उड़ाया था। उन्होंने राजा के राजवाड़े की उपेक्षा की थी। उस युग का छोटा से छोटा कवि भी अपनी अस्मिता एवं स्वतंत्रता के प्रति सचेत था। इसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक कवि ने अपने-अपने मानक पर किया है। सूफियों ने इसे अलग ढंग से व्यक्त किया है जबकि संत कवियों ने अलग ढंग से। सूफी कवि जायसी के काव्य में व्यक्त ऐतिहासिकता को आचार्य शुक्ल ने कर्नल टॉड द्वारा प्रस्तुत राजस्थान के इतिहास संबंधी विवरण से जोड़कर देखते हैं। उस समय तक कर्नल टॉड का इतिहास लगभग प्रामाणिक माना जाता है। यह अवधारणा लगभग बद्धमूल हो चुकी थी। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों ने लगभग कर्नल टॉड की बातों को प्रामाणिक माना है।

'पद्मावत' में यदि प्रेम की प्रधानता है तो कहीं-न-कहीं युद्ध भी उसमें सन्निहित है। चूंकि हम जानते हैं कि सूफी काव्य वीरगाथा काल के कोख से विकसित हुआ है। अतः उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव इस युग पर भी पड़ा है। किसी भी युग का अंत किसी एक निश्चित समय में ही नहीं हो जाता है जिसका निर्धारण साहित्य के इतिहासकारों ने किया है। यह प्रवृत्तिगत विशेषता है जो निरंतर चलती रहती है। आचार्य शुक्ल के यहाँ प्रवृत्तिगत विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। उन्होंने लिखा है कि, "यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं। जैसे, भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीर रस के अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग की होगी जिस ढंग की वीरगाथा काल में हुआ करती थी।"[8] यही वह बिंदु है जहां से हम दो कालों को एक साथ जोड़कर देख सकते हैं। इस बिंदु को यदि शुक्ल जी का प्रस्थान बिंदु माना

[8] हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 15, संस्करण : 2010, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली

जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यही कारण हैं कि वीरगाथा काल की कुछ प्रवृत्तियों का असर सूफी कवियों में दिखाई पड़ता है और भक्तिकाल के भीतर ही रीतिकालीन प्रवृत्तियों का उदय। आदिकालीन काव्य शैली का विस्तार भक्तिकालीन कवियों के यहाँ देखा जा सकता है।

आचार्य शुक्ल ने जायसी कृत 'पद्मावत' का पाठ निर्धारण बहुत ही मनोयोग एवं कठिन परिश्रम से किया है। इन्होंने 'पद्मावत' की पूरी कथा को अलग-अलग खंडों में बाँट दिया है। इस पद्धति के माध्यम से उन्होंने कथा के विविध पक्ष एवं उसके विभिन्न आयामों की व्यापक ढंग से चर्चा की है। 'पद्मावत' की कथा 'स्तुति खंड' के बाद 'सिंहलद्वीप वर्णन खंड' से आरंभ होती है जिसमें पद्मावती और संपूर्ण सिंहलद्वीप का विस्तार से वर्णन किया गया है। सिंहलद्वीप वर्णन खंड इस तरह से आरंभ होता है –

"सिंहलद्वीप कथा अब गावौं। ओ सो पदमिनी बरनि सुनावौ ॥"[9]

सिंहलद्वीप की कथा पद्मावती के वर्णन के साथ आरंभ होती है। यह उस युग की प्रवृत्ति रही है कि नायक और नायिका में विशेष गुण समावेशित किया जाता था। इसी प्रवृत्ति के कारण कवि नायिका (पद्मावती) का वर्णन कर रहा है। इसके बाद पद्मावती का 'जन्म खंड' आरंभ होता है। आचार्य शुक्ल ने यहीं से 'पद्मावत' की कथा का आरंभ माना है। उन्होंने लिखा है कि, "कवि सिंहलद्वीप, उसके राजा गंधर्वसेन, राजसभा, नगर, बगीचे इत्यादि का वर्णन करके पद्मावती के जन्म का उल्लेख करता है।"[10] पद्मावती के जन्म से लेकर सती बनने तक की कथा और उसके बीच हुए विभिन्न कार्य – व्यापार को दिखाना ही रचनाकार का मुख्य अभिप्रेत रहा है। लेकिन इसके माध्यम से वह अपने समय, समाज एवं संस्कृति की चर्चा व्यापक संदर्भों में करते हैं। इसके माध्यम से वे अपने समाज को जागरूक, सचेत करना चाह रहे हैं।

पद्मावती के 'जन्म खंड' के बाद उसकी सखियों के साथ हुए जलविहार का वर्णन किया गया है। यह बात ध्यान देने वाली है कि जिस आदिकाल अथवा वीरगाथा काल को आलोचकों ने प्रकृति विमुखता का काव्य

[9] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 197, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[10] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 26, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

कहा था उसके तुरंत बाद जायसी द्वारा लिखे गए महाकाव्य में प्रकृति के प्रति लगाव की बात स्वीकार की है। यह तो लगभग सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है कि जायसी का काव्य – कौशल अद्वितीय है। 'मानसरोदक खंड' में उन्होंने लिखा है कि,

"कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई ॥
भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप को दरसे ।।"[11]

इस प्रकार से आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'पद्मावत' 57 खंडों में विभक्त है जिसके उपरांत एक 'उपसंहार खंड' भी दिया गया है। इन सभी खंडों का विकास क्रमिक रूप से होता है। 'मानसरोदक खंड' के बाद 'सुआ खंड' का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस खंड के बाद जायसी ने राजा रत्नसेन के जन्म के विषय में लिखा है,

"चित्रसेन चितउर गढ़ राजा। कै गढ़ कोट चित्र सम साजा ॥
तेहि कुल रतनसेन उजियारा। धनि जननी जनमा अस बारा ।।
पंडित गुनि सामुद्रिक देखा। देखि रूप औ लखन बिसेखा ।।
रतनसेन यह कुल निरमरा। रतन जोति मन माथे परा ।।
पदुम पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी ।।
जस मालति कहँ भौर वियोगी। तस ओहि लागि होइ यह जोगी ।।
सिंघलदीप जाइ यह पावै। सिद्ध होइ चितउर लेइ आवै ।।"[12]

इससे यह ज्ञात होता है कि रत्नसेन के जन्म के समय ही पद्मावती के प्रति उसकी आसक्ति की बात बता दी गयी थी। इसके बाद 'बनिजारा-खंड' आरंभ होता है जिसमें पद्मावती के यहाँ से भागे हुए सुआ को एक बहेलिया पकड़ लेता है और वह सुआ राजा रत्नसेन के पास पहुँच जाता है। जायसी ने इस तथ्य का जिक्र किया है कि

[11] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 211, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[12] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 215, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

रत्नसेन, हीरामन नामक सुआ की विद्वता पर मोहित हो गया था और उसने सुआ लेकर आने वाले ब्राह्मण को एक लाख रुपए देकर खरीद लिया।

"रतनसेन हीरामन चीन्हा । एक लाख बाम्हन कहँ दीन्हा ॥

विप्र असीसि जो कीन्ह पयाना। सुआ सो राजमंदिर महँ आना।।"[13]

इस प्रकार सुआ रत्नसेन के राजमंदिर में आ जाता है। इस कथा के विषय में पहले ही बताया जा चुका जा चुका है कि इसका क्रमिक विकास हुआ है। उसी परिपाटी पर 'बनिजारा-खंड' के बाद 'नागमती सुआ संवाद खंड' आरंभ होता है तत्पश्चात् 'राजा – सुआ संवाद खंड'। इस खंड में सुआ ने पद्मावती के रूप की जो प्रशंसा की है वह बहुत ही रोचक बन पड़ा है। यथा –

उअत सूर जस देखिय, चाँद छपै तेहि धूप।

ऐसे सबै जाहीं छपि, पद्मावती के रूप॥

इस खंड से ही रत्नसेन, पद्मावती के प्रेम वियोग में बेसुध हो जाता है। इस खंड के समाप्त होने पर 'नख –शिख खंड' आरंभ होता है जिसमें पद्मावती के सौंदर्य का आद्योपांत वर्णन किया गया है। इस खंड के पश्चात् 'प्रेम खंड' आरंभ होता है और यह खंड राजा के मूर्छा आ जाने से ही आरंभ होता है।

"सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानौ लहरि सुरुज कै आई।।

प्रेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै ते सोई॥"[14]

लगभग सभी मध्यकालीन कवियों ने प्रेम की कसौटी निर्धारित की है। वह कसौटी बने हुए मानक को ध्वस्त करके बनाई गई है। इसके बाद 'जोगी खंड' है जिसमें राजा रत्नसेन का जोगी बनना तथा सोलह हजार जोगियों के साथ सिंहलद्वीप जाने का संकल्प लेता है। इसके बाद कुछ छोटे – छोटे खंड हैं – 'राजा-गजपति-संवाद खंड', 'बोहित

[13] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 218, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[14] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 233, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

खंड', 'सात समुद्र खंड' तथा 'सिंहलद्वीप खंड'। इसके बाद का 'मंडपगमन खंड' है जिसमें राजा मंदिर में बैठकर पद्मावती नाम का जाप करता है। उन्होंने लिखा है,

"कै अस्तुति जब बहुत मनावा। सबद अकूत मंडप महँ आवा।।

मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी। नाहिं त काह, छार भरि मूठी।।

x x x x

बैठ सिंघछाला होइ तपा। 'पदमावती पदमावती' जपा।।

दीठि समाधि ओही सौं लागी। जेहि दरसन कारन बैरागी।।"[15]

यह प्रिय से मिलन के पूर्व की बेचैनी है जिसका वर्णन जायसी ने किया है। इसके बाद 'पद्मावती – वियोग – खंड', 'पद्मावती – सुआ – भेंट – खंड' है। इसमें पद्मावती की विभिन्न मनोदशाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद 'बसंत खंड', 'राजा रत्नसेन सती खंड' और 'पार्वती – महेश खंड' है जिसमें जायसी ने राजा रत्नसेन की विविध मनोदशाओं का चित्रांकन किया है।

रत्नसेन का अंतिम लक्ष्य पद्मावती को प्राप्त करना है। इसके लिए वह तमाम तरह के उद्योग करता है। 'राजा – गढ़ – छेका खंड', 'गंधर्वसेन मंत्री खंड' एवं 'रत्नसेन सूली खंड' से इस बात का पता चलता है कि वह पद्मावती को प्राप्त करने के लिए सूली पर चढ़ने के लिए भी तैयार है। जब राजा गंधर्वसेन को उसके बारे में यह जानकारी मिलती है कि वह उनके गढ़ पर गुप्त तरीके से चढ़ाई कर रहा है तब राजा के सैनिकों से उसे बंदी बना लिया। लेकिन उसकी राजा के रूप में पहचान हो जाने से उसे सूली पर लटकाया नहीं गया। इसके बाद 'रत्नसेन – पद्मावती विवाह खंड' है जिसमें राजा रत्नसेन के साथ सोलह हजार कुँवरों की शादी वहीं पद्मावती की सखियों के साथ हो जाती है। विवाहोपरांत 'पद्मावती – रत्नसेन – भेंट खंड' में दोनों के मिलन का वर्णन कवि ने बहुत ही

[15] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 255, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

रोचक ढंग से किया है। इसके बाद 'रत्नसेन साथी खंड' एवं 'षटऋतु वर्णन खंड' है जिसमें रत्नसेन अपने साथियों के साथ मिलता है तथा पद्मावती भी अपनी सखियों के साथ बहुत ही प्रसन्नचित्र मुद्रा में मिलती है।

'नागमती – वियोग खंड' पद्मावत का हृदय – स्थल है। इस तथ्य को लगभग सभी आलोचकों ने अपने – अपने मानकों पर परखने के बाद स्वीकार किया है। इस खंड पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल अत्यधिक मुग्ध होते हैं। उन्होंने लिखा है कि, "नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उससे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य दशा धन्य है जिसमें ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दु:ख सुनाने से भी जी हल्का होगा।"[16] जिस परंपरा की चर्चा भारतीय साहित्य में बार – बार आती है उसका बहुत ही गहरा सन्निवेश जायसी के दिखाई पड़ता है। यह सर्वविदित है कि आदि कवि वाल्मीकि एवं उनके उत्तरवर्ती कवियों ने भी वन/जंगल का प्रयोग अपने काव्य में नायिका का पता पूछने के लिए किया है, इसी परंपरा का सतत विकास मलिक मुहम्मद जायसी और तुलसीदास सरीखे कवियों के यहाँ दृष्टिगत होता है। जायसी ने प्रेम की विभिन्न दशाओं का अंकन एवं उसका उत्कृष्ट रूप नायक के भीतर दिखाया है जबकि पूर्ववर्ती परंपरा नायिका के भीतर अंकित करना चाहती है। अपने संदेश को नागमती किस माध्यम से राजा रत्नसेन के यहाँ प्रेषित करती है इसका वर्णन 'नागमती संदेश खंड' में है। नागमती का संदेश जब राजा रत्नसेन को मिलता है तब उसे अपने राज्य एवं नागमती की याद आती है तथा वह सिंहलद्वीप से विदा लेता है और पद्मावती के साथ चित्तौर को प्रस्थान करता है। इसका पूरा विवरण 'रत्नसेन – विदाई खंड', 'देशयात्रा खंड', 'लक्ष्मी – समुद्र खंड' तथा 'चित्तौर – आगमन खंड' में वर्णित है। अनेक तरह की यातनाओं एवं कष्टों को झेलने के बाद राजा रत्नसेन, पद्मावती के साथ चित्तौड़ पहुंचता है तब नागमती अपनी सौत को देखकर अत्यधिक क्रोधित हो जाती है। उन

[16] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 49, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

दोनों के बीच विवाद होता है जिसे राजा रत्नसेन शांत करता है। इसका पूरा विवरण 'नागमती – पद्मावती – विवाद खंड' तथा 'रत्नसेन संतति खंड' में वर्णित है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पद्मावत को जिन दो खंडों में विभाजित किया है उसमें से पहला खंड यहीं ('स्तुति खंड' से लेकर 'रत्नसेन – संतति खंड') तक है। इस भाग को उन्होंने काल्पनिक माना और इसका नाम 'पूर्वार्द्ध' दिया। 'राघवचेतन देशनिकाला खंड' से लेकर पद्मावती तथा नागमती के जौहर होने तक की कथा को ऐतिहासिक माना गया है। राघवचेतन को राजा रत्नसेन जब अपने राज्य से निष्कासित कर देता है तब पद्मावती उसे चुपके से बुलाकर उपहार देती है।

"**परा आइ भुइ कंकन, जगत भयउ उजियार ॥**

राघव बिजुरी मारा, बिसंभर किछु न सँभारा ॥"[17]

जब राघवचेतन देश से निकला जाता है तथा पद्मावती से वह उसके कंगन को उपहार स्वरूप पाता है तो उसे लेकर वह दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के पास चला जाता है ताकि वह अपने अपमान का बदला ले सके। इसका उल्लेख जायसी ने 'राघवचेतन – दिल्ली – गमन खंड' में किया है। स्त्री के विभिन्न रूपों की चर्चा 'स्त्री – भेद – वर्णन खंड' में है तदुपरान्त पद्मावती के रूप की चर्चा 'पद्मावती – रूप चर्चा खंड' में किया गया है।

अलाउद्दीन जब पद्मावती के रूप की चर्चा सुनता है तो वह उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है। उसे प्राप्त करने के लिए वह चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है ; राजा रत्नसेन से युद्ध करता है इसके बाद दोनों के बीच संधि हो जाती है। संधि के बाद रत्नसेन उसे अपने राजमहल में खाने के लिए आमंत्रित करता है जिसे बादशाह सहर्ष स्वीकार लेता है। खाना खा कर विदा होते समय जब राजा रत्नसेन बादशाह को छोड़ने के लिए अपने महल के बाहर जैसे ही आता है तुरंत वहाँ बादशाह के सिपाही उसे गिरफ्तार कर लेते हैं। इसका पूरा वर्णन 'बादशाह – चढ़ाई खंड', 'राजा – बादशाह – युद्ध खंड', 'राजा – बादशाह – मेल खंड', 'बादशाह – भोज खंड', चित्तौरगढ़

[17] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 372, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

– वर्णन खंड' एवं 'रत्नसेन – वर्णन खंड' में वर्णित है। जब राजा रत्नसेन को बादशाह बंधक बना लेता है और उसे अपने राज्य में लेकर चला जाता है तब दोनों रानियाँ (पद्मावती एवं नागमती) विलाप करने लगती हैं। इसका वर्णन 'पद्मावती – नागमती – विलाप खंड' में हुआ है। इधर कुंभलनेर का राजा देवपाल को इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन ने बंधक बना लिया है तब इस मौके का फ़ायदा उठाने के चक्कर में वह अपनी दूती को पद्मावती के पास भेजता है। लेकिन पद्मावती उसके सारे षड्यंत्र को असफल कर देती है। वह दूती अपने राजा देवपाल के यहाँ चली जाती है। इसका वर्णन 'देवपाल – दूती खंड' एवं 'बादशाह – दूती खंड' में हुआ है।

पद्मावती राजा रत्नसेन को छुड़ाने के लिए अथक प्रयास करती है। वह जाकर गोरा – बादल से संवाद करती है तथा युद्ध के लिए उन्हें तैयार करती है। गोरा – बादल रानी पद्मावती के आग्रह को स्वीकार करते हैं तथा पूरी तैयारी के साथ युद्ध करते हैं जिसमें गोरा की मृत्यु हो जाती है। इसका वर्णन जायसी ने 'पद्मावती – गोरा – बादल – संवाद खंड', 'गोरा – बादल – युद्ध – यात्रा खंड' एवं 'गोरा – बादल – युद्ध खंड' में वर्णित है।

"गोरा परा खेत महँ, सुर पहुंचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर निरयान॥"[18]

जब राजा रत्नसेन बंधक से छूटकर आता है तब पद्मावती उसे अपनी सारी व्यथा सुनाती है जिसमें देवपाल के द्वारा दूती को भेजा जाना भी शामिल है। इसे सुनकर राजा बहुत क्रोधित होता है और वह देवपाल से युद्ध करने के लिए निकाला जाता है। दोनों में भयंकर युद्ध होता है जिसमें देवपाल को मारने के पश्चात राजा रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है। राजा की मृत्यु के बाद दोनों रानियाँ उसकी चिता के साथ जलकर भस्म हो जाती हैं।

"लागीं कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि, अंग न मोरी॥"[19]

[18] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 454, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[19] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 461, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

यह पूरी 'पद्मावत' की कथा है जिसमें अनेक पक्षों को देखने का प्रयास आलोचकों ने किया है। जायसी की इस रचना को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कर्नल टॉड के वृत्तांत एवं 'आइने अकबरी' के आधार पर प्रामाणिक माना है लेकिन उन्होंने उससे असहमति व्यक्त करने वालों के लिए जगह छोड़ दी है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी ने जो 'रत्नसेन' नाम दिया है यह उनका कल्पित नहीं है, क्योंकि प्रायः उनके समसामयिक या थोड़े ही पीछे के ग्रंथ 'आइने अकबरी' में भी यही नाम आया था। यह नाम अवश्य इतिहासकारों में प्रसिद्ध था।"[20] इन्होंने अपने तथ्य को बड़े ही प्रामाणिकता के साथ व्यक्त किया है। लेकिन इसी क्रम में आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के ब्योरों में कुछ फेर – फार करने का अधिकार कवि को बराबर रहता है। जायसी ने भी इस अधिकार का प्रयोग कई स्थानों पर किया है।"[21] यह एक सूत्र है जिसके आधार पर आगे के आलोचकों ने शुक्ल जी से अपनी असहमति व्यक्त की है। जब कहीं किसी कवि को इतिहास के ढांचे में बाधने का प्रयास किया जाता है तब थ्युसीडाइड्स और विको का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण याद आ जाता है जिसे एडवर्ड डब्लू. सईद ने अपनी पुस्तक 'वर्चस्व और प्रतिरोध' में उद्धृत किया है कि, "ये दोनों लेखक इतिहास को साहित्य की दृष्टि से और साहित्य को इतिहास की दृष्टि से देखते थे।"[22] यह पद्धति हमें खींचकर शुक्ल जी के पास ले जाती है। इस पूरे प्रकरण में शुक्ल जी ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि, "हमारा अनुमान है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके इसे काव्य का सुंदर स्वरूप दिया है।"[23] यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है जो किसी भी काव्य रचना की सम्यक आलोचना है। ऐसा देखा गया है कि बड़ा कवि प्रायः लोक में प्रचलित किसी कहानी अथवा मिथक को अपनी काव्य रचना की नींव बनाता है। इसी नींव पर उसका काव्य रूपी महल खड़ा होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि विश्वसाहित्य में जिन कुछ क्लासिक कवियों की चर्चा की जाती है उनके काव्य में यह गुण विद्यमान पाया जाता है। जायसी ने भी इस परंपरा का निर्वहन किया है। यह परंपरा उनके ज्ञान का द्योतक है

[20] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 35, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[21] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 36, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[22] वर्चस्व और प्रतिरोध – एडवर्ड डब्लू. सईद (अनु. रामकीर्ति शुक्ल) पृ. सं. – 311, प्रथम संस्करण : 2015, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली

[23] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 37, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

जिससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जायसी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों को अध्ययन तो किया ही है अपने युग पर भी उनकी पैनी नजर बनी हुई है।

'पद्मावत' में वर्णित प्रेम और वियोग की चर्चा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विशद् रूप में की है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी के श्रृंगार में मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक गौण है। चुंबन आलिंगन आदि का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है, केवल मन के उल्लास और वेदना का कथन किया है।"[24] शुक्ल जी की दृष्टि हमेशा लोकमंगल की तरफ रही है इसी कारण उन्होंने चुंबन और आलिंगन को शृंगार रस को व्यक्त करने के लिए दोयम दर्जे का औज़ार (tools) माना है। इस संदर्भ में डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि, "रस और लोकमंगल आचार्य शुक्ल की समीक्षा – दृष्टि के दो प्रधान आयाम हैं, जिनका परस्पर अंतर्भाव ही उसे एक संश्लिष्ट तथा अखंड छवि प्रदान करता है।"[25] इस लोकमंगल की भावना उनके अन्तर्मन में कहीं गहरे बैठ गयी थी। उन्होंने अपने संपूर्ण आलोचना में इस सिद्धांत को कहीं स्वयं से अलग नहीं होने दिया है। जायसी पर भी अपने समय एवं समाज का प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है। फ्रांसीसी समाजशास्त्रीय विचारक एडोल्फ इपालित तेन ने अपने चिंतन में कला की उपज के लिए मनुष्य की परिस्थितियों को प्रभावी माना है। उन्होंने लिखा है कि, "कला मनुष्य की मानसिकता की उपज है और मनुष्य की मानसिकता उसकी परिस्थितियों से प्रभावित होती है।"[26] इसका उल्लेख आचार्य शुक्ल ने भी किया है कि, "जायसी ने यद्यपि इश्क के दास्तान वाली मसनवियों के प्रेम के स्वरूप को प्रधान रखा है पर बीच – बीच में भारत के लोक – व्यवहार – संलग्न स्वरूप का भी मेल किया है। इश्क की मसनवियों के समान 'पद्मावत' लोकपक्ष शून्य नहीं है।"[27] यह लोक-व्यवहार का ज्ञान किसी भी रचनाकार के चिंतन की ऊंचाई को व्यक्त करता है। इसी चिंतन पद्धति के कारण मलिक मुहम्मद जायसी आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रिय लेखकों में से एक हैं।

---

[24] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 39, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[25] हिंदी आलोचना की परंपरा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल – डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ. सं. – 13, संस्करण : 2002, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

[26] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि – मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. – 147, संस्करण : 2016, आधार प्रकाशन, हरियाणा

[27] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 40, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

आचार्य शुक्ल के लिए 'रामचरितमानस' प्रतिमान है जिसके समक्ष कोई अन्य ग्रंथ रखा ही नहीं जा सकता है। यह एक तरह से आग्रही होना भी माना जा सकता है । इसी कारण उनके ऊपर न जाने कितने तरह के आरोप मढ़े जाते हैं। बहरहाल शुक्ल जी ने 'पद्मावत' की तुलना 'रामचरितमानस' से की है। उन्होंने लिखा है कि, " 'पद्मावत' को हम शृंगार – रस – प्रधान काव्य ही कह सकते हैं। 'रामचरित' के समान मनुष्य जीवन की भिन्न – भिन्न बहुत सी परिस्थितियों और सम्बन्धों का इसमें समन्वय नहीं है।"[28] यह सर्वविदित है कि 'पद्मावत' में जायसी ने पद्मावती के जन्म लेने से लेकर उसके सती होने तक की कथा के भीतर केवल युद्ध और संयोग – वियोग शृंगार का चित्रण बहुत मार्मिक ढंग से किया है।

आचार्य शुक्ल ने जितना संयोग – पक्ष को महत्त्व दिया है उससे कहीं अधिक वियोग – पक्ष को महत्त्व दिया है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी का विरह वर्णन कहीं – कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मज़ाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है इनकी अत्युक्तियाँ बात की करामात नहीं जान पड़ती, हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द संकेत प्रतीत होती हैं।"[29] जायसी का विरह वर्णन हिंदी साहित्य के लिए अनुपम निधि है। आचार्य शुक्ल ने अपनी व्यापक दृष्टि से 'पद्मावत' की अनंत गहराइयों को भी झांक लिया है। उन्होंने लिखा है कि, "नागमती का विरह – वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।"[30] यह साहित्य की अद्वितीयता ही बार – बार आचार्य शुक्ल जी को अपनी तरफ आकर्षित करती है। आचार्य शुक्ल ने जायसी को वियोग-शृंगार का मुख्य कवि माना है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी के वीरहोद्गार अत्यंत मर्म स्पर्शी हैं। जायसी को हम विप्रलंभ-शृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, जो कोमलता, जो सरलता और जो गंभीरता इनके वचनों में है वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[31] काव्य संवेदन की जो सूक्ष्म दृष्टि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के यहाँ दिखाई देती है वैसा प्रायः आगे के आलोचकों के यहाँ नहीं मिलता है। वे वियोग की दशा को अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। संस्कृत आचार्यों ने वियोग दशा को जिस रूप में निरूपित किया था उससे वे अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। उन्होंने लिखा है कि,

---

[28] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 41, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[29] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 45, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[30] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 49, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[31] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 54, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

"आचार्यों ने वियोग दशा को काम दशा ही कहा है पर दोनों में अंतर है। समागम के सामान्य अभाव का दुःख कामवेदना है और विशेष व्यक्ति के समागम के अभाव का दुःख वियोग है।"[32] वियोग का दुःख नागमती के भीतर कितना प्रबल है यह उसके वर्णन को देखकर समझ जा सकता है। जब नागमती अपने रानीत्व को भूलकर अपने लिए झोपड़ी बनाने की बात करती है तब यह सहज ही समझा जा सकता ही कवि की दृष्टि राजमहल पर अधिक समय तक नहीं टिक पाती है। कवि की पक्षधरता जितनी साफ नज़र आती है उतनी ही विरह निरूपण की क्षमता भी। आचार्य शुक्ल ने इसी निरूपण की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि "नागमती का वियोग हिंदी साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का अत्यंत उत्कृष्ट निरूपण है।"[33] इस प्रकार से आचार्य शुक्ल ने पद्मावत के विविध पक्षों की चर्चा की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी की आलोचना के संबंध में उनकी मान्यता/मत एवं सिद्धांत की चर्चा विस्तार से की है। ऐसा माना जाता है कि इस्लाम के जिस दो शाखाओं (शरा और बेशरा) की चर्चा की जाती है उसमें बेशरा से ही सूफीवाद का उदय हुआ है। उन्होंने लिखा है कि "आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख प्यास सहते रहते थे, और ईश्वर प्रेम में लीन रहते थे। ... ज्यों – ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गए, त्यों – त्यों इस्लाम के बाह्य विधानों से उदासीन होते गए। फिर तो धीरे – धीरे अन्तःकरण की पवित्रता और हृदय के प्रेम को ही मुख्य कहने लगे और बाहरी बातों को आडंबर। मुहम्मद साहब के लगभग ढाई सौ वर्ष पीछे इनकी चिंतन पद्धति का विकास हुआ और ये इस्लाम के एकेश्वरवाद (तौहीद) से अद्वैतवाद पर जा पहुंचे।"[34] सूफी चिंतन के विकास के साथ उनके वस्त्र एवं मान्यताओं के विषय में यह व्यापक चिंतन उस समय में शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया जब हिंदी भाषा में इस तरह का सर्वथा

[32] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 43, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[33] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 45, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[34] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 128, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अभाव था। उस समय तक कोई प्रामाणिक एवं तात्विक ढंग से सूफी और सूफी चिंतन परंपरा को व्याख्यायित करने का प्रयास नहीं किया गया था।

यह बहुत प्रामाणिक बात है कि जायसी को विधि में विश्वास था। उन्होंने कुरान तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों में अपनी आस्था व्यक्त की है। यह पूरे मध्यकाल की स्थिति है कि वैचारिक रूप से बहुत प्रगतिशील होने के बाद भी उन कवियों ने विधि पर अपनी पूरी आस्था दिखाई है, विरोध उसके बाह्यडंबर का किया है। आधुनिक आलोचना की शब्दावली में इसे अंतर्विरोध कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने सूफी साधक की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि जायसी ने 'अखरावट' में उसका यथावत वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफी लोग साधक की क्रमशः चार अवस्थाएँ कहते हैं – (1) 'शरीअत' – अर्थात धर्मग्रंथ के विधिनिषेधों का सम्यक पालन। यह है हमारे यहाँ का कर्मकांड। (2) 'तरीकत' – अर्थात बाहरी क्रिया कलाप से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान। इसे उपासना कांड कह सकते हैं। (3) 'हकीकत' – भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक बोध जिससे साधक तत्वदृष्टिसम्पन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है। इसे ज्ञानकांड समझिए। (4) 'मारफ़त' – अर्थात सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अंत में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है और वह भगवान की सुंदर प्रेममयी प्रकृति (जमाल) का अनुसरण करता हुआ प्रेममय हो जाता है।"[35] इस संबंध में जायसी द्वारा रचित 'अखरावट' की इन पंक्तियों को उद्धृत किया गया है -

"ना नमाज है, दीन क थूनी। पढ़ै नमाज सोइ बड़ गूनी॥
कही तरीकत चिसती पीरू। उधरित असरफ और जहांगीरू॥
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई । देखि समुद्र जल जीउ न डेराई॥
जेहि के ऐसन खेवक भला। जाइ उतरि निरभय सो चला॥
राह हकीकत परै न चूकी । पैठि मारफत मार बुडूकी ॥

[35] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 132, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

ढूंढि उठै लेइ मानिक मोती । जाइ समाइ जोति महँ जोती ॥

जेहि कहँ डन्ह अस नाव चढ़ावा । कर गहि तीर खेइ लेइ आवा ।।"[36]

इस पंक्ति से उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि जायसी सूफी होते हुए भी इस्लाम दर्शन एवं उसकी मान्यताओं में विश्वास रखते हैं। वह पूर्ण रूप से सूफी संतों की मंडली में शामिल होते हुए भी विधि-विधान पर विश्वास करते हैं। इसका प्रमाण 'अखरावट' में अनेक जगहों पर मिलता है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "जायसी को विधि पर पूरी आस्था थी। वे उसको साधना की पहली सीढ़ी कहते हैं जिस पर पैर रखे बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता –

"सांची राह 'सरीअत' जेहि बिसवास न होइ।

पाँव रखै तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचै सोई ॥"[37]

लेकिन केवल इसी पद्धति से जायसी का मूल्यांकन करना खतरनाक साबित हो सकता है। इसी ग्रंथ में जायसी ने आगे जो लिखा है उसे समझने के लिए किसी नए प्रतिमान की आवश्यकता होगी केवल भक्ति – भाव वाली पद्धति वहाँ कुछ सिमटी हुई जान पड़ती है। उन्होंने लिखा है –

"जौ पखारि तन आपन राखै। निसि दिन जागै सो फल चाखै ।।

चित झूलै जस झूलै ऊखा । तजि कै दोउ नींद औ भूखा ।।

चिंता रहै ऊख पहँ सारू । भूमि कुल्हाड़ी करै प्रहारू ।।

तन कोल्हू मन कातर फेरैं । पाँचौं भूत आतमहि पेरै ।।

जैसे भाठी तप दिन राती । जग धंधा जारैं जस बाती ।।

आपुहि पेरि उड़ावै खोई । तब रस औट पाकि गुड़ होई ।।"[38]

[36] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 480, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[37] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 132, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[38] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 481, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

आधुनिक युग के कवियों में जो लोक के प्रति गहरी संवेदना एवं विशेष आसक्ति दिखाई देती है उसकी शुरुआत जायसी और अन्य भक्तकालीन कवियों के यहाँ से माना जा सकता है। लोक संवेदना के मुखर कवि त्रिलोचन ने 'मेरा घर' काव्य संग्रह में 'ईख पकने पर' शीर्षक से तीन खंड में कविता लिखी है। वह कविता भी लगभग उसी तरह से अपने समय, समाज एवं संवेदना को अभिव्यक्त करती है। विश्वग्राम की अवधारणा के बीच अपने गाँव एवं खेत को समझने एवं बचाने की जो कोशिश आधुनिक युग में त्रिलोचन के यहाँ दिखाई पड़ती है उसी तरह से बाह्य संस्कृतियों की टकराहट से अपनी संस्कृति को बचाने की कोशिश जायसी के यहाँ देखी जा सकती है। आधुनिक आलोचन जगत में जिन दो शब्दों का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया गया वह है - संस्कृतिकरण और प्राच्यवाद। संस्कृतिकरण की अवधारणा नई है लेकिन इसके तत्व आदिकालीन साहित्य, इतिहास एवं राजनीति में सन्निहित है। इसी सांस्कृतिक टकराहट में अपनी संस्कृति के मिट जाने का भय एवं उसकी चिंता भक्तिकालीन कवियों में दिखाई पड़ती है। इस चिंता ने उन्हें अपनी जड़ की तरफ जाने के लिए प्रेरित किया। दूसरी बात यह थी कि ये सारे कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे और अपनी परंपरा से जुड़े हुए थे।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचनाओं में दार्शनिकता के पुट हमेशा दिया है। इसकी व्यापक रूप से अभिव्यक्ति 'अखरावट' एवं 'आख़िरी कलाम' में हुई है। दुनियाभर के अभौतिकतावादी दार्शनिकों ने प्रकृति के साथ अपना संबंध स्थापित करने में पूरा चिंतन खपाया है। दूसरी बात यह कि उन्होंने आत्मा को जानने के लिए बहुत प्रयास किया है। इसी क्रम में सूफी साधकों ने भी अपने आराध्य में तल्लीन होने की स्थिति के पहले अपनी स्थिति (आत्मा) के विषय में चिंतन किया है। लगभग ऐसा ही चिंतन भारतीय समाज में भी विद्यमान था। उपनिषदों में यह भरा पड़ा है। आचार्य शुक्ल ने जायसी के 'अखरावट' के संबंध में लिखा है कि, " 'अखरावट' में उपनिषद की कुछ बातें कहीं – कहीं ज्यों की त्यों मिलती हैं। आत्मा के संबंध में जायसी कहते हैं –

पवन चाहि मन बहुत उताइल। तेहि तें परम आसु सुठि पाइल ॥

मन एक खंड न पहुँचै पावै। आसु भुवन चौदह फिरि आवै ॥

पवनहिं महँ जो आपु समाना। सब भा बरन जो आपु अमाना।।

जैसे डोलाए बेना डोलै। पवन सबद होइ किछुइ न बोलै।।

यही बात इशोपनिषद में कही गई है –

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽऽप्नुवन पूर्वमर्षत।

तद्धावतोऽन्यानत्येति ष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।"[39]

लेकिन यह विचार करने वाली बात है कि क्या जायसी ने इशावास्योपनिषद अथवा अन्य किसी प्रकार के दार्शनिक ग्रंथ का अध्ययन किया था ? क्या वे इस तरह की सभा एवं समितियों में आते-जाते थे जिसमें भारतीय दर्शन से संबंधित विषयों पर चर्चा होती थी ? यह विषय बहुत व्यापक है।

सूफी कवियों की प्रेम पद्धति ने आम जनमानस को उद्वेलित किया था। उनका काव्य भले ही किसी राजघराने की कहानी कहता हो लेकिन वहाँ आमजन के लिए भी जगह है। यही कारण है कि उनकी प्रेम पद्धति को संत कवियों ने भी अपनाया था। आचार्य शुक्ल ने इस प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखा है कि, "निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि संतों की परंपरा में ज्ञान का जो थोड़ा बहुत अवयव है वह भारतीय वेदान्त का है – पर प्रेमतत्व बिलकुल सूफियों का है। इनमें से दादू, दरिया साहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पड़ते हैं।"[40] यह सूफी कवियों की अपनी शक्ति थी जिसे परवर्ती कवियों ने आत्मसात किया। यह प्रभाव केवल संत कवियों तक ही नहीं पड़ा बल्कि कृष्णभक्ति धारा के कवियों पर भी पड़ा। सूफियों का मस्तमौलापन कृष्णभक्त कवियों के यहाँ भी मौजूद है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "सूफियों का असर कुछ और कृष्णभक्तों पर भी पूरा – पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्ति साफ झलकती है। जैसे सूफी क़व्वाल गाते – गाते हाल की दशा

[39] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 143, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[40] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 148, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु जी की मंडली भी नाचते – नाचते मूर्छित हो जाती थी। यह मूर्छा रहस्यवादी सूफियों की रूढ़ि है।"[41] इस परंपरा का प्रभाव बाद तक इसी तरह चलता रहा।

जायसी के मूल्यांकन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनके द्वारा रचित जिन तीन ग्रंथों (पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम) को लिया है उसमें पद्मावत की आलोचना उन्होंने सम्यक रूप से की है जबकि 'अखरावट' और 'आख़िरी कलाम' को केवल सैद्धांतिक ग्रंथ मानते हुए कम महत्त्व दिया है।

3.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जायसी संबंधी महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ और उन स्थापनाओं का परवर्ती हिंदी आलोचना में पिष्ट-पेषण

सूफीवाद का विकास इस्लाम के भीतर से हुआ है। इस्लाम का रहस्यवाद या सूफी – दर्शन ही तसव्वुफ़ है। ऐसा माना जाता है कि बेशरा इस्लाम के अनुयायी ही सूफिवाद के तरफ झुके। जिनका धर्म के प्रति लगाव था उनके लिए सूफीवाद या सूफीमत का कोई महत्त्व नहीं था। 'सूफी' शब्द का साधारण अर्थ इस्लामी संत समझा जाता है। फारसी में जिसे तसव्वुफ़ कहते हैं, वह हिंदी में सूफीमत के नाम से विख्यात है। सूफीमत के उद्भव एवं विकास के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों में से ब्राउन, निकलसन, मारगुलियथ, आरवेरी, मारगेट, स्मिथ, आदि ने विचार किया। उनके अध्ययन का उपयोग करते हुए हिंदी साहित्य में पं. चंद्रबली पाण्डेय, पं. परशुराम चतुर्वेदी, श्री रामपूजन तिवारी, डॉ. भगत कुलश्रेष्ठ, श्रीमती सरला शुक्ला, श्री विमल कुमार जैन, एवं डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय ने इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। सूफीमत के इतिहास के विषय में विभिन्न विचारकों ने अपना मत व्यक्त किया है। गिव्व ने लिखा है कि, "सूफीमत का इतिहास तब से प्रारंभ होता है, जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गए थे।"[42]अतः कहा जा सकता है कि सूफी मत का इतिहास 623 ई. के लगभग आरंभ होता है। प्रारंभ में सूफीमत में दर्शन का प्रवेश नहीं था।

[41] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 143, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[42] Muhammdanism – Gibb, H.A.R., I Page. 100, London, 1949

सूफीमत की व्याख्या एवं उसके उद्भव के संबंध में विद्वानों ने अपने – अपने मत का प्रतिपादन किया है । इस्लामिक दर्शन और रहस्यवाद के प्रसिद्ध व्याख्याता विलियम सी.चित्तिक ने लिखा है कि, "Sufism is a name without a reality, but it used to be a reality without a name. (सूफीवाद एक नाम है बिना किसी वास्तविकता के, लेकिन यह बिना किसी नाम के वास्तविकता थी ।)"[43] विलियम चित्तिक ने उसके दार्शनिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों का गहन अध्ययन करने के पश्चात अपनी यह परिभाषा दी है। चूंकि सूफी के नाम से समाज में अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इन सभी भ्रांतियों से वे भली भांति परिचित थे। बहरहाल जयशंकर प्रसाद ने अपने रहस्यवाद शीर्षक निबंध में लिखा है कि, "सूफीसंप्रदाय मुसलमानी धर्म के भीतर वह विचारधारा है जो अरब और सिंध का परस्पर संपर्क होने के बाद से उत्पन्न हुई थी। यद्यपि सूफी धर्म का पूर्ण विकास तो पिछले काल में आर्यों की बस्ती ईरान में हुआ, फिर भी उसके सब आचार इस्लाम के अनुसार ही है।"[44] प्रसाद जी ने यह स्वीकार किया है कि सूफीमत इस्लाम के सिद्धांत पर आधारित है। हुकमचंद जैन एवं कृष्णगोपाल शर्मा ने लिखा है कि, "सूफी आंदोलन का प्रारंभ हिन्दू धर्म से उसके संपर्क के परिणाम स्वरूप नहीं अपितु मुसलमानों में स्वतंत्र रूप से हुआ।"[45] केवल साहित्यकारों ने ही नहीं बल्कि इतिहासकारों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। प्रसिद्ध चिंतक जाफ़र रज़ा ने लिखा है कि, "सूफिवाद का आधार पूर्णतया इस्लाम धर्म है । इसके स्रोत एवं संदर्भ कुरआन, इस्लामी पैगम्बर तथा उनके अह्लबैत (परिवारजनों) पर आधारित है, विशेषकर हजरत अली को पहला सूफी मानकर इसकी व्याख्या की जाती है।"[46] इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सभी विद्वानों ने सूफीवाद का उद्भव इस्लाम धर्म से ही माना है। इसी से मिलता – जुलता तर्क डॉ. कन्हैया सिंह ने भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफीमत मूलतः कुरान से ही निःसृत एवं विकसित है। कुरान की ईश्वर, जीव और जगत संबंधी मान्यताओं को स्वीकार करते हुए विभिन्न सूफी चिंतकों ने उनकी मौलिक व्याख्याएँ

---

[43] Sufism A Beginner's Guide – William C. Chittick, Page. 1, 2005, Oneworld Publication, London

[44] काव्य और कला तथा अन्य निबंध – जयशंकर प्रसाद, पृ. सं. – 31, द्वितीय संस्करण – 2007, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[45] भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास – प्रो. कृष्णगोपाल शर्मा एवं डॉ. हुकम चंद जैन, पृ.सं. – 590, पंचम संस्करण – 2016, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

[46] इस्लामी अध्यात्म सूफ़ीवाद – जाफ़र रज़ा, पृ. सं. – 9, प्रथम संस्कर – 2004, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रस्तुत की जो कालांतर में कुरान की मूल भावना से भिन्न और प्रतिकूल भी प्रतीत होने लगीं।"[47] चूंकि सूफियों का मामला भी कुछ उसी तरह का था जैसा ईसाइ धर्म में प्रोटेस्टेंट का। इन लोगों ने भी सूफियों के कठमुल्लेपन पर जोरदार प्रहार किया लेकिन इनके विकास बीज भी उसी दर्शन से उत्पन्न हुआ था जिसका वे विरोध कर रहे थे। इन चिंतकों की मूल भावना मानवता की प्रतिष्ठा थी।

सूफी साधना में प्रेम को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। सूफ़ीमत का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों में प्रेम के स्वरूप पर समग्र रूप में चर्चा मिलती है। सूफ़ीमत साधना और साहित्य में प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी साधना प्रेम की साधना है। उनका साधन मार्ग प्रेम – पंथ है। प्रेम उनके काव्य के समस्त प्रतीकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। ऐसा माना जाता है कि सूफी चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र कहें परंतु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वो अपने प्रेम का आलंबन मानते हैं। वे समस्त संसार को उसी प्रियतम के प्रेम मे निमग्न देखते हैं। इस संदर्भ में डॉ. कन्हैया सिंह ने लिखा है कि, "सूफी साधना का केंद्रीय तत्व प्रेम है। प्रेम ही वह सूरा है जिसके मद में छका हुआ सूफ़ी मस्तमौला बना रहता है और उसे प्रियतम के प्रेम के अलावा कुछ भी नहीं दिखाई देता है। उसे न मज़हब की पाबंदियों की परवाह रहती है और न जगत के सम्बन्धों की। वह न सुख चाहता है और न दुःख, वह न स्वर्ग चाहता है न नरक; वह न शांति चाहता है न मोक्ष; वह न रूप चाहता है न अरूप। उसके हृदय में एक ही आग जलती रहती है और वह आग है प्रेम।"[48] यह तथ्य इस बात का प्रामाणिक उदाहरण है कि सूफी कवियों के यहाँ केवल और केवल प्रेम ही है न कि अन्य किसी प्रकार की सांसारिक लिप्सा। जाफ़र रज़ा ने 'इश्क' शब्द की उत्पत्ति 'इश्का' शब्द से माना है। यह एक प्रकार की बेल होती है। भारत में इसको अमरबेल या आकाशनबेल कहा जाता है। इसकी विशेषता यह होती है कि यह जिस पेड़ से लिपट जाती है उसको सूखाकर छोड़ती है। कुछ इसी तरह की विशेषता इश्क में भी पायी जाती है। उन्होंने लिखा है कि, "समस्त सूफ़ी इश्क के पोशाक रहे हैं उन्होंने इश्क को दो खंडों में विभाजित किया है – 'इश्के – हक़ीक़ी' अर्थात ईश्वर का इश्क जो प्रेम का सत्य रूप है तथा 'इश्के – मजाज़ी' अथवा कृत्रिम इश्क, असत्य इश्क, कामुक प्रेम, किसी व्यक्ति से प्रेम

[47] उदार इस्लाम का सूफी चेहरा – डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – 33, प्रथम संस्करण – 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[48] उदार इस्लाम का सूफी चेहरा – डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – 49, प्रथम संस्करण – 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अथवा माया।"[49]इन्होंने उसी की तरफ इशारा किया है जिसकी चर्चा बार – बार सूफी कवियों ने की है। सूफी कवियों की यह स्पष्ट घोषणा है कि इश्क मजाज़ी, इश्क हक़ीक़ी का सोपान है और इसी के द्वारा मानव सुदी को समाप्त कर खुदी बन जाता है। सूफियों के प्रेम भाव का उदय सर्वप्रथम देवदास और देवदासियों में हुआ। कर्मकांडी नावियों के घोर विरोध के कारण उसको परम प्रेम की उपाधि प्राप्त हुई। सूफ़ी साधकों को अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। ईरान, अरब और भारत आदि देशों में इस साधना का प्रचार और प्रसार हुआ। आठवीं – नवीं शताब्दी में इसी प्रेम साधना ने इस्लाम धर्म के अंतर्गत सूफ़ी प्रेम भावना का रूप ग्रहण किया। राबिया से अल गज्जाली के समय तक अविच्छिन्न रूप से इस्लाम के साथ ही प्रेम या मादन भाव की सूफ़ी साधना भी चलती रही।

वस्तुतः सूफ़ी साधना का प्रधान लक्ष्य यह है कि सृष्टि के कण – कण में प्रियतम का जलवा देखना और उसके प्रेम – विरह में तड़पन का आनंद उठाना साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त करना और अंततोगत्वा चिर मिलन का आनंद प्राप्त करना। यह स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च, पवित्र और व्यापक भावभूमि पर पहुँच जाता है तब वह ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है।

भारत में सूफ़ी काव्य की परंपरा फ़ारसी सूफ़ी काव्य से कई मायनों में भिन्न है। पं. परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि, "हिंदी का सूफ़ी साहित्य मुख्य रूप से काव्य साहित्य है और उसमें भी प्रबंध काव्य की प्रधानता है। लेकिन फ़ारसी का सूफ़ी साहित्य अत्यंत समृद्ध है। वह प्रबंध काव्यों तक ही सीमित नहीं है। सूफ़ी साधकों ने फ़ारसी में सूफ़ी संतों की जीवनियाँ भी लिखी हैं तथा सूफ़ी सिद्धांतों का प्रतिपादन और विवेचन भी किया है।"[50] यह भिन्नता ही जायसी को दृढ़ता से स्थापित करती है। इसी कारण जायसी भारतीय आम जनमानस से संवाद कर पाते हैं। जायसी का काव्य (पद्मावत) भारतीय जनमानस को अभिव्यक्त करता है।

[49] इस्लामी अध्यात्म : सूफ़ीवाद – जाफ़र रज़ा, पृ. सं. – 85, प्रथम संस्करण – 2004, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[50] संत और सूफ़ी साहित्य – पं. परशुराम चतुर्वेदी, पृ. सं. – 251, द्वितीय संस्करण – 2001, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

जायसी को सूफ़ी कवि के रूप में व्याख्यायित करने की परंपरा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पहले से चली आ रही है। शुक्ल जी ने भी इस परंपरा का समर्थन ही किया। लेकिन आगे चलकर कई आलोचकों ने इस पर सवाल उठाया और यह मतभेद लगातार चल रहा है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "जायसी का झुकाव सूफीमत की ओर था जिसमें जीवात्मा और परमात्मा में पारमार्थिक भेद न माने जाने पर भी साधकों के व्यवहार में ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाती है।"[51] उन्होंने विभिन्न तर्कों के आधार पर जायसी को सूफ़ीवाद के ढांचे में खड़ा किया है जबकि कुछ विचारक इससे भिन्न मत रखते हैं। केवल 'पद्मावत' के आधार पर जायसी को सूफ़ी कवि नहीं कहा जा सकता है। जायसी की अन्य दो रचनाएँ (अखरावट तथा आख़िरी कलाम) जिसका संपादन शुक्ल जी ने 'जायसी ग्रंथावली' में किया है, ऐसी हैं जिसमें इस्लाम से संबंधित तमाम तरह की बातों का उल्लेख किया गया है। आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है कि, "आरंभ में कवि ने जो सिंहलगढ़ का वर्णन किया है उसमें कहा है कि 'चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सौं उतरै पार'। ये चार बसेरे सूफ़ी साधकों की चार अवास्थाएँ हैं – शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफ़त। यही मारफ़त पूर्ण समाधि की अवस्था है जिसमें ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति होती है।"[52] सूफ़ी साधना में इन चार अवस्थाओं की चर्चा बार – बार मिलती है। इन्हीं चार अवस्थाओं से होकर साधक पार उतरता है।

सूफ़ीवाद का दायरा बहुत लंबा – चौड़ा है। इसमें किसी भी व्यक्ति को ठीक ढंग से बैठाया नहीं जा सकता है। लेकिन कुछ बिंदुओं के आधार पर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन किया जाता है जिससे उसकी प्रवृत्ति और उसमें निहित तत्व की जानकारी मिलती है। सूफियों की चिंता एवं उनके लेखन के विषय में सय्यद आली हजवेरी का जो कथन है उसकी चर्चा जाफ़र रज़ा ने की है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफियों तथा आध्यात्मिक पुरुषों का मूल मिशन ही यह था कि जन साधारण के भीतर उस वास्तविक धार्मिकता एवं ईश्वरी उपासना की मूल आत्मा जागृत एवं प्रज्वलित की जाए, जो विभिन्न नबियों के आह्वान का मूल उद्देश्य था। परंतु यह बात निरंकुश एवं अन्यायी शासकों को असह्य थी। अतः सूफियों ने अपनी बात ऐसी भाषा शब्दावली में व्यक्त किया कि उनके

[51] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 61, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[52] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 68, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

समुदाय के लोग तो उसे भली – भांति समझ लें परंतु यदि यह बात उनके क्षेत्र के बाहर जाए तो दूसरे इस परंपरा के भेद को न पा सकें।"[53] इस परिभाषा के आधार पर 'पद्मावत' में बहुत ऐसे तथ्य हैं जो उससे मेल नहीं खाते हैं। 'पद्मावत' के रचनाकाल के समय सत्ता मुसलमानों के हाथ में थी, अन्य कई सारी चीजें इसी तरह की हैं। लेकिन 'अखरावट' और 'आख़िरी कलाम' में उन्होंने विशुद्ध रूप से अपने अध्यात्म एवं दर्शन का परिचय दिया है।

इस्लाम में पवित्र धर्म ग्रंथ 'कुरआन' को माना जाता है। उस धर्म को मानने वाले सभी लोग इस ग्रंथ में विश्वास रखते हैं। जायसी की रचना 'अखरावट' में इसकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने लिखा है कि,

"तब भा पुनि अंकूर, सिरजा दीपक निरमला।
रचा मुहम्मद नूर, जगत रहा उजियार होई॥
ऐसे जो ठाकुर किय एक दाऊँ। पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ॥"[54]

इस प्रकार के कई अन्य उद्धरण 'आख़िरी कलाम' में भी भरे पड़े हैं। 'आखिरी कलाम' में भी उन्होंने बड़े ही मनोयोग से मुहम्मद साहब को याद किया है। उन्होंने लिखा है कि,

"दीन्हेसी बदन सुरूप रंग, दीन्हेसी माथे भाग।
देखि दयाल 'मुहम्मद', सीस नाइ पद लाग॥
x x x
दीन्हेसी नौ सौ फाटका, दीन्हेसी दसवँ दुवार।
सो अस दानि 'मुहम्मद', तिन्ह कै हौं बलिहार॥"[55]

ऐसा नहीं है कि अपने आराध्य के प्रति लगाव केवल जायसी के काव्य में ही दिखता है। तुलसीदास के काव्य में भी कुछ ऐसा ही लगाव देखने को मिलता है। यह तथ्य कहीं – न – कहीं जायसी का अपने धर्म के प्रति

[53] इस्लामी अध्यात्म : सूफ़ीवाद – जाफ़र रज़ा, पृ. सं. – 28, प्रथम संस्करण – 2004, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[54] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 465, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[55] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 496, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

झुकाव को व्यक्त करता है। हिंदी आलोचना जगत में जायसी को यदि याद किया गया है तो 'पद्मावत' के कारण न कि 'अखरावट' और 'आख़िरी कलाम' की वजह से। यही जायसी संबंधी आलोचना के लिए बहुत ही कष्टप्रद बात है कि उनका मूल्यांकन केवल एक रचना के आधार पर किया गया, समग्रता में नहीं।

मलिक मुहम्मद जायसी संबंधी हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कार्य मील का पत्थर साबित हुआ है। उनकी मान्यताओं को परवर्ती आलोचकों ने अपने ढंग से समझा तथा उसे व्याख्यायित एवं विवेचित किया। आचार्य शुक्ल के बाद की परंपरा में हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। द्विवेदी जी ने भी लगभग उसी परंपरा का अनुसरण किया है जिसमें जायसी को रहस्यवादी कहा गया है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी को रहस्यवादी कवि कहा जाता है। सूफियों का रहस्यवाद अद्वैत भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रूप में देखता है और उनसे मिलने के लिए व्याकुल रहता है।"[56] यह लगभग उसी परंपरा का अनुसरण है जिसका आचार्य शुक्ल एवं पूर्ववर्ती आलोचकों ने किया था। सूफी दर्शन के व्याख्याताओं के यहाँ तसव्वुफ़ और रहस्यवाद की चर्चा बहुत ज़ोर – शोर से मिलती है। इसी रहस्यवाद को लगभग सभी भाषाओं के आलोचकों ने सूफियों के लिए सटीक शब्दावली माना है। आचार्य शुक्ल की कुछ बातों को उन्होंने आत्मसात किया तो कुछ की आलोचना भी की है। उन्होंने आचार्य शुक्ल द्वारा सूफी साधकों की रचनाओं में अद्वैत सिद्धांत के दर्शन की आलोचना की है जबकि विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की बात को स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "पद्मावत में अद्वैतवाद की झलक स्थान – स्थान पर दिखाई पड़ती है। अद्वैतवाद के अंतर्गत दो प्रकार के द्वैत का त्याग लिया जाता है – आत्मा और परमात्मा के द्वैत का तथा ब्रह्म और जड़ जगत के द्वैत का। इनमें से सूफियों का ज़ोर पहली बात पर ही समझा जाना चाहिए।"[57] लेकिन फिर आगे इन्होंने ही लिखा है कि, "जायसी के कथन में रामानुज के विशिष्टाद्वैत की झलक साफ है जिसके अनुसार ब्रह्म चिदचिद्विशिष्ट है अर्थात चित और अचित दोनों उसके अंग हैं। जायसी ने आगे चलकर तो ब्रह्म को द्विकलात्मक साफ कहा है – खा खेलार जस है दुइ करा। उहै रूप आदम अवतरा॥ ब्रह्म के सूक्ष्म चित्त से जीवात्माओं की

[56] हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास – हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. – 150, संस्करण – 2014, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

[57] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 135, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

उत्पत्ति और सूक्ष्म अचित्त से उनके शरीर और जड़ जगत की उत्पत्ति हुई है। विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है; उपादान है जड़ (स्थूल अचित) और जीव (स्थूल चित)।"[58] इस विशिष्टाद्वैत की बात समर्थन करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है कि, "मुसलमान लोग एकेश्वरवादी हैं इसीलिए बहुत लोग सूफी साधकों को भी एकेश्वरवादी समझ लेते हैं। बहुत लोग हिंदुओं के पुराने ग्रंथों में आए हुए अद्वैतवाद से एकेश्वरवाद को अभिन्न मानते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में कई सुधारवादी आंदोलन हुए हैं जिसमें उपनिषदों के अद्वैतवाद को एकेश्वरवाद से अभिन्न मान लिया गया हैं। परंतु सूफी लोग ठीक एकेश्वरवादी नहीं हैं। उनका विश्वास बहुत कुछ विशिष्टाद्वैतवादी दर्शनिकों की भांति है। विशिष्टाद्वैतवादी दर्शनिकों का व्यवहार धर्म की भांति ही है और इन साधकों का व्यवहरिक धर्म भी भक्ति ही है। निस्संदेह इन साधकों की मधुर भक्ति भावना ने हमारे देश के संतों को भी प्रभावित किया है और इन्होंने भी इस देश से बहुत कुछ ग्रहण किया है।"[59] बहरहाल इसका संकेत शुक्ल जी ने पहले ही दे दिया था।

शुक्लोत्तर आलोचकों में जायसी संबंधी चिंतन की कड़ी में डॉ. रघुवंश को भी शामिल किया जाता है। इन्होंने भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि का समर्थन किया है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय कवियों की दृष्टि फारस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तार तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखने वाली होती है। इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही स्मरणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं।"[60] इस विवेचना का लगभग समर्थन करते हुए डॉ. रघुवंश ने लिखा है कि, "जायसी कवि हैं और अपने रचना – कर्म में पूरी सजगता से संलग्न हैं। वह सूफी थे, किस गुरु के शिष्य थे, किस मार्ग संप्रदाय से संबन्धित थे, ये सारे प्रश्न इसके सामने गौण हैं।"[61] यह देखा जा सकता है कि जायसी के काव्य पक्ष को लेकर आचार्य शुक्ल ने अपनी जो स्थापना प्रस्तुत की है उसी का आगे के आलोचकों ने अपने ढंग से व्याख्या की है।

---

[58] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 140, संस्करण : 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[59] मध्यकालीन धर्म साधना – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. – 206, संस्करण – 1952, साहित्य भवन प्रकाशन, इलाहाबाद

[60] त्रिवेणी – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. 51, संस्करण – 2008, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

[61] जायसी एक नई दृष्टि – डॉ. रघुवंश, पृ. सं. – 9 संस्करण – 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

जायसी के दर्शन के संबंध में जिस अद्वैतवाद की चर्चा आचार्य शुक्ल ने की है उसी को आगे बढ़ाने का प्रयास डॉ. रघुवंश ने भी किया है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफी मत से संबद्ध होने के नाते जायसी का दार्शनिक चिंतन अद्वैतवाद के निकट रहा है और काव्याभिव्यक्ति के स्तर पर उसके अनेक पक्ष उजागर हुए हैं। परंतु जैसा कहा गया है, वह व्यापक स्तर पर परंपरा को स्वीकार कर चले हैं और उन्होंने अपने प्रबंध काव्य के प्रारंभ में ऐसे ईश्वर की स्तुति की है जो सर्वशक्तिमान प्रभुसत्ता रूप है।"[62] यह वही सिद्धांत है जिसका प्रतिपादन आचार्य शुक्ल ने 'ईशावाष्योपनिषद' के हवाले से किया है। उन्होंने पद्मावत के जिन प्रसंगों पर अद्वैतवाद के प्रभाव को लक्षित किया है लगभग उसी तरह इन्होंने भी अद्वैतवाद के प्रभाव को स्वीकार किया है। इन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत के रचना विधान में अद्वैत रूप परम तत्व की अभिव्यक्ति अनेक प्रसंगों में हुई है। एक ओर जगत और आत्म तत्व का अलगाव है, इस प्रकार वह ब्रह्म से भी द्वैत रूप में है, और दूसरी ओर आत्मा तथा परमात्मा का द्वैत भाव है।"[63] यह उसी परंपरा का विकास है। शुक्लोत्तर आलोचना में जायसी संबंधी चिंतन में लगभग आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की कही बात को अपने ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जायसी के जिस कवि रूप को लेकर बार – बार चर्चा होती है कि शुक्ल ने उनके कवि कि छवि को धूमिल की है वह भी अप्रामाणिक एवं अतार्किक है। 'त्रिवेणी' में उन्होंने उनके कवि व्यक्तित्व की खूब प्रशंसा की है।

3.4 आचार्य शुक्ल की जायसी संबंधी आलोचना की शक्ति, संभावनाएँ और सीमाएँ

ऐसा माना जाता है कि साहित्य का केंद्र बिंदु मानवीय कार्य – व्यापार है। इसी मानवीय कार्य व्यापार का सूक्ष्म अन्वेषण करने के बाद उसकी मनःस्थिति एवं विसंगतियों को यथार्थ रूप में साहित्य ही प्रस्तुत करता है। इसका केंद्र बिंदु लेखक की रुचि पर निर्भर करता है। इसके पात्र कभी मिथकीय होते हैं तो कभी ऐतिहासिक आदि। चूंकि यह मनुष्य से सीधे तौर पर जुड़ा है इसलिए यह अन्य ज्ञानानुशासनों से भी संबद्ध हो जाता है। इसका कारण यह है कि इस जगत में चिंतन के सभी आयामों के केंद्र में मनुष्य है। इस संबंध में ऐलन स्विंगवुड ने लिखा

[62] जायसी एक नई दृष्टि – डॉ. रघुवंश, पृ. सं. – 76 संस्करण – 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[63] जायसी एक नई दृष्टि – डॉ. रघुवंश, पृ. सं. – 77 संस्करण – 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

है कि, "समाजशास्त्र की तरह, साहित्य का मुख्य सरोकार होता है – मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा।"[64] यह बहुत ही रोचक बात है, साहित्यकार तत्कालीन सत्ता के खिलाफ एक वैकल्पिक समाज की कल्पना करता है जिसमें असहिष्णु और हिंसा जैसा माहौल न हो। जायसी ने अपनी रचना में तत्कालीन सत्ता के खिलाफ अपना विरोध प्रदर्शित किया है।

जायसी के मूल्यांकन को लेकर तमाम तरह की विसंगतियाँ आज भी आलोचकों के बीच मौजूद है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि जायसी एक सूफी कवि थे, उन्होंने कुछ ऐसा लिखा है जिसे सूफ़ीवाद के घेरे में ठीक ढंग से स्थापित नहीं किया जा सकता है और ना ही भारतीय दर्शन के अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैत के परिपाटी में ही बैठाया जा सकता है। जायसी के लेखन में सैद्धांतिक बातों का समावेश केवल 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' में पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है। 'पद्मावत' में उसका छिट – पुट कहीं दर्शन हो जाता है और यह स्वाभाविक भी है। आलोचना की जो लंबी परंपरा आचार्य शुक्ल से लेकर अब तक चली आ रही है उसमें बहुत कुछ अभी बदला नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में जायसी के दर्शन संबंधी चिंतन को बहुत ही मनोयोग से व्याख्यायित किया है। बहरहाल जायसी तथा किसी भी अन्य लेखक की रचना का आस्वादन पाठक वर्ग और आलोचक पर निर्भर करता है। इसी कारण एक ही रचना में किसी पाठक को दार्शनिक गूढ़ता नज़र आती है, किसी को हृदय पक्ष का अभाव और किसी को लोक की यथार्थ अभिव्यक्ति। इस संबंध में लावेन्थल ने लिखा है कि, "किसी रचना का स्वरूप इस बात से निर्धारित होता है कि उसे कैसे ग्रहण और अनुभव किया जाता है। चूंकि मानवीय अनुभव सामाजिक संदर्भ से निर्धारित होता है इसलिए साहित्य के ग्रहण और विवेचन का अर्थ है समाज की जीवन प्रक्रिया में किसी लेखक या कृति के ग्रहण और अनुभव की प्रक्रिया की पहचान।"[65]यह जरूरी भी है कि साहित्य की समीक्षा समाज सापेक्ष हो।

[64] साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन – सं. निर्मला जैन, पृ. सं. – 28, संस्करण – 2009, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि.वि., नई दिल्ली

[65] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि – मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. – 157, संस्करण – 2016, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा

ईश्वर के समक्ष समानता ही मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता रही है। भक्ति आंदोलन में प्रेम एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसका निर्वाह सभी कवियों के यहाँ हुआ है। प्रेम में ऊँच – नीच का भेद – भाव समाप्त हो जाता है। यहाँ ब्रह्म एवं जीव के बीच का भेद समाप्त हो गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, "मध्ययुग के भक्ति आंदोलन की एक बड़ी विशेषता यह है कि भक्त और भगवान को समान बताया गया है। प्रेम का आधार ही समानता है।"[66] यह युगीन प्रवृत्ति है जहां सभी कवि अपने ईश्वर के प्रति समर्पित हैं। जायसी सहित सभी कवियों के यहाँ इस तथ्य पर बल दिया गया है कि ईश्वर को ज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है। इस जगत को मिथ्या भी कहीं – कहीं बताया गया है। सभी सूफी एवं संत कवि यह मानते हैं कि ईश्वर में यह आत्मा मिल जाती है और यह जब मिल जाती है तब अद्वैत समाप्त हो जाता है। यह कहीं – न – कहीं अद्वैत वेदान्त की मान्यताओं से मेल खाता है। डॉ. नन्द किशोर देवराज ने अद्वैत वेदांत की मुख्य मान्यताओं के संबंध में लिखा है कि, "अद्वैत वेदांत की मुख्य मान्यताएँ तीन या चार ही हैं, अर्थात (1) एक मात्र तात्विक पदार्थ निर्गुण, कूटस्थ नित्य, सच्चिदानंद ब्रह्म है ; (2) जीव और ब्रह्म एक ही है ; (3) जीव और ब्रह्म में जो भेद दिखाई देता है अथवा जीव जो बंधन ग्रस्त दिखाई देता है उसका कारण अनादि अविद्या है। (4) यह दृश्यमान जगत माया का कार्य अतएव मिथ्या है।"[67] इस मान्यता पर जायसी का मूल्यांकन यदि किया जाता है तो उनके काव्य में अद्वैतवाद के तत्व दिखाई देते हैं। लेकिन केवल इसी आधार पर जायसी में अद्वैतवाद के तत्व को ढूँढना एकांगी दृष्टि का परिचायक होगा।

जायसी के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जाएगी। पर सूफ़ीमत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासना की – सी सहृदयता थी।"[68] आलोचकों का मानना है कि इस्लाम दर्शन में स्वयं को ईश्वर के समतुल्य मानना कुफ्र की बात है। लेकिन सूफ़ी साधक तो अपने प्रेम में इस तरह से लीन थे कि उस ईश्वर के सामीप्य के अलावा इस जगत के कर्मकांड एवं धार्मिक बाह्याडंबर को हेय मानते थे। इस बात से सभी कट्टरपंथी

---

[66] हिंदी साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. – 88, संस्करण – 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

[67] भारतीय दर्शन – डॉ. नन्द किशोर देवराज, पृ. सं. – 516, षष्ट संस्करण – 2002, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ

[68] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 126, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

नाराज़ थे और उन सभी लोगों के लिए फ़तवे जारी करते थे जिसका सूफ़ियों के लिए कोई मतलब नहीं था। यदि देखा जाए तो वह पूरा संप्रदाय उसी तरह से अपने धर्म के आडंबर के खिलाफ दिखाई पड़ता है जैसे संत कवि हिन्दू धर्म के बाह्याडंबर के खिलाफ। सूफ़ी संप्रदाय में निहित अद्वैतवाद के संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "सूफ़ियों के अद्वैतवाद ने एक बार मुसलमानी देश में बड़ी हलचल मचाई थी। ईरान, तूरान आदि में आर्य संस्कार बहुत दिनों तक दबा न रह सका। शामी कट्टरपन के प्रवाह के बीच भी उसने अपना सिर उठाया। मंसूर हल्लाज़ खलीफा के हुक्म से सूली पर चढ़ाया गया पर 'अनलहक़' (मैं ब्रह्म हूँ) की आवाज़ बंद नहीं हुई। फारस के पहुंचे हुए शायरों की प्रवृत्ति इसी अद्वैतपक्ष की ओर है।"[69] इस विचार धारा को लेकर अनेक आलोचकों में मत – मतांतर है। जयशंकर प्रसाद ने सूफ़ी संप्रदाय को मुसलमानी धर्म के भीतर से प्रस्फुटित विचारधारा माना है। इसका समर्थन लगभग सभी चिंतकों ने किया है। इन्होंने आचार्य शुक्ल के विचारों का समर्थन किया है और बताया है कि उस संप्रदाय के भीतर अद्वैतवाद की कल्पना को त्याज्य माना है। उन्होंने लिखा है कि, "यद्यपि सूफ़ी धर्म का पूर्ण विकास तो पिछले काल में आर्यों की बस्ती ईरान में हुआ, फिर भी उनके सब आचार इस्लाम के अनुसार ही है। उनके तौहीद में चुनाव है एक का, अन्य देवताओं में से, न कि संपूर्ण अद्वैत का। तौहीद का अद्वैत से कोई दार्शनिक संबंध नहीं। उसमें जहां कहीं पुनर्जन्म या आत्मा के दार्शनिक तत्व का आभास है, वह भारतीय रहस्यवाद का अनुकरण मात्र है, क्योंकि शामी धर्मों के भीतर अद्वैत कल्पना दुर्लभ नहीं, त्याज्य भी है।"[70]जाफ़र रज़ा ने भी इस मत का समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है कि, "शंकर का अद्वैतवाद रामानुज के विशिष्टाद्वैत तथा वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत से पृथक सत्ता रखता है। ..... सूफ़ी उपर्युक्त तीनों पंथों से विभिन्न कालों में प्रभावित होते रहे हैं विशेषकर शंकर के प्रभाव प्रारंभ में दिख पड़ते हैं।"[71] आचार्य शुक्ल की यह सीमा मानी जा सकती है। कृष्णदत्त पालीवाल ने आचार्य शुक्ल जी के विचारों से असहमति व्यक्त की है और प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है। उन्होंने लिखा है कि, "यही खोजना चाहिए कि ये आर्य संस्कार जिन्होंने फारस में सिर उठाया,

[69] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 127, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[70] काव्य और कला तथा अन्य निबंध – जयशंकर प्रसाद, पृ. सं. – 31, द्वितीय संस्करण – 2007, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[71] इस्लामी अध्यात्म : सूफ़ीवाद – जाफ़र रज़ा, पृ. सं. – 40, प्रथम संस्करण – 2004, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

वहाँ कैसे पहुँचें थे । इस दिशा में अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है और जब यह अध्ययन किया जाएगा तभी जायसी की सही स्थिति को समझा जा सकेगा ।"[72] यह आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए उनके चिंतन पद्धति पर प्रश्न चिह्न था कि क्या अब शोध करने के लिए यही बचा रह गया है ? नयी समीक्षा के उत्थान के साथ साहित्य के चिंतन जगत में जो बदलाव हुए उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विचार यह था कि किसी भी रचनाकार को उसके जीवन से नहीं बल्कि उसकी कृतियों के माध्यम से आँका जाए। आलोचना उनके व्यक्तिगत जीवन की नहीं बल्कि रचनाओं की होनी चाहिए। कृष्णदत्त पालीवाल ने लगभग इसी मान्यता की पुष्टि की है।

भारतीय दर्शन यह मानता है कि यह सृष्टि मिथ्या है इसलिए इससे बहुत प्रेम करने की आवश्यकता नहीं है। यह दर्शन हमेशा उर्ध्वमुखी रहता है और उस परमसत्ता में विलीन होने के लिए अनेक प्रकार का प्रयत्न करता है । इसमें ब्रह्म ही तत्व रूप में है और वही एक मात्र सत्य है जबकि इस्लाम दर्शन में जगत को मिथ्यातत्व न मानकर उसका अस्तित्व स्वीकारा गया है। परंतु सूफ़ी विचारकों एवं कवियों ने इस संबंध में भारतीय अद्वैतवादी दर्शन से निकटता प्राप्त की है। जायसी के यहाँ इस के बहुत सारे उद्धरण देखने को मिल जाएंगे। जायसी ने लिखा है –

"सबै नास्ति वह अहथिर, ऐसे साज जेहि केर।
एक साज औ भाँजै, चहै संवारै फेर॥"[73]

सूफ़ी साधक स्वयं को इस्लाम की कट्टरवादिता से दूर रहे। उनके संबंध में के. दामोदरन ने लिखा है कि, "सूफ़ियों ने घोषणा की कि मुसलमान मुल्लाओं द्वारा शरीयत की जो व्याख्याएँ की जा रही हैं, वे इस्लाम की भावना के विरुद्ध है । इस्लाम की व्याख्या करने वाले कट्टर मुल्ला लोग जहां कुरान और हदीस के औपचारिक पठन – पाठन, हज, नमाज़ वगैरा पर अधिक ज़ोर देते थे, वहाँ सूफ़ियों ने आंतरिक अनुशासन और हृदय की शुद्धता पर

[72] आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत – कृष्णदत्त पालीवाल, पृ. सं. – 176, संस्करण – 2016, आर्य प्रकाशन मण्डल, नयी दिल्ली
[73] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 191, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अधिक ज़ोर दिया है। उन्होंने घोषणा की कि ईश्वर के सामीप्य के लिए मुल्लाओं ने जो आदेश जारी किए हैं और जो पाबन्दियाँ लगाई हैं, वे सब बेकार हैं।"[74] यह उस समय के लिए कितना चुनौतीपूर्ण काम रहा होगा इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचार से इनका विचार मिलता – जुलता है। आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है कि, "सूफ़ियों को कट्टर मुसलमान एक तरह के काफिर समझते थे। सूफ़ी मज़ाबी दस्तूर (कर्मकांड और संस्कार) आदि के संबंध में भी कुछ आज़ाद दिखाई देते थे और मोक्ष के लिए किसी पैगंबर आदि मध्यस्थ की जरूरत नहीं बताते थे।"[75] यह पूरे भक्तिकाल की स्थिति रही है और कमोबेश सभी कवियों ने मुल्ला – पंडितों की भर्त्सना की है। इसका सबसे प्रखर रूप कबीर आदि संत कवियों में दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार से संत कवियों ने घट के भीतर अंतरात्मा की शुद्धता पर विशेष बल दिया है उसका रूप सूफी कवियों के यहाँ दिखाई देता है। उन्हें कण – कण में ईश्वर का बोध होता है। इसका प्रमाण जायसी के यहाँ मिलता है। उन्होंने लिखा है कि –

"काया मरम जान पै रोगी, भोगी रहै निचिंत।
सब कर मरम गोसाईं (जान) जो घट घट रहै निंत॥"[76]

यह घट के भीतर जानने की अवस्था ही सामान्य से विशेष की ओर ले जाती है। जायसी के यहाँ भी कुछ उसी प्रकार की चुनौती पूर्ण कथन मिलते हैं जैसे कबीर और दादू के यहाँ मिलते हैं। इन्होंने उसी प्रकार पोथी पढ़ने वालों की आलोचना की है जैसे सिद्धों एवं नाथों के यहाँ मिलता है। जायसी ने लिखा है कि –

"जो पुरान विधि पठवा, सोई पढ़त ग्रंथ।
और जो भूले आवत, सो सुनि लागे पंथ॥"[77]

---

[74] भारतीय चिंतन परंपरा – के. दामोदरन, पृ. सं. – 318, चौथा संस्करण – 2001, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
[75] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 127, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[76] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 191, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[77] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 192, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

यहाँ कवि ने सगर्व घोषणा की है कि ग्रंथ पढ़ने से कल्याण नहीं होने वाला है। मुल्ला पंडित को उन्होंने 'पुराण विधि पठवा' कह कर संबोधित किया है। वेदांत दर्शन में इसका उल्लेख किया गया है। उसमें यह बताया गया है कि जिसको परमात्मा का साक्षात् ज्ञान होता है उसकी मुक्ति संभव है और जो प्रकृति अर्थात तमाम तरह के कर्मकांड में विश्वास करता है उसको महाअंधकार वाली योनी प्राप्त होती है। इस संदर्भ में एक पंक्ति को बार – बार उद्धृत किया जाता है।

"**तन्निष्टस्य मोक्षोपदेशात।**"[78]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफियों के सैद्धान्तिकी की चर्चा की है। उन्होंने भारतीय भक्ति परंपरा के साथ उसको जोड़कर दिखाया है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफी मत की भक्ति का स्वरूप प्रायः वही है जो हमारे यहाँ की भक्ति का। नफ़्स के साथ जिहाद (धर्मयुद्ध) विरति पक्ष है और जिक्र और मुराकबत (स्मरण और ध्यान) नवधा भक्ति पक्ष। रति और विरति इन दोनों पक्षों के लिए बिना अनन्य भक्ति की साधना हो नहीं सकती है।"[79] यह उस पूरे काव्य का संपूर्ण मूल्यांकन है।

जायसी के यहाँ वेदांत की बहुत सी बातें देखने को मिलती हैं। वेदांत ब्रह्म को इस जगत का निमित्त कारण मानता है। इसे यदि उपादान कारण समझा जाए तो यह परतंत्र और परिणामी होगा और रूपान्तरण किसी वस्तु का स्वतन्त्रता से नहीं होता है। ब्रह्म एक रस और स्वतंत्र है इस कारण उसे निमित्त कारण मानना उचित है।

"जन्माद्यस्ययतः।"[80]

तात्पर्य यह है कि जो इस संसार को उत्पन्न करने वाला, स्थिर रखने वाला और नाश करने वाला है वही परमात्मा है। इसी से कुछ मिलता – जुलता जायसी ने भी लिखा है। उन्होंने लिखा है कि –

---

[78] वेदांत दर्शन – स्वामी दर्शनानंद जी सरस्वती, पृ. सं. – 35, बाबू चातुरी बिहारी सक्सेना प्रकाशन, दिल्ली

[79] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 130, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[80] वेदांत दर्शन – स्वामी दर्शनानंद जी सरस्वती, पृ. सं. – 7, बाबू चातुरी बिहारी सक्सेना प्रकाशन, दिल्ली

"ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनिहि नाईं ।।

आपुहि आप जौ देखै चहा। आपनि प्रभुता आप सौं कहा ।।

सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहिं दरपन आपूहिं देखा ।।

आपुहि बन औ आप पखेरू। आपुहिं सौजा आपु अहेरू ।।

आपुहि पुहुप फूलि बन फूले। आपुहि भँवर बास रस फूले ॥

आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखनहारा ॥

आपुहि घट घट महँ मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै ॥

आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखनहार।

आपुहि लिखनी, आखर, आपुहि पंडित अपार ॥"[81]

इस पंक्ति के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, " 'आपुहि दरपन आपुहि देखा' इस वाक्य से दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञात का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है। इसी अर्थ को लेकर वेदान्त में यह कहा जाता है ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है। 'आपुहि आपु जो देखै चहा' का मतलब यह है कि अपनी शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से पृथक उसकी कोई सत्ता नहीं है।"[82] यह कुछ सूक्ष्म विवेचन है जायसी के काव्य का। इसके आधार पर यह नहीं समझा जा सकता है कि जायसी ने अपने काव्य में इन गूढ़ तत्वों का समावेश किया है। यह बहुत ही जटिल प्रक्रिया है इससे लगभग सभी कवि दूर रहना चाहते हैं लेकिन इसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में काव्य के भीतर हो ही जाती है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनके तर्क या ब्रह्म जिज्ञासा का फल नहीं है ; उनकी सारग्राहिणी और उदार भावुकता का फल है, उनके अनन्य प्रेम का फल है। इसी प्रेमाभिलाषा की प्रेरणा से भक्त उस अखंड रूपज्योति को किसी – न – किसी कला के दर्शन के लिए सृष्टि का कोना – कोना झाँकता है, प्रत्येक मत और सिद्धांत की ओर आँख उठता है और सर्वत्र जिधर देखता है उधर

---

[81] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 475, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[82] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 137, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

उसका कुछ – न – कुछ आभास पाता है। यही उदार प्रवृत्ति सब सच्चे भक्तों की रही है।"[83] यह बात बहुत सही है कि भक्तिकाल के कवियों ने काव्य रचना किसी स्वार्थवश अथवा लोभवश नहीं की थी, उन्होंने समाज को जिस ढंग से देखा और समझा था उस को उसी रूप में अभिव्यक्त किया था। उस युग के कवियों की चिंता मनुष्यता के धरातल पर सभी को एक बराबर समझने की थी। कहीं कोई भेदभाव नहीं था। लगभग सभी कवियों ने अपनी अज्ञानता को केवल स्वीकार ही नहीं किया है वरन स्वयं को बहुत तुच्छ भी साबित किया है। जायसी ने अपने विषय में लिखा है कि,

"हौं पंडितन केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥"[84]

भक्ति काल के लगभग सभी कवियों ने इसी तरह से स्वयं को अभिव्यक्त किया है।

3.5 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के मद्देनजर यह तथ्य सामने आता है कि जायसी ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा एक ऐसा विधान रचा जिसे देखकर इतिहासकारों ने भी इसे अपनी विषय – वस्तु बना लिया। जायसी ने पद्मावती को बड़े ही मनोयोग से गढ़ा है। अपनी रचना के भीतर कल्पनाशक्ति के द्वारा लगभग सभी साहित्यकार एक नए जीवन की सर्जना करते हैं। मुक्तिबोध ने लिखा है कि, "साहित्यिक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। कला में जीवन की जो पुनर्रचना होती है वह सारतः उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो जीवन इस जगत में वस्तुतः जिया और भोगा जाता है – स्वयं तथा अन्य के द्वारा। यह जीवन जब कल्पना द्वारा पुनर्रचित होता है, तब उस पुनर्रचित जीवन में, तथा वास्तविक जगत क्षेत्र में जिए और भोगे जाने वाले जीवन में, गुणात्मक अंतर उत्पन्न हो जाता है। पुनर्रचित जीवन जिए और भोगे गए जीवन में सारतः एक होते हुए भी स्वरूपतः भिन्न होता है।"[85] यह भिन्नता जायसी के यहाँ भी देखी जा

[83] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 144, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[84] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 196, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[85] कामायनी : एक पुनर्विचार – गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. सं. – 10, बारहवाँ संस्करण – 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सकती है। जायसी का मूल्यांकन गार्सा-द-तासी से लेकर अब तक अनेक रूपों में चला आ रहा है। इस मूल्यांकन में जो स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मिला वह स्थान न शुक्लपूर्व किसी आलोचक को मिला और न ही किसी शुक्लोत्तर आलोचक को। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियों की दृष्टि फारस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखने वाली होती है। इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं।"[86] जायसी को इस भांति परखने का कार्य आचार्य शुक्ल ही कर सकते हैं कोई अन्य आलोचक नहीं। शुक्ल जी ने जिस गहनता के साथ 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका लिखी है वह केवल हिंदी साहित्य को समझने लिए नहीं बल्कि संस्कृति के इतिहास को समझने के लिए मजबूर करती है। इस संबंध में रामविलास शर्मा ने लिखा है कि, "शुक्ल जी ने यह भूमिका केवल साहित्य के विद्यार्थियों के लिए नहीं लिखी। उसमें जायसी के भूगोल, ज्योतिष, इतिहास आदि की जानकारी की चर्चा उन सब लोगों के लिए भी शिक्षाप्रद होगी जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास में दिलचस्पी रखते हैं।"[87]यह शुक्ल जी के आलोचना की शक्ति है जो किसी भी कवि को समग्रता में देखने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास अब प्रायः कम दिखाई पड़ता है। आज भी आलोचना में कोई सहमत या असहमत होता भी है तो वह आचार्य शुक्ल से ही होता है। कुछ तथ्यों को छोड़ दिया जाए तो शुक्ल जी आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस समय में थे।

[86] त्रिवेणी – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 51, संस्करण – 2008, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

[87] आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना – रामविलास शर्मा, पृ. सं. – 77, चौथा संस्करण – 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

चौथा अध्याय

'जायसी ग्रंथावली' के प्रमुख संपादक और उनकी आलोच्य-दृष्टि

4.1 भूमिका

4.2 माताप्रसाद गुप्त

4.3 वाशुदेवशरण अग्रवाल

4.4 मनमोहन गौतम

4.5 कन्हैया सिंह

4.6 निष्कर्ष

4.1 भूमिका

ऐसा माना जाता है कि साहित्य मनुष्य को संकुचित क्षेत्र से निकालकर एक वृहद् मैदान, व्यापक फ़लक प्रदान करता है। साहित्य का यह व्यापकत्व उसके समय एवं समाज से अंतर्संबंधित होता है। हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष से ऊपर का है। ऐसे में हिंदी साहित्य की कृति या रचनाओं का सुरक्षित रह पाना बहुत ही मुश्किल है। हिंदी साहित्य के इतिहास में जिस काल को सर्वप्रथम सर जार्ज़ अब्राहम ग्रियर्सन ने 'स्वर्णकाल' की उपाधि से विभूषित किया उस काल का साहित्य आज उसी रूप में उपलब्ध नहीं है जिस रूप में उस समय था। राजकीय संरक्षण के अभाव में तत्कालीन साहित्य का रख – रखाव ठीक ढंग से नहीं हो सका। इसका सबसे घातक परिणाम यह हुआ कि एक तरफ जहाँ विभिन्न रचनाकारों के संबंध में अनेक मत – मतांतर उपस्थित हुए वहीं उनकी रचनाओं का बहुत कुछ प्रक्षिप्त माना जाने लगा। चूंकि भक्तिकालीन काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी गेयता रही है। इस कारण से लोगों ने अपनी सुविधानुसार रचनाओं की प्रकृति जाने बिना उसकी शब्द – योजना एवं प्रकृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन कर दिये। इस तरह के परिवर्तन प्रायः किसी सोची समझी योजना के तहत नहीं किया गया। इसके कई सारे उदाहरण सिद्ध – नाथ कवियों से लेकर संत कवियों तक प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति सूफी कवियों के यहाँ भी दृष्टिगोचर होती है। चूंकि सूफ़ी कवियों ने सिद्धों एवं संतों की बानी से अलग अपनी भाषा एवं शैली ईजाद की थी अतः उनके यहाँ शैलीगत तो नहीं बल्कि विचारगत एकरूपता कहीं – कहीं दिखाई पड़ती है।

सूफ़ी कवियों में जायसी का स्थान अग्रणी है। उन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा है। उनके रचे हुए साहित्य का अभी एक बड़ा भाग ऐसा भी है जो प्रकाशित नहीं हो पाया है। जिन लोगों ने जायसी की रचनाओं के संपादन एवं संकलन का कार्य किया है उन्होंने इस बात को प्रमुखता से रेखांकित किया है। जायसी के सबसे महानतम ग्रंथ 'पद्मावत' के संबंध में अनेक आचार्यों एवं इतिहासकारों ने चिंतन – मनन किया। इस चिंतन को उन्होंने ठीक ढंग से प्रस्तुत भी किया है। जायसी के संबंध में सबसे पहला काम पं. सुधाकर द्विवेदी एवं सर जार्ज़

अब्राहम ग्रियर्सन ने किया है। उसके बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' मील का पत्थर साबित हुई। लेकिन उसमें चिंतन एवं मनन की गुंजाइश बनी रही। इस चिंतन की परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय डॉ. माताप्रसाद गुप्त जी को है। उन्होंने 'पद्मावत' का पाठ – संशोधन तो किया ही उसकी भूमिका भी लिखी। चूँकि आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली' के संपादन में उसकी बहुत विस्तृत भूमिका लिखी है उस परंपरा के लोग तो यह भी मानते हैं कि वैसी भूमिका आज तक नहीं लिखी गई। बहरहाल गुप्त जी ने कुछ महत्त्वपूर्ण बातों की तरफ इशारा किया है जिससे 'पद्मावत' को समझने की एक व्यापक दृष्टि प्राप्त होती है। माताप्रसाद गुप्त जी ने 'पद्मावत' का रचना – समय से संबंधित विभिन्न मतभेदों को उठाया है और उसे एक सम्यक् दृष्टिकोण एवं तर्कसंगत पृष्ठभूमि प्रदान करते हुए व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। उन्होंने 'पद्मावत' के आधार एवं राजस्थान में उससे जुड़ी कथाओं की चर्चा व्यापक ढंग से की है जिससे यह प्रतीत होता है कि जायसी ने भारतीय समाज के पारंपरिक एवं ऐतिहासिकता के मेल से अपना काव्य रचा है। उसमें फारसी सूफी कवियों की भांति केवल कोरी कल्पना एवं दर्शन का बलात् आरोपण नहीं है। 'पद्मावत' में उल्लिखित जीवन – दर्शन से संबंधित विषयों की चर्चा उन्होंने इस संपादित ग्रंथ की भूमिका में की है। इसके बाद वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पद्मावत' की संजीवनी व्याख्या प्रस्तुत की। इसके माध्यम से उन्होंने माताप्रसाद गुप्त के पाठ – संशोधन एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पाठ से कहीं – कहीं अपनी असहमति व्यक्त करते हुए उसे पुनः संशोधित करने का उपक्रम किया है।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पद्मावत' की अर्थ सहित व्याख्या प्रस्तुत की है। उनकी महत्ता इस बात में है कि उन्होंने 'पद्मावत' की हस्तलिखित प्रतियों के सहारे उतने ही परिश्रम एवं तल्लीनता से इस कार्य को किया जितनी तल्लीनता से माताप्रसाद गुप्त जी ने किया था साथ ही इसकी तथ्यसंगत व्याख्या प्रस्तुत की। 'पद्मावत' का संपादन तो पहले भी हो चुका था लेकिन उसके अर्थ – विस्तार एवं व्याख्या की आवश्यकता लगातार महसूस की जा रही थी। बेशक इस आवश्यकता की पूर्ति वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित 'पद्मावत' से हुई। इन दोनों लोगों ने जो कार्य किया उसी के आधार पर आगे के संपादकों ने अपनी सीमा में उस पाठ का मूल्यांकन, संशोधन एवं उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। इस दृष्टि से यह कार्य जायसी की रचनाओं के पाठ – निर्धारण के संबंध

में बहुत कारगर सिद्ध हुआ। इसके पश्चात मनमोहन गौतम ने 'जायसी ग्रंथावली' का संपादन छात्रों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया जिसमें इन्होंने 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'महरी बाईसी', 'चित्ररेखा' एवं 'मसलनामा' का पाठ प्रस्तुत किया है। इन्होंने इस संग्रह में माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'पद्मावत' को आधार के रूप में लिया है और उसकी टीका प्रस्तुत की है। इसके अलावा इन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा 'पद्मावत' महाकाव्य का खंडों में विभाजन वाली पद्धति को अपने संपादित ग्रंथ में लागू किया। 'पद्मावत' के अलावा किसी अन्य रचना की टीका इन्होंने प्रस्तुत नहीं की है और न ही उसकी व्याख्या। 'पद्मावत' से संबंधित वाद – विवाद का उल्लेख इन्होंने इस संकलन की भूमिका में किया है। 'पद्मावत' एवं सूफी काव्य परंपरा के संबंध में चिंतन के जितने भी आयाम उस समय तक सामने आ चुके थे, उनका मूल्यांकन करते हुए तटस्थ दृष्टि से अपना मत व्यक्त किया है। अंत में कन्हैया सिंह द्वारा संपादित 'पदुमावति' को इस अध्याय में शामिल किया गया है। उन्होंने इस ग्रंथ के नामकरण के कुछ मूलभूत आधार को प्रस्तुत करते हुए सूफ़ी काव्य परंपरा का उल्लेख किया है और इस नाम की सार्थकता को प्रकट किया है। इन्होंने भी पाठ – संशोधन का कार्य किया है। जायसी की देशज भाषा को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने के साथ – साथ उसके सूक्ष्म विवेचन की तरफ पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। लेकिन इन्होंने 'पद्मावत' की आलोचना के संबंध में बहुत कम लिखा है। इन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में संपादन – विधि तथा उससे जुड़ी तमाम तरह की दिक्कतों को व्याख्यायित किया है। पाठ संपादन के लिए इन्होंने माताप्रसाद गुप्त का ही सहारा लिया है। पाठ उसी तरह से रखे गए हैं जिस तरह से मनमोहन गौतम द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' में (आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'पद्मावत' में खंडों में विभाजित पद्धति एवं माताप्रसाद गुप्त द्वारा संख्या अनुक्रम पद्धति) रखा गया है।

इस अध्याय में जायसी ग्रंथावली के प्रमुख संपादकों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। चूँकि इन संपादकों ने एक बनी – बनाई पद्धति से अलग हटकर जायसी के ऊपर सूफ़ी परंपरा एवं भारतीय चिंतन परंपरा के प्रभाव और उनके काव्य – विवेचन को प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। अतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद जायसी संबंधी चिंतन की परंपरा का मूल्यांकन अतिआवश्यक लगता है। यह देखना आवश्यक है कि

जिस दृष्टिकोण से ग्रियर्सन एवं शुक्लपूर्व आलोचकों एवं इतिहासकारों ने तथा आचार्य शुक्ल ने जायसी का मूल्यांकन एवं विवेचन किया है उनके ग्रन्थों का संपादन किया उसका विकास आगे के जायसी ग्रंथावली के संपादकों में किस रूप में दिखाई देता है ?

4.2 माताप्रसाद गुप्त

भक्तिकालीन साहित्य का पाठ निर्धारण कई दृष्टियों से बहुत जटिल एवं दुरूह कार्य रहा है। आज उस युग के रचनाओं की प्रति यदि कहीं उपलब्ध भी है तो क्षत – विक्षत या उसके पाठ में ऐसा घाल – मेल हो गया है कि मूल पाठ की पहचान ही असंभव है। ऐसी स्थिति में पाठ – निर्धारण या उनकी रचनाओं के संपादन की कठिनाई का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। चूँकि गुप्त जी के पाठ निर्धारण के पहले दो महत्त्वपूर्ण कार्य हो चुके थे जिससे उसकी दुरूहता कुछ कम हो गई थी। आरंभ में इन्होंने 'जायसी ग्रंथावली' नाम से संशोधित पाठ का संपादन किया। यह हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। इस संपादन के पश्चात् उन्होंने अर्थ की महत्ता की दृष्टि से, उच्चतम शिक्षा में 'पद्मावत' के अध्ययन की अनिवार्यता की दृष्टि से इसका पुनर्संपादन का कार्य बारह वर्ष बाद किया। इस संबंध में प्रकाशकीय टिप्पणी में लिखा गया है कि, "इधर जब से हिंदी – साहित्य की उच्चतम कक्षाओं में जायसी के 'पद्मावत' का अध्ययन अनिवार्य महसूस किया जाने लगा है, हिंदी के विद्वानों का ध्यान उसके रचना – काल, अर्थ – प्रसंग, पाठ – निर्धारण की वैज्ञानिक उपलब्धि, ग्रंथ की मूलभूत संवेदना और कथा की ऐतिहासिक स्थिति के निर्णय की ओर आकर्षित हुआ है। ... इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए डॉ. गुप्त ने प्रस्तुत ग्रंथ के पुनर्संपादन के साथ ही ग्रंथ के रचनाकाल, कथा – प्रसंग और उसकी ऐतिहासिकता के बारे में, आरंभ में एक लंबी भूमिका दी है।"[1] यह संक्षिप्त टिप्पणी इस बात को प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करती है कि गुप्त जी ने तत्कालीन मांग को देखते हुए अपने द्वारा संपादित पुस्तक 'जायसी ग्रंथावली' को पुनर्संपादित करने का कार्य किया। यह सर्वविदित है कि उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति से जायसी की रचनाओं का संपादन किया है

[1] पद्मावत – सं. माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशकीय, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963. भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

। उस समय में ही नहीं बल्कि उनका वह कार्य आज के समय में भी उतना ही प्रासंगिक बना हुआ है जितना आज से पचपन साल पहले बना हुआ था। जिस भूमिका की बात टिप्पणी में कही गई है उसी में जायसी के रचनाओं की एक संक्षिप्त आलोचना प्रस्तुत की गई है।

'जायसी ग्रंथावली' के संपादन के पश्चात् 'पद्मावत' का संपादन माताप्रसाद गुप्त जी ने अपने सुधी जनों के सुझाव से किया है। चूँकि ग्रंथावली के संपादन के पश्चात् उन्होंने 'पद्मावत' संबंधी लगातार कुछ लेख लिखे जो विभिन्न पत्र – पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। ये लेख पाठकों को बहुत ही रुचिकर लगे जिसके कारण पाठकों ने उनको इन लेखों को संग्रहीत करने का सुझाव दिया। इस सुझाव को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पुनर्संपादन का कठिन कार्य किया। इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि, "इन प्रयासों के होते हुए भी मुझे यथेष्ट संतोष न हुआ, और मैंने एक लेख – माला प्रकाशित करनी प्रारम्भ की, जिसको देखकर मेरे कुछ मित्रों ने राय दी कि 'पद्मावत' की अपनी व्याख्या मैं ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करूँ। प्रस्तुत कृति उसी सुझाव का परिणाम है।"[2] यह जरूरी भी था क्योंकि ज्ञानपिपासु की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह बंधे – बंधाए ज्ञान से संतोष नहीं कर पाता है। वह हमेशा नए तथ्यों एवं समस्याओं से जूझता रहता है। इसके अपवाद स्वयं माताप्रसाद गुप्त जी भी नहीं थे। आलोचक अथवा व्याख्याकार की मुख्य चिंता उस रचना के निहित भाव को बचाने की होती है जिसकी वह व्याख्या अथवा आलोचना करता है। चूंकि इसके माध्यम से किसी भी रचना का रूप निखर कर पाठक के सामने प्रस्तुत होता है इसलिए व्याख्याकार की एक गलती संदर्भित कृति को निम्नतम दर्जा दिला सकती है। इस तरह की सूक्ष्म बारीकियों का ख्याल करते हुए उन्होंने इसका पाठ संशोधन एवं व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है कि, "मेरी व्याख्या भी अन्य व्याख्याओं से किंचित भिन्न पद्धति पर की हुई मिलेंगी। मैंने अर्थ में मूल के आशय की पूरी – पूरी रक्षा करने का यत्न किया है और प्रायः इस प्रकार की व्याख्या की है जो कि कवि की भाषा और भाव – विषयक सूक्ष्मताओं को अनायास ही स्पष्ट करता चले।"[3] यहाँ पहले से ही स्पष्ट रूप से बता दिया गया है

[2] पद्मावत – सं. माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशकीय, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963. भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
[3] पद्मावत – सं. माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशकीय, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963. भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

कि जायसी की प्रवृत्ति एवं उनके पाठ की मौलिकता की रक्षा करते हुए उसका पाठ – संशोधन एवं अर्थ की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

'पद्मावत' की रचना – तिथि को लेकर आरंभ से ही मत – मतांतर दृष्टिगोचर होता है। विद्वानों ने अपने अलग – अलग मतों की स्थापना की है। उस स्थापना की भिन्नता के पीछे उसका फारसी लिपि में लिखा जाना तथा क्षतिग्रस्त प्रति से उसका लिप्यांतरण किया जाना है। इस तिथि – निर्धारण के संबंध में प्रमुख रूप से दो समय का उल्लेख किया जाता है – 'सन नव सै सत्ताइस अहा' और 'सन नौ सै सैतालिस अहै' । यह विदित है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित पुस्तक 'जायसी ग्रंथावली' में 'सत्ताइस' पाठ ही स्वीकृत किया गया है जबकि माताप्रसाद गुप्त जी ने 'सैतालिस' पाठ को ज्यादा तर्कसंगत माना है। इस संबंध में उनका पाठ इस प्रकार है –

"सन नौ सै सैतालिस अहै। कथा आरंभ बैन कबि कहै।

सिंघल दीप पदुमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी।

अलाउदीं ढिल्ली सुल्तानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू।

सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिंदू तुरकहिं भई लराई।

आदि अंत जस कथ्था अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।"[4]

इस पाठ की प्रासंगिकता को उन्होंने इतिहास से जोड़ने का प्रयास किया है। इस प्रसंग में माताप्रसाद गुप्त जी ने जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' में वर्णित शाहेवक्त की प्रशंसा वाले प्रसंग का जिक्र किया है। 'पद्मावत' में इसका उल्लेख मिलता है कि जायसी ने अपने शाहेवक्त के रूप में शेरशाह, उस समय दिल्ली पर इसी का आधिपत्य था, को याद करते हैं और उसे आशीष भी देते हैं।

"सेरसाहि ढिल्ली सुल्तानू। चारिउ खंड तपइ जस भानु।

[4] वही, पृ. सं. - 86

....

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज।

पातसाहि तुम्ह जग के जग तुम्हार मुहताज॥"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि शेरशाह को आशीर्वाद देता है और कहता है कि आप युगों – युगों तक राज करें, जनता आपकी मुहताज है। तात्पर्य यह है कि शेरशाह उस वक्त दिल्ली का सुल्तान था। शेरशाह के दिल्ली के सुल्तान बनने की तिथि से जोड़कर माताप्रसाद गुप्त जी ने उस ग्रंथ की रचना तिथि को निर्धारित किया है। उन्होंने लिखा है कि, "हम देख चुके हैं कि कवि शेरशाह की प्रशंसा दिल्ली के सुल्तान और शाह – ए – वक्त के रूप में करता है। सन् 927 हिजरी में शेरशाह एक साधारण जागीरदार – मात्र था। शक्ति – संचय करते – करते उसने सन् 946 हिजरी में चौसा में हुमायूँ को पराजय दी और तदन्तर उसने कन्नौज में फिर हुमायूँ को पराजित किया। इस दूसरी पराजय के बाद हुमायूँ जब इस देश को छोड़कर भागा है, तब शेरशाह दिल्ली का सुल्तान हुआ है। इसलिए, 927 और 945 की तिथियाँ संभव नहीं हैं।"[6] शेरशाह की सुल्तान के रूप में प्रशंसा तब तक संभव नहीं थी जब तक हुमायूँ दिल्ली में अपना आधिपत्य जमाए बैठा था। शेरशाह द्वारा हुमायूँ को पराजित करने वाली घटना का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध है जो माताप्रसाद गुप्त जी के कथनों की पुष्टि प्रदान करता है। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार शेरशाह ने हुमायूँ को सन् 1540 में पराजित किया था, "जब हुमायूँ ने शेरशाह को दंडित करने के लिए बंगाल पर आक्रमण किया तो बहुत देर हो चुकी थी। बंगाल शेरशाह के हाथों में जाता देख हुमायूँ ने चुनार को घेरकर 1538 ई. में उसे जीत लिया। लापरवाही एवं समय से निर्णय न लेने की आदत के कारण चौसा के युद्ध (1539 ई.) में हुमायूँ शेरशाह से पराजित हुआ और 1540 ई. में बिलग्राम (कन्नौज) के युद्ध में शेरशाह ने हुमायूँ को अंतिम रूप से पराजित कर दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर लिया (1540)।"[7] यदि हम इसका आंकलन

---

[5] पद्मावत – सं. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. – 78, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963. भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

[6] वही, पृ. सं. – 2

[7] भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास – डॉ. हुकुमचंद जैन एवं कृष्ण गोपाल शर्मा, भाग – द्वितीय, चतुर्थ संस्करण – 2013, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ आकदमी, जयपुर

करें तो 947 हिजरी वाला समय इतिहास के ज्यादा करीब तथा तर्कसंगत प्रतीत होता है। यह ऐतिहासिक प्रमाण हुमायूँ के दिल्ली से बेदखल होने तथा शेरशाह का दिल्ली पर अपना आधिपत्य जमाने की तिथि को प्रस्तुत करता है।

'पद्मावत' के रचना – समय के निर्धारण के संबंध में दूसरी परंपरा यह मानती है कि इस ग्रंथ के कुछ थोड़े से पद्य पहले ही लिखे जा चुके थे, ग्रंथ लगभग दो दशक बाद पूरा किया गया। तिथि निर्धारण के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "पद्मावत की कथा के प्रारम्भिक वचन आरंभ बैन कवि ने सन् 927 हिजरी (सन् 1520 ई.) के लगभग में कहे थे। पर ग्रंथारंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासनकाल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात् सन् 1540 ई. से हुआ था। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो 1520 ई. में ही बनाए थे, पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया।"[8] इसमें बड़ी दिक्कत है कि यह अनुमान पर ज्यादा आधारित है जबकि 947 हिजरी वाला समय ऐतिहासिक प्रमाणों से मेल तो खाता ही है साथ ही तर्कसंगत भी प्रतीत होता है। यह अनुमान इसलिए भी ज्यादा तार्किकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है क्योंकि उसमें कहीं यह संकेत नहीं किया गया है कि वह ग्रंथ कब पूरा हुआ, उस ग्रंथ के कौन से पद्य पहले लिखे गए और कौन से बाद में। इसी तरह के कुछ मूलभूत सवालों को माताप्रसाद गुप्त जी ने भी उठाया है। उन्होंने लिखा है कि, "प्रश्न यह उठता है कि यदि कवि ने 927 की आरंभ – वचन की तिथि दी, तो उसने शाह – ए – वक्त के रूप में तत्कालीन सुल्तान का उल्लेख क्यों नहीं किया, और यदि रचना को पूरा 'आरंभ – वचन' के 18 – 20 वर्ष बाद शेरशाह के शासन – काल में किया तो रचना की समाप्ति – तिथि का उल्लेख उसने क्यों नहीं किया ? कवि ने यह भी कहीं नहीं कहा है कि रचना को पूरा करने में उसे 18 – 20 वर्ष लगे।"[9] इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि जब तक कोई मजबूत एवं तार्किक प्रमाण नहीं मिल जाता तब तक इस अनुमान को मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

[8] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 21, प्रथम संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[9] पद्मावत – सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. – 02, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963, भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

'पद्मावत' के संबंध में यह प्रश्न बार – बार उठाया जाता है कि यह रचना कितनी ऐतिहासिक है और कितनी काल्पनिक। इस संबंध में एक बहुप्रचलित उक्ति का सहारा लगभग सभी लेते हैं कि 'इसका पूर्वार्द्ध काल्पनिक है तथा उतरार्द्ध ऐतिहासिक'। लेकिन केवल इतना कह देने से उसका मूल्यांकन पूरा नहीं होता है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी से पहले कहानी के रूप में जनसाधारण के बीच प्रचलित चली आती, विशेषतः अवध में, 'पद्मिनी रानी और हीरामन सुए' का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है कि, "हमारा अनुमान है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्यौरों की मनोहर कल्पना करके, इसे काव्य का सुंदर रूप दिया है।"[10] यह अनुमान उस रचना को समझने में ज्यादा मददगार साबित हुआ। इन्होंने यहाँ केवल एक कहानी का ही जिक्र किया है जो अवध प्रांत में प्रचलित है। लेकिन इससे प्रेरित होकर माताप्रसाद गुप्त जी ने इसे ठीक ढंग से खंगालने का प्रयास किया। इस क्रम में उन्होंने राजस्थान में प्रचलित कहानियों का अन्वेषण किया। उन्होंने दो कहानियों का जिक्र विस्तार से किया है – 1. हेमरतन लिखित 'गोरा बादल री चउपई' और 2. जटमल कृत 'गोरा बादल री बात'। 'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध भाग की कल्पना को लोक परंपरा से जोड़कर देखने के लिए उन्होंने इन कहानियों के माध्यम से एक दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने लिखा है कि, "सामान्यतः यह समझा जाता रहा है कि 'पद्मावत' की कथा का पूर्वार्द्ध कल्पित है, जिसमें हीरामन सुए की कहानी लोक परंपरा से लेकर जोड़ दी गई है। इन कृतियों से ज्ञात होगा कि पूर्वार्द्ध भी जायसी की कल्पना नहीं है, वह उन्हें राजस्थान की परंपरा से प्राप्त हुआ है, यह अवश्य है कि उसे अपनी प्रेम – पद्धति की मान्यताओं के अनुसार उन्होंने सर्वथा एक प्रेम गाथा का रूप दे दिया है। उत्तरार्द्ध के संबंध में इसी प्रकार यह समझा जाता रहा है कि उसका आधार इतिहास है, किन्तु इन कृतियों का सार देखने पर ज्ञात होता है कि उसका आधार भी राजस्थानी परंपरा है, यह अवश्य है कि उसे एक प्रेम – प्रधान जीवन – गाथा का रूप देने का श्रेय जायसी को है।"[11] यहाँ से 'पद्मावत' के संदर्भ में एक नयी परंपरा तथा एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है जिसके सहारे आगे कुछ आलोचकों ने इसे समझने एवं देखने का प्रयास किया है।

---

[10] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 36, प्रथम संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[11] पद्मावत – सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. – 5 – 6 , प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963, भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

राजस्थान के जिन दो ग्रन्थों की चर्चा हुई है उसमें एक बात दोनों में लगभग एक सी है कि इन दोनों ग्रन्थों में राजा रत्नसेन की हत्या एवं पद्मावती के सती होने का जिक्र नहीं किया गया है। इसमें गोरा और बादल को बहुत ही साहसी, कर्मठ एवं स्वामीभक्त दिखाया गया है। आगे की कथा जायसी ऐतिहासिक ज्ञान एवं श्रुति परंपरा के मिश्रण से बुनते चले जाते हैं। इन कथाओं में एक और बात खास है जो हमें जायसी के 'पद्मावत' में नहीं मिलती है वह यह कि नागमती का पुत्र वीरभान भी है। जायसी ने कहीं भी वीरभान का ज़िक्र नहीं किया है जबकि इन कथाओं में उसका उल्लेख केवल एक ही जगह आता है जब अलाउद्दीन राजा को बंधक बना लेता है और इसके बदले वह पद्मावती की मांग करता है। उस समय वह पद्मावती को अलाउद्दीन के पास भेजने का फैसला करता है और अपनी माँ को इस सौत से मुक्ति दिलाने की सोचता है। कुल मिलाकर उसका चरित्र कुटिल एवं कपटी किस्म का दोनों गाथाओं में दिखाया गया है। चूँकि लोक की अपनी एक परंपरा होती है जिसमें वह अपने प्रिय (नायक) को कभी मरते हुए नहीं देखना चाहता है इसलिए वह उसके भीतर किसी विशेष शक्ति अथवा अवतार के रूप का दर्शन करता है, उसे आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली सिद्ध करता है। इस परंपरा का निर्वाह इन कथाओं में पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि जायसी भी इसी परंपरा के कारण ही पद्मावती का सती हो जाना अथवा उसका अग्नि स्नान का वर्णन करते हैं।

मध्यकालीन समाज एक तरह से मानसिक जकड़बंदियों से मुक्त नहीं हो पाया था। एक तरफ सामंतवाद का बोलबाला था तो दूसरी तरफ धार्मिक अस्थिरता का। यह स्थिति न केवल भारत की थी वरन इससे पूरा संसार जूझ रहा था। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का दायित्व भी कुछ अधिक व्यापक हो गया था। उनके चिंतन के केंद्र में ऐसी जनता थी जो बिलकुल अशांत एवं निराश थी। इसलिए उनका काव्य जितना सामंतवाद के जकड़न से मुक्ति का आख्यान है उतना ही मानसिक पक्ष को एक सुविचारित चिंतन पद्धति प्रदान करने का माध्यम भी है। जायसी भी अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से वाकिफ थे। उनकी रचना 'पद्मावत' के संबंध में माताप्रसाद गुप्त जी ने लिखा है कि, "जायसी ने 'पद्मावत' की रचना एक विशिष्ट जीवन – दर्शन के प्रतिपादन के लिए की है।"[12]

[12] पद्मावत – सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. –23, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963, भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

यह जीवन – दर्शन उनके जीवन में भरे निराशा के भाव को बहुत दूर तक प्रभावित करता है। चूँकि 'पद्मावत' एक विशाल महाकाव्य है इसलिए इसमें किसी एक जीवन – दृष्टि अथवा किसी एक मत और सिद्धांत की खोज सर्वथा निराशाजनक होगी। इसमें विभिन्न दार्शनिक मत एवं सिद्धांतों का समावेश पाया जाता है। माताप्रसाद गुप्त जी ने 'पद्मावत' में वर्णित प्रेम के विभिन्न सोपानों का अंकन किया है। जायसी ने प्रेम मार्ग का अंकन करते हुए बताया है कि जायसी का प्रेम मार्ग जीवनोत्सव का मार्ग है। इसका प्रमाण जायसी के यहाँ उपलब्ध है –

"सुऐ कहा मन समुझय राजा। करत पिरीत कठिन है काजा।
तुम्ह अबहीं जेईं घर पोईं। कँवल न बैठि बैठ हहु कोईं।
जानहि भँवर जो तेहि पँथ लूटे। जीव दीन्ह ओ दिए न छूटे।
कठिन आहि सिंघल कर राजू। पाइअ नाहिं राज के साजू।
ओहि पंथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती तपा सन्यासी।
भोग जोरि पाइत वह भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू।
तुम्ह राजा चाहहु सुख पावा। जोगहि भोगहि कत बनि आवा।
साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौ लहि साध न तप्प।
सोई जानहि बापुरे सीस जौ करहिं कलप्प॥"[13]

यह मार्ग बहुत कठिन है। इसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की यतनाओं से गुजरना पड़ता है। माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि, "जायसी ने इसे अपनी कथा योजना से भी प्रमाणित किया है। योगी, यति, तपी और संन्यासी बनकर रत्नसेन तो पद्मावाती को प्राप्त कर लेता है किन्तु अलाउद्दीन अपने समस्त राजकीय वैभव की सहायता से भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रेम और सौन्दर्य लोभ में यही अंतर है।"[14] यह उस युग की चिंतन पद्धति को भी प्रदर्शित करता है कि उस युग के कवियों ने अर्थ की सत्ता का पक्ष न लेकर हृदय की भावना को महत्त्व दिया है।

[13] पद्मावत – सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. –178, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963, भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
[14] पद्मावत – सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. सं. – 31, प्रथम संस्करण – नवंबर, 1963, भारती – भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

'पद्मावत' की विरह – वेदना के संबंध में लगभग सभी आलोचकों ने लिखा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में जिन प्रश्नों से दो चार होते हैं उनको माताप्रसाद गुप्त जी ने अपनी स्थापनाओं में प्रमुखता से शामिल किया है। उनके प्रेम – संदेश के कुछ परिणामों की चर्चा उन्होंने की है जिसमें लिखा है कि, "जायसी की कथा प्रतीकात्मक नहीं है ; जिस प्रेम का विकास उन्होंने रत्नसेन – पद्मावती के बीच किया है वह जीव और ईश्वर के प्रेम का प्रतीक रूप नहीं है। वह विशुद्ध रूप में पुरुष और नारी का प्रेम है, जो परमेश्वर की ज्योति लेकर अवतीर्ण हुआ है।"[15] इन्होंने 'पद्मावत' को विशुद्ध लौकिक धरातल पर मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। यह उस समय की प्रवृत्ति के अनुकूल ही था। कई ऐसे प्रसंग भी हैं जहाँ पद्मावती को परमात्मा के रूप में व्याख्यायित करना संभव नहीं है।

4.3 वासुदेवशरण अग्रवाल

'पद्मावत' के पाठ निर्धारित होने के उपरांत मुख्य समस्या उसके अर्थ अथवा व्याख्या की थी। इस समस्या को देखते हुए वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने इस ग्रंथ की संजीवनी व्याख्या/भाष्य लिखा। इस व्याख्या के क्रम में उन्होंने 'पद्मावत' के कुछ गूढ़ प्रसंगों का पाठ-निर्धारण भी किया। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं माताप्रसाद गुप्त के पाठ से कई जगह अपनी असहमति व्यक्त की है। पाठ निर्धारण का कार्य बहुत जटिल एवं दुरूह होता ही है, इसमें असहमति की अत्यधिक गुंजाइश होती है बशर्ते कि वह नया पाठ रचनाकार से ठीक ढंग से जुड़ता हो। जायसी को मौलिक ढंग से पाठक के समक्ष उपस्थित करना ही संपादक ने अपना कर्तव्य माना है। उन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत की इस टीका से हमारा प्रथम और अंतिम कर्तव्य जायसी के शब्दों और अर्थों का स्पष्टीकरण ही रहा है। प्राचीन यूनानी कवि सोफ़ोक्लीस के एक संपादक ने उसके काव्य के संबंध में कहा है कि उसका यथार्थ शब्दानुवाद ही उसकी सबसे अच्छी व्याख्या संभव है। जायसी के विषय में भी यही उक्ति चरितार्थ होती है। जायसी की प्रतिभा से उद्भूत वर्णन पाठकों के मन पर स्वयं अपना चित्र बनाते हैं, किन्तु उनका सच्चा आधार

[15] वही, पृ. सं. – 43

कवि के मूल शब्दों का ठीक – ठीक अर्थ ही हो सकता है। उस अर्थ तक पहुँचने की दिशा में ही यह प्रयत्न है।"[16] यह स्पष्ट है कि संपादक ने 'पद्मावत' के अर्थ के मर्म तक पहुँचने के लिए इस प्रकार का जटिल कार्य करने का निर्णय लिया। जिस तरह से आज के समाज अथवा साहित्य जगत में अवधी भाषा को जानना एवं समझना कठिन हो गया है उसे देखते हुए इनका यह कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगता है। हालात अब यह हो गये हैं कि साहित्य से जुड़े व्यक्ति भी भक्तिकाल की तरफ ध्यान केंद्रित करना मुनासिब नहीं समझते हैं, केंद्र में आधुनिक साहित्य है। ऐसे समय में जायसी की काव्य दृष्टि को समझने के लिए यह भाष्य अत्यधिक प्रासंगिक लगता है।

आरंभ से ही हिंदी आलोचना जगत में जायसी का मूल्यांकन 'पद्मावत' को केंद्र में रखकर किया गया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी संपादन के लिए 'पद्मावत' का ही चयन किया। इस संपादित पुस्तक की भूमिका में उन्होंने जायसी की जीवन – दृष्टि एवं उनकी रचनात्मकता को भी ठीक ढंग से व्याख्यायित किया है। इस ग्रंथ के संपादन एवं पाठ – संशोधन के महत्त्व के विषय में उन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत हिंदी साहित्य का जगमगाता हुआ हीरा है। इसके बहुविध पहल और घाटों पर ज्यों – ज्यों साहित्य – मनीषियों की ध्यान – रश्मियाँ केन्द्रित होंगी त्यों – त्यों इस लक्षण – सम्पन्न काव्य – रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा।"[17] इन्हीं ज्ञान – रश्मियों की खोज तब से लेकर अब तक निरंतर जारी है। हीरा का उदाहरण दिया गया है जिससे यह स्पष्ट है कि इसे जितना तराशा जाए उतनी ही उसकी शुद्धता बढ़ती जाएगी। इसलिए भविष्य में इस क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान की संभावनाओं को उन्होंने रेखांकित किया है।

कविता केवल शब्दों का जाल नहीं है। उसमें जब तक चित्रात्मकता नहीं होगी तब तक उसका पाठक के साथ सामंजस्य बैठा पाना बहुत मुश्किल है। इस चित्रग्राही-शक्ति से संपन्न भाषा हमें जायसी के यहाँ दृष्टिगोचर होती है। जैसे -

"आइ सरद रितु अधिक पियारी। नौ कुवार कातिक उजियारी।

[16] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 06, प्राक्कथन , संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

[17] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 05, प्राक्कथन , संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

पदुमावति भै पूनिव कला। चौदह चाँद उए सिंघला।
सोरह करा सिंगार बनावा। नखतन्ह भरे सुरुज ससि पावा।
भा निरमर सब धरनि अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फूल डासू।
सेत बिछावन औ उजियारी। हँसि हँसि मिलहिं पुरुख औ नारी।
सोने फूल पिरिथिमी फूली। पिउ धनि सो बनि धनि पिउ सो भूली।
चखु अंजन दै खँजन देखावा। होइ सारस जोरि पिउ पावा।"[18]

जायसी की यह चित्रमयी भाषा की देन है कि पाठक उसकी तरफ आकर्षित होता चला जाता है। इनकी भाषा को वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने कभी संस्कृत के महाकवि बाण से जोड़ा है तो कभी अंग्रेजी के कवि ब्राउनिंग से जोड़ा है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी अत्यंत संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाण की भांति वे शब्दों में चित्र लिखने के धनी थे – चित्र भी ऐसे जिनके पीछे अर्थ का अक्षय स्रोत बहता है। ... जायसी की चित्र ग्राहिणी शक्ति का उल्लेख करते हुए अनायास अंग्रेजी कवि ब्राउनिंग का स्मरण हो आता है। वह भी कल्पना जनित चित्र की पूरी रेखाओं को मानस में प्रत्यक्ष करते हुए उसका उतना ही अंश शब्द – परिगृहीत करता था जो उसकी दृष्टि में चित्र की व्यंजना के लिए न्यूनतम आवश्यक होता।"[19] जायसी ने चित्रमयी भाषा का सहारा तो लिया है लेकिन हमेशा यह खयाल बना रहा है कि कम से कम शब्दों के द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त किया जाए। इसका निर्वाह न केवल 'पद्मावत' बल्कि उनके अन्य ग्रन्थों ('अखरावट', 'आख़िरी कलाम', 'कन्हावत' आदि) में भी हुआ है।

प्रत्येक युग की कविता में युग – बोध एवं परिवेश – बोध प्रमुखता से उभरता है। यह युग – बोध एवं परिवेश – बोध कवि के सामाजिक जुड़ाव के दायरे को व्यक्त करता है। यह जुड़ाव जितना गहरा होगा कवि की दृष्टि उतनी पैनी एवं सूक्ष्म होगी। संस्कृत के महाकवि बाण से तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "जिस प्रकार

[18] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 337, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी
[19] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 05, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

बाण के 'हर्षचरित' में सातवीं शती के भारतवर्ष का समृद्ध रूप देखने को मिलता है, उसी प्रकार सोलहवीं शती की भारतीय संस्कृति का पल्लवित रूप 'पद्मावत' में प्राप्त होता है। उस पुष्कल सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन जायसी के काव्य को विशिष्ट महत्त्व प्रदान करेगा।"[20] जायसी में चिंतन का विकास प्राचीन समय से चली आ रही भारतीय चिंतन परंपरा से हुआ है। भारतीय प्रेम संबंधी काव्य परंपरा को उन्होंने फारसी रंग में रंगकर एक नया आयाम उपलब्ध कराया। यह विभिन्न अनुशासनों में ज्ञान की आवा-जाही का प्रतीक भी है।

जायसी ने भारतीय परंपरा का निर्वाह किया है। उनके यहाँ केवल प्रेम का केन्द्रीय महत्त्व अन्य भारतीय काव्य परंपरा से अलग है अन्यथा बाकी सब उसी परंपरा का निर्वाह है जो वर्षों से चली आ रही है। यह प्रेम की परंपरा, जिसके उन्नायक के रूप में जायसी को याद किया जाता है, कोई अचानक से उत्पन्न नहीं हुई है। इसके पीछे एक सुदीर्घ चिंतन परंपरा रही है और भारतीय संस्कृति की इस परंपरा का विस्तृत अध्ययन/समझ जायसी के यहाँ दिखाई पड़ता है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि, "संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रबंध काव्यों का जो क्रम – प्राप्त आदर्श विकसित हुआ था उसी के अनुसार जायसी ने 'पद्मावत' का रूप पल्लवित किया। साथ ही फारसी के प्रेम काव्य या मसनवी कथाओं का और भारतीय प्रेम कथाओं का तो 'पद्मावत' के वास्तु – विधान और रूप – विधान पर बहुत कुछ साक्षात प्रभाव पड़ा ही। इसके अतिरिक्त सहज यानी सिद्धों की साधना चर्या, नाथ गुरुओं की योग और निर्गुण परंपरा एवं मुसलमानी संतों की सूफी परंपरा का प्रभाव भी पूरी मात्रा में जायसी पर पड़ा था। उन सबके सारभूत एवं ग्राह्य अंश को स्वीकार करते हुए जायसी ने अपने विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टिकोण का निर्माण किया जिससे उन्होंने स्वयं प्रेम-मार्ग यह उदात्त नाम दिया।"[21] इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी अपनी परंपरा से बहुत गहरे जुड़े हुए थे। इस परंपरा का क्रमिक विकास जायसी के रूप में हुआ है। यह विकास अनेक स्तरों पर दिखाई पड़ता है। नाथ एवं सिद्ध परंपरा के हठयोग साधना का विकास भी सूफियों के यहाँ हुआ है। इस विकास में सूर्य और चंद्र के प्रतीक का प्रयोग सूफी काव्य में प्रचुर मात्र में हुआ है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि, "सिद्धों में सूर्य और चंद्र का बहुत प्रचार था। उसी को सूफियों ने स्वीकार करके और

[20] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 06, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी
[21] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 06, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

अधिक बढ़ाया। जायसी में तो चंद्र, सूर्य का प्रतीक अर्थबोध का सबसे सुलभ और सरल माध्यम बन गया है।"[22] यह प्रतीक जायसी को परंपरागत रूप में प्राप्त हुआ था। उस प्रतीक को उन्होंने सूफी रंगत में रंग दिया। उन्होंने उस परंपरा को इतनी तल्लीनता के साथ अपनाया है कि उसमें विभेद की गुंजाइश नहीं बचती है। उनका सिंहलद्वीप सिद्धों की साधना स्थली के रूप में पहले से विख्यात है जहाँ सिद्ध अपनी साधना की परीक्षा के लिए जाते थे। इस साधना के क्रम में पद्मिनी नारियां उनका ध्यान भटकाने का प्रयास करती थीं। जायसी ने भी उसी सिंहलगढ़ का चुनाव किया लेकिन यहाँ पद्मिनी नारियों का चरित्र एकदम अलग है। "जायसी के हाथों में पद्मावत की लोक कथा न केवल एक पूर्णतम महाकाव्य के रूप में ढल गई बल्कि उसका पूर्वार्द्ध भाग तो सहजयान मार्ग और नाथ योगियों के मार्ग का जैसे प्रतिनिधि ग्रंथ ही बन गया जिसमें इन दोनों धाराओं के अधिक से अधिक संकेत कौशल के यथास्थान पिरो दिए गए हैं।"[23] अग्रवाल जी की यह टिप्पणी उस ग्रंथ के आंतरिक पहलुओं की व्याख्या है। यह टिप्पणी इस बात की सूचक है कि जायसी ने न केवल फारस बल्कि उससे कहीं ज्यादा भारतीय – पद्धति का अनुसरण अपने महाकाव्य में किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य लोक – संवेदना की गहरी समझ से ओत – प्रोत है। उन्होंने जिस लोकमानस को अपने काव्य का आधार बनाया है उसकी बारीकियों से वे बखूबी परिचित थे। 'पद्मावत' में ऐसे प्रसंग मौजूद हैं जो आज भी लोक में दिखाई पड़ते हैं। किसी यात्रा पर जाने से पहले जिस प्रकार से शुभा-शुभ का विचार आज भी लोक में विद्यमान है उसका वर्णन जायसी के यहाँ मिलता है। इस विचार में बुद्धिवाद शून्य हो जाता है।

"आगे सगुन सगुनिआँ ताका। दहिउ मच्छ रूपे कर टाका।
भरे कलश तरूनी चली आई। दहिउ लेहु ग्वालिनि गोहराई।
मालिनि आउ मौर लै गाँथें। खंजन बैठ नाग के माथे।

[22] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 40, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी
[23] वही, पृ. सं. – 44

दहिने मिरिग आई गौ धाई। प्रतिहार बोला खर बाईं।
बिर्ख सँवरिआ दाहिन बोला। बाएँ दिसि गादुर तहँ डोला।
बाएँ अकासी धोबिनि आई। लोवा दरसन आइ देखाई।
बाएँ कुरारी दाहिन कूचा। पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा।"[24]

ऐसे प्रसंग कई जगह आए हुए हैं। इन प्रसंगों के मद्देनजर वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि, "'पद्मावत' काव्य का अनुशीलन करते हुए जिस बात की गहरी छाप मन पर पड़ती है वह यह कि इसके कवि ने भारत – भूमि की मिट्टी के साथ अपने को कितना मिला दिया था। जायसी सच्चे पृथ्वी – पुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने सन्निकट थे इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है।"[25] भारतीय जन – मानस को समझे बिना उसके लोक में प्रचलित तमाम तरह के टोटकों एवं उस समाज के रीति – रिवाज और संस्कार को नहीं समझा जा सकता है। चूंकि जायसी स्वयं इस मानस के अभिन्न अंग थे अतः उन्होंने इसे बखूबी समझा है साथ ही इसका प्रयोग अपने काव्य में किया है।

जायसी की भाषा लोक को अभिव्यक्त करती है। उसमें अवधी का देसीपन प्रस्तुत हुआ है। उनकी भाषा में लोक जीवित है और इस लोक को, समाज को एवं उसकी भाषा को समझना आज भी चुनौतीपूर्ण एवं दुष्कर बना हुआ है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनके भाषायी महत्त्व को ठीक ढंग से रेखांकित किया है। इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि, "जायसी की अवधी भाषा – शास्त्रियों के लिए स्वर्ग है जहां उनकी रुचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है। मैथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है, और मराठी के लिए जो महत्व 'ज्ञानेश्वरी' का है, वही महत्त्व अवधी के लिए जायसी की भाषा का है।"[26] यह महत्त्व जायसी के चिंतन की व्यापकता को अंकित करता है। विद्यापति ने मैथिली को जिस सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया उसी तरह का कार्य जायसी ने किया। जायसी ने अवधी भाषा में 'पद्मावत' की रचना की, यह उस समय के लिए बड़ी बात थी। इसके दो पहलू थे –

[24] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 130, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी
[25] वही, पृ. सं. – 07
[26] पद्मावत – सं. (व्याख्याकार) श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 28, संस्करण – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

पहला यह कि प्रायः सभी सूफी कवियों ने अपने काव्य की रचना अवधी भाषा में की और दूसरा यह कि जिस लोकमानस की कथा को उन्होंने अपने महाकाव्य के लिए चुना था उसकी अभिव्यक्ति भी उसी भाषा में हो।

4.4 मनमोहन गौतम

डॉ. मनमोहन गौतम ने 'जायसी ग्रंथावली' के नाम से उनकी छः रचनाओं (पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, महरि बाईसी, चित्र रेखा और मसलनामा) का संपादन किया है। इस संपादन की विशेषता यह है की इसमें केवल 'पद्मावत' की टीका लिखी गई है बाकी अन्य ग्रन्थों का केवल संकलन किया गया है। यह टीका 'पद्मावत' के अध्येताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई है। इस टीका की महत्ता के संबंध में विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि, "डॉ. मनमोहन गौतम ने जायसी के विख्यात महाकाव्य पद्मावत की टीका छात्रों की कठिनाई को दृष्टि में रखकर लिखी है। टीका की सफलता इसी में है कि आवश्यकता से अधिक वाग्जाल का विस्तार न हो और उपादेयता का तिरस्कार भी न किया जाए। ... डॉ. गौतम ने टीका लिखने का उपक्रम किया है, टीका की सीमाओं में रहकर ही विषय – वस्तु पर प्रकाश डाला है। टीका के उपयुक्त ही शब्दार्थ, व्याख्या, टिप्पणी आदि का प्रयोग इस टीका शैली की विशेषता है। ... इस टीका के माध्यम से अध्यापक की सहायता के बिना भी छात्र 'पद्मावत' का अर्थ समझ सकेंगे, इसमें किसी संदेह का अवकाश नहीं है।"[27] इससे यह पता चलता है कि संपादक महोदय का लक्ष्य 'पद्मावत' के अर्थ संबंधी उलझन को दूर करना था। इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। इस समय तक आते – आते 'पद्मावत' के पाठ – संशोधन एवं भाष्य संबंधी समस्या लगभग सुलझा ली गयी थी, जरूरत केवल उसे छात्रोपयोगी बनाने की थी। इस जरूरत को इन्होंने बहुत गहराई से महसूस किया जिसके परिणामस्वरूप यह पुस्तक आज उपलब्ध है। इसकी चर्चा स्वयं संपादक ने की है। उन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत की टीका प्रस्तुत करना इस प्रकाशन का उद्देश्य रहा है। 'पद्मावत' की टीका बहुत दिनों से विद्यार्थियों की मांग रही है।"[28] इस चिंतन को उन्होंने व्यापक फ़लक प्रदान किया है।

---

[27] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 10, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

[28] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 12, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के विषय में बहुत लिखा गया है। इसे परिभाषित करने के लिए आलोचक कभी फारसी लेखकों के यहाँ जाते हैं तो कभी वेद – पुराण तक को खंगालने लगते हैं। एक परंपरा यह मानती है कि सूफ़ी कवियों ने मध्यकाल में जो साहित्य रचा वही सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य है। जबकि दूसरी परंपरा यह मानती है कि वेदों से लेकर आज तक जितनी भी प्रेमकथाएँ, नाटक इत्यादि के रूप में लिखी गईं, उन सबका वाचक 'प्रेमख्यान' शब्द है। इसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल पहली परंपरा से इत्तेफाक रखते हैं। मनमोहन गौतम ने आचार्य शुक्ल की धारणा से सहमति व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "अतः प्रेमाख्यान के सामान्यतया प्रचलित अर्थ को ग्रहण करते हुए हमारा अभिप्राय केवल उन रचनाओं से होना चाहिए जो कि मध्यकाल में सूफ़ी संतों और विचारकों के द्वारा रची गईं और जिनके प्रभाव से, बाद के, हिंदुओं ने भी प्रेमाख्यानों की रचना की।"[29] यह सर्वप्रचलित मत है कि सूफ़ी काव्य अथवा प्रेमाख्यानक काव्य की परंपरा सूफियों की रचनाओं के माध्यम से ही भारत में प्रचारित एवं प्रसारित हुई है। इस विवाद में जो दूसरी परंपरा प्रचलित है उसका मानना है कि सूफियों के यहाँ आने से पहले ही हमारे यहाँ प्रेम काव्य की रचना की जाती रही है। भारतीय पौराणिक ग्रंथों एवं संस्कृत साहित्य में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। लेकिन केवल प्रेम का वर्णन ही सूफी काव्य नहीं है। भारतीय साहित्येतिहास में जो ग्रंथ लिखे गए हैं उनका दुहरा अर्थ नहीं मिलता है जिसे सूफी कवियों की भाषा में 'इश्के हक़ीक़ी' एवं 'इश्के मजाज़ी' कहते हैं। आँख मूँद कर यह मान लेना कि उन्होंने केवल भारतीय साहित्य के पौराणिक ग्रन्थों की प्रेम कहानियों से ही अपना विषय – वस्तु ग्रहण किया है, यह तथ्य नितांत भ्रामक है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि, "सूफियों द्वारा प्रतिपादित प्रेमाख्यान की परंपरा तथा उसके पूर्ववर्ती आख्यानों में एक मौलिक अंतर है, जो कि शैलीगत ही नहीं, वस्तुगत अंतर भी है। वह है कथा के दोहरे अर्थ का समावेश, स्थूल जगत के माध्यम से सूक्ष्म ब्रह्म की अनुभूति का उपक्रम, जिसके हेतु सूफ़ी कवियों ने बड़ी उपयुक्त वस्तु का चयन किया है। वस्तु के इस द्विविधा व्यक्तित्व के मूल में प्रेम व्याप्त है और यही वह तत्व है जो सूफ़ी प्रेमाख्यानों को अपने पूर्ववर्ती आख्यानों से पृथक

[29] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 8, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

करता है।"[30] यह अंतर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। भारतीय प्रेम गाथाओं की रचना या तो शौर्य – प्रदर्शन के लिए की गयी या रूपाशक्ति के प्रभाववश।

प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा मोटे तौर पर सूफ़ी काव्य परंपरा के रूप में प्रचलित है। इस कालखंड की समय – सीमा शुक्ल जी ने कुतुबन से लेकर नूरमुहम्मद तक निर्धारित की है। जबकि मनमोहन गौतम ने इसकी लंबी परंपरा दिखाई है। उन्होंने लिखा है कि, "सूफ़ी साहित्य की धारा हिंदी साहित्य के इतिहास के तीन कालों में अबाध गति से बहती रही है। संभव है सन् 1917 के पश्चात भी कुछ प्रेमाख्यानकों की रचना हुई हो किन्तु वे उपलब्ध नहीं।"[31] इस लंबी परंपरा को दर्शाने के लिए उन्होंने इसकी सूची भी प्रस्तुत की है। चूंकि साहित्य की कोई परंपरा पूर्ण रूप से समाप्त नहीं होती है चाहे वो संतकाव्य हो, कृष्णकाव्य हो या अन्य कोई भी प्रवृत्तिमूलक खंड क्यों न हो, लेकिन इतना जरूर होता है कि उस धारा के साथ एक दूसरी धारा भी चलने लगती है जो उसके प्रभाव को मंद कर देती है। सूफ़ी कवियों के पास एक विस्तृत कैनवास था जिसके ऊपर उन्होंने अपने काव्य को फैलाया था। यह जितना लोक से जुड़ा हुआ था उतना ही उस युग की सामाजिक चेतना से। उन्होंने लिखा है कि, "सूफ़ी कवियों की रचनाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके पास लिखने के लिए विस्तृत भाव – भूमि एवं विशाल कथा – भंडार था। भाव – भूमि लोक – कथाओं और लोक – गीतों का अथाह सागर है। सूफियों ने उस भंडार में से कुछ समान रत्नों को चुनकर काव्य के नगीने में जड़ दिया।"[32] यह व्याख्या सूफ़ी कवियों के काव्य रचना हेतु विषय – वस्तु की व्यापकता को सूचित करती है। इन कवियों ने अपने उदार हृदय से इस भाव – भूमि को अपनाया था।

'पद्मावत' की कथा के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह स्पष्ट है कि जायसी ने इस ग्रंथ के लिए जिस लोक – कथा का सहारा लिया वह लोक में व्याप्त दंतकथा थी। इससे साफ जाहिर होता है कि अलग – अलग स्थानों पर इसके स्वरूप में भिन्नता जरूर मिलेगी। कहीं – कहीं कुछ लोगों ने इसे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया

[30] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 09, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[31] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 13, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[32] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 13, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

था। इस संदर्भ में मनमोहन गौतम ने लिखा है कि, "पद्मावत भी अवध प्रांत में प्रचलित "पद्मिनी और हीरामन सुग्गे की कथा" का रूपांतर है। वैसे भी पद्मावती की कथा अनेक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यों में बिखरी मिलती है। दामो कृत "लक्ष्मणसेन पद्मावती" भी इसी कथा पर आधृत प्रेमाख्यान है। उसी कथा को जायसी ने अलाउद्दीन के समय में जौहर करके मर जाने वाली चित्तौड़ की प्रसिद्ध रानी पद्मिनी के जीवन से संबंध करके "पद्मावत" की रचना की है।"[33] लेकिन इस कथा के अलावा दो और कथाओं की चर्चा माताप्रसाद गुप्त जी ने 'पद्मावत' की भूमिका में की है। इन्होंने हेमरतन लिखित 'गोरा बादल री चउपई' एवं जटमल कृत 'गोरा बादल री बात' का उल्लेख किया है जिसमें गोरा और बादल के शौर्य की गाथा प्रमुखता से वर्णित है। राजस्थान में रत्नसेन की वीरता, पद्मावती के सतीत्व और गोरा – बादल की स्वामी – भक्ति की लोकप्रिय कथा इन दोनों ग्रंथों में संकलित है। इन दोनों ग्रंथों में रत्नसेन को मारा नहीं गया है। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि लोक में प्रचलित कथाओं का नायक न कभी हारता है और न ही कभी मरता है।

यह दो टूक सत्य है कि सूफ़ी कवियों ने जिन कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाया वे हिन्दू परिवारों में प्रचलित थीं। सूफ़ी कवियों की परंपरा फारस से जुड़ती जरूर है लेकिन भारतीय सूफ़ी और फारस के सूफ़ी में कुछ मौलिक अंतर भी है। मनमोहन गौतम ने लिखा है कि, "फारसी के मसनवी प्रेमाख्यान के कथानक नितांत काल्पनिक हैं, सूफ़ी प्रेमाख्यान की भांति लोक – कथात्मक नहीं। अतः फारसी की मसनवी परंपरा इस अर्थ में हमारे यहाँ नहीं चली। यह भी स्मरण रहे कि सबकी सब लोक – कथाएँ भारतीय जीवन से, हिंदू राजन्य वर्ग के जीवन से ली गई हैं।"[34] अब इसका कारण कोई चाहे तो हिंदू जनता की सहृदयता प्राप्त करना कहे या कुछ और। लेकिन भक्तिकालीन साहित्य की यह मूल प्रवृत्ति रही है कि वह लोक – सामान्य के भाव – भूमि पर उतरकर उसके मनोजगत को अंकित करती है। यह प्रवृत्ति उस समय के जो चार स्कूल (संत काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, राम भक्ति काव्यधारा, कृष्ण भक्ति काव्यधारा) थे उन सब में पायी जाती है।

[33] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 15, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

[34] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 16, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

भक्तिकालीन कवियों ने जितना पंडित और मुल्लाओं का माखौल उड़ाया है उतना अन्य किसी काल के कवियों ने नहीं उड़ाया है। संत कवियों के यहाँ यह चेतनता प्रखर रूप में दृष्टिगोचर होती है। सूफी कवियों के यहाँ भी इसका सर्वथा अभाव नहीं है। मनमोहन गौतम ने सूफी कवियों में निहित इस भाव का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, "सूफी कवियों के काव्यों में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है। यथार्थ – दर्शन की यह परंपरा सूफी कवियों ने अपभ्रंश के चरित – काव्यों से बहुत कुछ ग्रहण की, किन्तु सूफी कवि इस क्षेत्र में अपभ्रंश कवियों से कई पग आगे हैं। सूफी कवि जनता के कवि थे। उन्होंने सामान्य जनता की भावनाओं को मुखर किया है। राजन्य वर्ग का गौरव इन कवियों की दृष्टि में जन – जीवन से तुच्छ था।"[35] जायसीकालीन समाज अनेक प्रकार के दिखावे में विश्वास करने वाला था। वर्गवाद एवं वर्णवाद अपने चरम पर था। ऐसी परिस्थिति में धार्मिकता एवं कर्मकांड के जाल बहुत कठोर हो गए थे। इस जाल के जकड़न को तोड़ने का प्रयास लगभग सभी कवियों ने अपने – अपने स्तर पर किया है। जायसी ने उस समाज में पतरा देखने वाले, दिन और मुहूर्त का विचार करने वाले के संबंध में लिखा है –

"पंडित भुलान न जानै चालू। जीउ लेत दिन पूछ न कालू॥
सती कि बौरी पुंछै पांड़े। औ घर पैठि समेटै भांड़े॥
मरि जो चलै गांग गति लेई। तेही दिन घरी कहाँ को देई॥"[36]

'पद्मावत' की ऐतिहासिकता के संबंध में आलोचकों में मतैक्य नहीं है। यह ग्रंथ जितना ऐतिहासिक प्रतीत होता है उससे अधिक लोक – कथा पर आधारित है। इसकी चर्चा माताप्रसाद गुप्त के संबंध में ऊपर हो चुकी है। मनमोहन गौतम ने लिखा है कि, "इस प्रकार मूलतः यह लोक – कथा ही है जिस पर पद्मावत से पूर्व भी रचना हो चुकी थी। किन्तु जायसी ने लोक – कथा के साथ ही साथ इसमें ऐतिहासिकता का छौंक दे दिया है। ऐसा यश लोभ से किया गया है। जायसी ने लोकप्रियता के लोभ से अपनी कथा में ऐतिहासिकता का समावेश

[35] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 19, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[36] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 16, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

किया है। यह ऐतिहासिकता नाम मात्र की है जायसी ने ऐतिहासिक तथ्यों को अत्यधिक तोड़ा – मरोड़ा है।"[37] यह साहित्यकार की स्वतन्त्रता है कि वह इतिहास को किस ढंग से अपनी रचना में प्रस्तुत करना चाहता है। यद्यपि कि इन्होंने किसी ऐतिहासिक तथ्य को अपने ढंग से पेश किया है फिर भी इस ग्रंथ की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि लोग इसे इतिहास के रूप में भी स्मरण करते हैं। आगे उन्होंने ही लिखा है कि, "कोई अन्य प्रेमाख्यानक काव्य इतना लोकप्रिय नहीं हुआ जितना कि 'पद्मावत'। कारण कि 'पद्मावत' काव्य ग्रंथ होने के साथ ही साथ इतिहास का छोर पकड़े हुए है। 'पद्मावत' की लोकप्रियता का ही परिणाम है कि उसे इतिहास की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है और लोग ऐतिहासिक तथ्यों का शोध भी इतिहास में न करके 'पद्मावत' में ही करते हैं। आज यह सर्वमान्य सी धारणा है कि टॉड, फरिश्ता और 'आईने अकबरी' तीनों के अलाउद्दीन संबंधी विवरण पद्मावत पर आश्रित है।"[38] यह इस ग्रंथ की लोकप्रियता है आज इतिहास के विद्यार्थी भी इसे प्रामाणिक मानकर अलाउद्दीन के चरित्र को समझता है।

'पद्मावत' की बुनावट और उसकी रचना एक महाकाव्य के रूप में हुई है। इसमें वो सारे औज़ार प्रयोग किए गए हैं जो किसी महाकाव्य की रचना में सहायक होते हैं। उनके प्रेम की भावधारा पूरे महाकाव्य में निरंतर अबाध गति से प्रवाहित होती रहती है। मनमोहन गौतम ने लिखा है कि, "रत्नसेन और पद्मावती, ये तो निमित्त मात्र हैं, साधन मात्र हैं, साध्य तो वह "प्रेम की पीर" है जिसको पाकर "इक मुठी छार" मानुष बैकुंठ को प्राप्त करता है। यद्यपि प्रेम तत्व का ग्रहण जायसी ने सूफी विचारधारा से किया है किन्तु समस्त पद्मावत में उन्होंने एक स्थल पर भी सूफी सिद्धांतों के प्रचार हेतु कुछ न कहा। ... व्यापक अर्थ में 'पद्मावत' एक सफल महाकाव्य है और जायसी एक सफल महाकवि।"[39] इससे ज्ञात होता है कि जायसी का काव्य तत्व कितना व्यापक और प्रभावी रहा है।

[37] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 29, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[38] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 31, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[39] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 38, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

सूफी काव्य की जब कहीं चर्चा होती है उसमें आध्यात्मिकता का पुट जरूर मिला दिया जाता है। कवि की दार्शनिकता उस काव्य में अनेक रूप में उपस्थित होती है। यह दार्शनिकता उसके मानस – बोध एवं सहज ज्ञान की व्यापकता को व्यक्त करती है। जायसी की दार्शनिकता के संबंध में मनमोहन गौतम ने लिखा है कि, "जायसी ने हिन्दू दर्शन का भी ज्ञान प्राप्त किया। उनका यह ज्ञान गंभीर अध्ययन का फल न था, सुना – सुनाया मात्र था। जायसी ने जो कुछ दार्शनिक ज्ञान प्राप्त किया उनका प्रयोग अवश्य किया। इसलिए उनका मत संकीर्ण न रहा, उसमें व्यापकता आ गई। कुतुबन, मंझन, उस्मान आदि की भांति उनकी आध्यात्मिक भावना एकाकी न रह सकी और न उनके काव्य में नीरसता आ सकी।"[40] यह उस युग की प्रवृत्ति रही है कि उस युग के लगभग विख्यात कवियों ने किसी पाठशाला में या अन्य किसी जगह पर विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की थी। ज्ञान प्राप्ति का आधार सत्संग माना जाता था। इसे जायसी के संबंध में भी दोष की तरह नहीं लिया जाता है। उनके काव्य में भी हिन्दू बनाम मुस्लिम विचारधारा का मूल्यांकन एक अलग दृष्टि से किया जाता है। लेकिन उनके यहाँ इन दोनों संप्रदायों का इतना सामंजस्य है कि इसकी कोई गुंजाइश नहीं है।

'पद्मावत' में वर्णित विरह से आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे। 'नागमती वियोग – खंड' को उन्होंने उस पूरे काव्य का केंद्रीय बिंदु माना है। मनमोहन गौतम ने 'पद्मावत' में वर्णित विरह की तीन कोटियाँ बताई है। उन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत के विरह वर्णन में तीन प्रकार की विशेषताएँ मिलती हैं –

1. उसमें शास्त्रीय विरह की दसों दशाओं का निरूपण मिलता है।
2. उसमें सूफ़ी विरह की सैद्धांतिक अवस्थाओं का विशद् वर्णन है।
3. उसमें लोकायन में प्राप्त विरह का भावात्मक वैशिष्ट्य है।"[41]

[40] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 49, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6
[41] जायसी ग्रंथावली – सं. मनमोहन गौतम, पृ. सं. – 62, संस्करण – 1977 ई., रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली – 6

इन सभी तत्वों का समावेश 'पद्मावत' में हुआ है। 'पद्मावत' के विरह – वर्णन में कवि ने रस – सिद्धांत, सूफ़ी सिद्धांत और लोक – तत्व को एक साथ मिलाकर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार जायसी के कृतित्व एवं उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन इन्होंने पूर्ववर्ती आलोचकों एवं संपादकों की रचनाओं के गंभीर अध्ययन और विश्लेषण के उपरांत किया है। इन्होंने जायसी के पूरे रचना – कर्म के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श किया है।

4.5 कन्हैया सिंह

जायसी की प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' का संपादन कई लोगों ने किया है। लेकिन सभी लोगों से अलग 'पदुमावति' नाम से कन्हैया सिंह द्वारा संपादित पुस्तक की तरफ ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक सी बात है। चूंकि इस क्रम में जिन लोगों ने श्रम पूर्वक 'पद्मावत' का पाठ-शोधन किया और उसका संकलन किया, उन सभी लोगों द्वारा संपादित पुस्तक पढ़ने के बाद इस पुस्तक के नाम ने अपनी तरफ आकर्षित होने को मजबूर किया। उनका मानना है कि जायसी ने अपने रचना का नाम 'पदुमावति' ही रखा था लेकिन फारसी लिपि का सही ढंग से पाठ न होने के कारण उसे 'पद्मावत' पढ़ा गया। इसका कारण उन्होंने अशुद्ध प्रतिलिपि भी माना है। उन्होंने लिखा है कि, "फारसी लिपि में ही 'पदुमावति' के प्राचीन हस्तलेख प्राप्त होते हैं। फारसी लिपि में स्वर चिह्नों के प्रयोग प्रायः नहीं होते हैं। अतः 'पदुमावति' का 'पद्मावत' पढ़ लिया जाना स्वाभाविक है। पढ़ने की इस भूल का कारण इस नाम के अंत में ह्रस्वइकार की मात्रा भी है। दीर्घ ईकार के लिए फारसी लिपि में स्पष्ट 'ई' वर्ण लिखा जाता है पर ह्रस्व इकार के लिए 'पेश' नामक चिह्न वर्ण के नीचे लगाने का विधान है जिसे लिपिकार प्रायः नहीं लगाते।"[42] यह संकट प्रायः उन सभी प्राचीन ग्रन्थों के साथ है जिनकी प्रतिलिपियाँ आज उपलब्ध हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि लिपिकार होने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह व्यक्ति उस भाषा अथवा साहित्य का मर्मज्ञ हो। नामकरण के संबंध में इनका दूसरा मत है कि, "यह तो स्पष्ट ही है कि यह नाम रचना की नायिका के नाम पर रखा गया है। जायसी ने अनेक बार अपनी इस कृति में नायिका को 'पदुमावती' कहा है।

[42] पदुमावती – सं. डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – v, प्रथम सं. – 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी

कहीं – कहीं उसे 'पदुमिनि' भी कहा गया है। 'पद्मावत' नाम पुल्लिंग है तथा रचना के नाम की दृष्टि से भी वह अर्थ – बोध कराने में असमर्थ है।"[43] सूफी काव्य की जो भारतीय परंपरा रही है उसमें प्रायः नायिका के नाम पर ही ग्रंथ का नाम रखा गया है। उनका यह अनुमान बहुत ठीक लगता है कि शायद जायसी ने भी अपने महाकाव्य के नामकरण में सूफी काव्य परंपरा के नामकरण की परंपरा का निर्वाह किया हो। उन्होंने लिखा है कि, "प्रतीत तो यही होता है कि 'मिरगावती' की ही भांति जायसी ने भी अपने महाकाव्य की नायिका के नाम पर रचना का नाम 'पदुमावती' ही रखा। आगे के प्रेमाख्यानों में भी नाम की यही परंपरा चलती है जैसे मंझन कृत 'मधुमालती', उसमान कृत 'चित्रावली', नूर मुहम्मद कृत 'इंद्रावती' आदि।"[44] इस परंपरा से जोड़कर देखने पर यही लगता है कि जायसी ने अपने काव्य का नाम 'पदुमावती' ही रखा था।

'पदुमावती' के पाठ – संशोधन में भी कन्हैया सिंह ने महत्त्वपूर्ण काम किया है। उन्होंने 'जौनपुर की प्रति', 'जायस प्रति', मोहम्मद शाह की प्रति', रायबरेली प्रति', 'मनेर की प्रति', माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'जायसी – ग्रंथावली', रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'जायसी – ग्रंथावली' आदि लोगों के कार्य प्रणाली के गंभीर अध्ययन के पश्चात् उसमें आए दोषों का परिमार्जन करने का प्रयास किया है। उन्होंने लगभग बीसों उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किये हैं जिनमें त्रुटि का दर्शन कराकर उसे परिमार्जित किया है। साथ ही उन्होंने इन उदाहरणों का 'नया पाठ और अर्थ' देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके अलावा उन्होंने लगभग सैकड़ों जगह नया पाठ और नया अर्थ प्रदान किया है।

जायसी का रचना – कर्म जितना व्यापक है उतना ही व्यापक परिमाण में उनके रचनाओं की प्रतियाँ है। अलग – अलग जगह से प्राप्त प्रतियों की सबसे बड़ी कठिनता यह होती है कि कई जगह लिपिकार कई शब्दों को अपनी क्षेत्रीयता के प्रभाववश कुछ दूसरे ढंग से उच्चरित (लिखा) करता है जो आगे आने वाले पीढ़ियों को बहुत ही उलझा देता है। भाषायी दुरूहता की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "जायसी की भाषा में अवधी के

[43] पदुमावती – सं. डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – v, प्रथम सं. – 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी
[44] पदुमावती – सं. डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – vi, प्रथम सं. – 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी

देशज शब्दों के प्रयोग और उनके उच्चारण का वही रूप मिलता है, जो रायबरेली – जायस की अवधी का है। अतः इस संस्करण में अवधी के रूप में अन्य संस्करणों से अंतर प्रायः उतना ही है जितना इन स्थानीय उच्चरित रूपों के कारण है। इसमें कुछ शब्दों में तो भूल केवल पाठ को पढ़ने की त्रुटि से हो गई है।"[45] इस त्रुटि को समझ पाना सामान्य पाठक के बस की बात नहीं है।

'पद्मावत' के पाठ – संशोधन के संबंध में हिंदी साहित्येतिहास में दो कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है – पहला रामचंद्र शुक्ल द्वारा 'जायसी ग्रंथावली' का संपादन और दूसरा माताप्रसाद गुप्त द्वारा 'जायसी ग्रंथावली' का संपादन। आगे के आलोचकों या संपादकों ने इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर जायसी के विभिन्न रचनाओं का संपादन एवं पाठ संशोधन किया है। हालांकि इन सबके अलावा जायसी की रचनाओं की कई सारी पुरानी प्रतिलिपियों से भी सहायता ली गयी है लेकिन आधार के रूप में दोनों में से किसी एक ग्रंथ को चुना गया है। डॉ. कन्हैया सिंह ने 'पदुमावती' के संपादन – विधि की चर्चा के क्रम में बताया है कि, "सम्पूर्ण रचना का पाठ वही रखा गया है जो माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में है। कुल छंद की संख्या डॉ. गुप्त के समान ही इसमें भी 653 है। पर 653 छंदों में जो छंद जायस वाली प्रति या मनेर शरीफ की प्रति में नहीं मिलते हैं, वे संदिग्ध हैं। पर केवल एक प्रति में न होने से उन्हें निश्चित रूप से प्रक्षेप मानना भी संगत नहीं है।"[46] इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्होंने भी माताप्रसाद गुप्त की प्रति को ज्यादा प्रमाणिक मानते हुए उसे आधार के रूप में अपनाया है।

सूफी काव्य परंपरा में कथा खंडों में विभाजित नहीं होती है। उसमें कहने की एक लंबी प्रक्रिया चलती है जैसे दास्तान-ए-गोई की परंपरा। इसमें कथा सर्ग अथवा खंड में नहीं आती है, समग्र रूप में आती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'पद्मावत' की कथा को सत्तावन खंडों में विभक्त किया है जबकि माताप्रसाद गुप्त ने इसमें खंड का विभाजन ही नहीं किया। आगे चलकर वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पद्मावत' के खंड विभाजन की परंपरा आचार्य शुक्ल से ग्रहण की। मनमोहन गौतम ने भी शुक्ल जी और माताप्रसाद गुप्त के क्रमशः खंड विभाजन एवं

[45] पदुमावती – सं. डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – xvi, प्रथम सं. – 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी
[46] पदुमावती – सं. डॉ. कन्हैया सिंह, पृ. सं. – xxi, प्रथम सं. – 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी

छंद संख्या का उल्लेख उसी रूप में किया है जिस रूप में इन दोनों संपादकों के यहाँ दृष्टिगोचर होता है। आगे चलकर डॉ. कन्हैया सिंह ने भी मनमोहन गौतम एवं वासुदेवशरण अग्रवाल की परिपाटी का अनुसरण तो किया लेकिन उसमें पुनरीक्षण की दृष्टि के साथ।

4.6 निष्कर्ष

जायसी का रचना – कर्म ऊपर से जितना सरल और आसान दिखता है भीतर से उतना ही कठिन और दुरूह है। उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी दुरूहता उसकी फारसी लिपि रही है जिसकी समझ के अभाव में उसका सही पाठ – निर्धारण नहीं हो सका। इस रचना के लिपिकारों ने उसकी सूक्ष्मताओं को समझे बिना उसकी प्रतिलिपि तैयार की। चूंकि 'पद्मावत' की कई लिपियाँ आज उपलब्ध हैं लेकिन उसमें तमाम तरह की अशुद्धियाँ उसी तरह मौजूद हैं। इन अशुद्धियों को वैज्ञानिक रूप से दूर करने का प्रयास माताप्रसाद गुप्त ने किया। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' के कई पदों को प्रक्षिप्त माना है। जिस पद के आधार पर 'पद्मावत' में बलात सूफियापन और मसनवी की परंपरा का समावेश, आरोपण किया जाता है उसे उन्होंने प्रक्षिप्त माना है। 'पद्मावत' के 'उपसंहार खंड' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार) का जो पहला छंद है उसे गुप्त जी ने प्रक्षिप्त माना है। छंद इस प्रकार से है –

"मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ।।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं ।।
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुद्धि पदमावति चीन्हा ।।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।।
नागमति यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ।।
राघव दूत सोइ सैतानू । माया अल्लाउदीं सुल्तानू ।।
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझे पारहु ।।

तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेति आहिं।

जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि ।।"[47]

इस छंद को निकालकर उन्होंने इस ग्रंथ को एक खास तरह के रंग में रंगे हुए अर्थ से अलग एक नया अर्थ प्रदान किया। इसके अलावा उन्होंने कथा की ऐतिहासिकता एवं लोक – कथाओं के माध्यम से उसके आधार को प्रामाणिक ढंग से पुष्ट किया। 'पद्मावत' के पूर्वार्ध को लोक के धरातल पर अभिव्यक्त बताया जिसमें राजस्थानी मौखिक काव्य परंपरा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार उन्होंने जायसी की भाषा एवं 'पद्मावत' के पाठ निर्धारण के साथ उसके भाषायी एवं अन्य पक्ष पर महत्त्वपूर्ण चिंतन का विश्लेषण किया है। इस परंपरा में वासुदेवशरण अग्रवाल ने महत्त्वपूर्ण काम किया। उन्होंने भी माताप्रसाद गुप्त द्वारा प्रक्षिप्त माने गए छंदों को प्रक्षिप्त ही माना है लेकिन वासुदेवशरण अग्रवाल ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की खंडों में विभाजन वाली पद्धति को अपनाया है। इन्होंने 'पद्मावत' को जगमगाता हुआ हीरा कहा तथा जायसी को 'सच्चे पृथिवी-पुत्र' की संज्ञा से विभूषित किया। मनमोहन गौतम ने 'जायसी ग्रंथावली' की विस्तृत भूमिका के साथ उसका संपादन किया जबकि डॉ. कन्हैया सिंह ने माताप्रसाद गुप्त के संकलन को आधार बनाकर उसके कुछ छंदों में थोड़ा बहुत हेर – फेर किया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जायसी के रचना – कर्म को एक व्यापक फ़लक प्रदान करने का कार्य शुक्लोत्तर संपादकों ने किया है। बुद्धिसंगत एवं वैज्ञानिक प्रणाली की सहायता से उन्होंने जायसी की महत्ता को स्थापित किया है।

---

[47] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 462, संस्करण – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

पाँचवाँ अध्याय

मलिक मुहम्मद जायसी और विजयदेवनारायण साही

5.1 भूमिका

5.2 ‘जायसी’ संबंधी विजयदेवनारायण साही की स्थापनाएँ और सीमाएं

5.3 आलोचक वागीश शुक्ल का अवदान

5.4 निष्कर्ष

5.1 भूमिका

भक्तिकाव्य और मध्यकालीन संस्कृति की ठीक समझ के लिए इतिहास के उस काल की सही पहचान आवश्यक है जिनसे उस समय का साहित्य, समाज एवं संस्कृति प्रभावित थी। इस काल का संबंध मुख्यतया चौदहवीं, पंद्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध से है, परंतु बारहवीं, तेरहवीं सदी की काव्यधारा उसकी आधार भूमि रही है। यह पूरा युग जहाँ एक तरफ सामंतवादी समाज-व्यवस्था में कराह रहा था, वहीं दूसरी तरफ जातीय व्यवस्था के उत्पीड़न से लगभग पूरी तरह टूट चुका था। ऐसे में भक्तिकालीन कवियों की वाणी ने आम जनमानस को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस युग के कवियों के भीतर इस व्यवस्था के प्रति मोहभंग व्याप्त हो गया था। तथाकथित ज्ञानियों ने अपने पाखंड के द्वारा सामान्य जनता को जितना मूर्ख बनाया था, उसी का यह प्रतिफल था। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भक्ति आंदोलन प्रतिक्रियावादी ज्ञानसत्तात्मक विचारधारा का आंदोलन था। परंतु इसे इस रूप में देखने और व्याख्यायित करने से परहेज किया जाता है, क्योंकि ऐसा करते ही हमारा भक्तिकाल की श्रेष्ठता के प्रति भावुक दृष्टिकोण अचानक अपनी जमीन खो देता है। इस प्रतिक्रिया का मुखर रूप जितना संतकाव्य में दिखाई पड़ता है, उतना अन्य किसी काल में नहीं। प्रसिद्ध इतिहासकार इरफान हबीब ने लिखा है कि, "कबीर के दोहों ने जातिगत प्रतिबंधों के प्रति और सामाजिक व्यवस्था के अंदर अपनी हीन स्थिति के प्रति दस्तकार की चिढ़ के पहले संकेत देने शुरू किए।"[1] जाहिर सी बात है कि साहित्य, इतिहास के कुछ मार्मिक पक्षों पर प्रकाश डालता है। समाज की विभिन्न परिस्थितियों की जितनी मार्मिक एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति साहित्य में मिलती है, उतनी इतिहास में संभव नहीं है। इतिहासकार, साहित्य को दस्तावेज़ के रूप में भी प्रस्तुत करता है।

हिंदी साहित्य में भक्तिकाव्य एक तरफ साहित्य के इतिहास का प्रस्थान बिंदु है तो दूसरी तरफ साहित्य के चरमोत्कर्ष का भी युग है। ऐसे में यह जरूरी है कि उस युग की चिंतनशीलता को बार – बार परखा जाए। इस

[1] मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास : एक सर्वेक्षण - इरफान हबीब, पृ. सं. - 29, सं. - 2017, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली

चिंतन क्रम में भक्तिकाल के प्रमुख कवियों (कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा) पर बहुत लंबी बहस चली है । इस बहस के केंद्र में कभी किसी की जाति रही है तो किसी का धर्म/संप्रदाय । लेकिन इस बहस के साथ एक अच्छी बात यह रही कि कुछ लोगों ने उनके काव्य को चिंतन का केंद्र बनाया । जायसी संबंधी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को प्रस्थान बिंदु माना जाता है, जिनकी चर्चा पिछले अध्याय में हो चुकी है । आचार्य शुक्ल के बाद के अनेक आलोचकों ने लगभग उनकी बातों को ही दुहराया है लेकिन विजयदेवनारायण साही ने अपने पूर्व की चिंतन पद्धति से अलग रास्ता अपनाया । जिस समय विजयदेवनारायण साही ने जायसी संबंधी अपना चिंतन प्रस्तुत किया था लगभग उसी समय वैश्विक चिंतन में फ्रांसीसी दार्शनिक जॉक देरिदा की चिंतन पद्धति ने हलचल मचा दी थी । यह वही समय है जब अंतर्पाठ (Intertextuality) की चर्चा जोरों पर थी । विजयदेवनारायण साही ने अपने समय के तथाकथित आलोचना के मानक को ध्वस्त करके समाजशास्त्रीय पद्धति का सहारा लिया । इस पद्धति के द्वारा उन्होंने जायसी के वंशावली (Genealogy) संबंधी विवेचन को केंद्र से निकालकर परिधि पर धकेल दिया तथा उनके काव्य-तत्व एवं रचना-कौशल को केंद्र में स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया ।

भक्तिकालीन आंदोलन की पृष्ठभूमि में सूफी कवियों के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता है । वे केवल अपने ईश्वर में ही तल्लीन नहीं थे, उन्हें अपने समय एवं समाज का गहरा ज्ञान था । यह जरूर है कि इसके अगुआ मलिक मुहम्मद जायसी के कई ग्रन्थों (‘अखरावट’ और ‘आखिरी कलाम’) पर धर्मशास्त्र का घनघोर प्रभाव देखा जा सकता है, लेकिन वे ग्रंथ उनकी प्रसिद्धि के आधार नहीं हैं । यह ध्यान देने की जरूरत है कि जिस प्रकार तुलसीदास के प्रसिद्धि का आधार ‘रामचरितमानस’ है, ठीक उसी प्रकार जायसी के प्रसिद्धि का आधार ‘पद्मावत’ है । जीवन की संपूर्णता का चित्रण ‘पद्मावत’ में ही संभव हो सका है । इसमें कला की व्यापकता और सौन्दर्य विधान की ऐसी अनुपम छटा दृष्टिगोचर होती है जिसे देखकर जायसी के लोकज्ञान एवं उनकी संवेदनशीलता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । जायसी संबंधी आलोचना में सबसे ज्यादा इस बात पर बल दिया गया कि, ‘वे एक सूफी कवि थे’ । सूफ़ीवाद का घेरा उनके चारों तरफ गार्सा-द-तासी के समय से ही बरकरार है । यह

घेरा तब और मजबूत हो गया जब हिंदी साहित्य में विधेयवादी आलोचकों ने उसे प्रामाणिक ठहराया। यह सूफीवाद का घेरा उनके चारों ओर एक ऐसा मजबूत शिकंजा की तरह बैठा दिया गया जिसे आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता था। चूंकि उस युग के सूफियों के कई ऐसे कार्य भी थे जिसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है। जिस प्रकार ईसाई बहुल देशों में पादरियों की स्थिति मजबूत थी ठीक उसी प्रकार सूफियों की यहाँ थी। यह बात जगजाहिर है कि जायसी सूफी संप्रदाय से सम्बद्ध थे लेकिन उनके भीतर मौजूद तत्व को बने – बनाए मानदंड से बाहर निकलकर देखना होगा। प्रेमशंकर ने लिखा है कि, "जायसी सूफी संप्रदाय से सम्बद्ध थे, यह निर्विवाद है क्योंकि रचनाओं के भीतर उसके वैचारिक तत्व मौजूद हैं। इसी के साथ यह भी ध्यान में रखना होगा कि वे खेती – किसानी के व्यक्ति थे, जिस अनुभव का प्रयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है। जायसी को केवल सूफी कवि के रूप में विवेचित करने से उनकी प्रतिभा के साथ पूर्ण न्याय नहीं हो पाता।"[2] यह स्वाभाविक ही है कि जब किसी कवि के काव्य को किसी विशेष संप्रदाय से जोड़कर देखा जाता है तब उस काव्य की उपेक्षा करके उनमें निहित संप्रदाय संबंधी बातों का उल्लेख सबसे अधिक किया जाता है। ऐसे में यह संभव है कि उस काव्य का मूल्यांकन दोषपूर्ण हो। इसलिए जायसी को सूफीवाद के चश्मे से देखने की बजाय उनकी कविता का मूल्यांकन निष्पक्ष भाव से करने की आवश्यकता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास को देखने की कई दृष्टियाँ रही हैं। इनमें से प्रमुख हैं – भाववादी एवं भौतिकवादी दृष्टि। चूंकि ज्ञान के जीतने भी अनुशासन है उन्हें देखने में इन्हीं दोनों दृष्टियों का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। जायसी के मूल्यांकन में भाववादी दृष्टि की बहुलता रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस तरह से सामाजिक परिस्थितियाँ बदली हैं उसी प्रकार चिंतन की दृष्टि भी बदली है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय सम्पूर्ण चिंतन के केंद्र में एक प्रकार से प्राच्यवाद का विरोध दिखाई पड़ता है। इस विरोध में तत्कालीन परिस्थिति से आँख मोड़कर अपने भूतकाल को स्वर्णिम युग के रूप में उपस्थित करने का सार्थक प्रयास किया गया। बदली हुई परिस्थितियों ने पुनः विचार एवं विमर्श करने के लिए मजबूर किया। इसी विचार - विमर्श के माध्यम से भाववादी चिंतन को

[2] भक्ति काव्य का समाजदर्शन – प्रेमशंकर, पृ. सं. – 111, सं. – 2000, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रश्नांकित करने का कार्य किया गया। भाववादी आलोचकों ने साहित्य चिंतन के मूल में साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन को आधार माना है। यह किसी भी जगत के कलाकार अथवा साहित्यकार से लिए अत्यंत खेदजनक स्थिति है। इन भाववादी विचारकों के संबंध में प्रो. नामवर सिंह ने लिखा है कि, "भाववादी विचारक साहित्य की जड़ें व्यक्ति – साहित्यकार के मन में खोजते हैं जबकि भौतिकवादी उन जड़ों को उस समाज और परिस्थिति में खोजता है, जिससे स्वयं व्यक्ति भी विकसित और निर्धारित हुआ है। समाज ने साहित्य को उन्नत किया है, साहित्य ने समाज को नहीं। इसलिए साहित्य का इतिहास समझने के लिए समाज के विकास का ज्ञान आवश्यक है।"[3] आलोचक का यह दायित्व होता है कि उस युग की सही समझ विकसित करे। यह सही है कि समाज ने साहित्य को विकसित किया है लेकिन समाज भी साहित्य का कम ऋणी नहीं है। इसकी चर्चा पहले हो चुकी है कि इतिहासकार भी साहित्य को दस्तावेज़ के रूप में कहीं – कहीं उद्धृत करता है। इसलिए जायसी संबंधी आलोचना के वाद – विवाद को समुचित रूप से देखने की जरूरत है। इस जरूरत को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में हम विजय देव नारायण साही की आलोचना का व्यापक विवेचन एवं मूल्यांकन करेंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद जायसी संबंधी आलोचना में विजयदेवनारायण साही ने एक नयी दृष्टि अपनायी है। यह दृष्टि आगे की आलोचना का कितना मार्गदर्शन कर पाती है यह इस अध्याय का प्रमुख बिंदु है। विजय देव नारायण साही के बाद वागीश शुक्ल के जिन दो लेखों की चर्चा इस अध्याय में की जाएगी उसका उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि क्या जो आलोचना 'जायसी – नामा' के घेरे से बाहर आ चुकी थी फिर वह घूमकर वहीं अपने अंतस्थल में चली जा रही है जहां से निकलने में उसे सैकड़ों साल मेहनत करनी पड़ी है ? इन्हीं कुछ प्रमुख बिंदुओं के आधार पर जायसी संबंधी आलोचना की राजनीति एवं उसकी सामाजिकता को समझने का प्रयास इस अध्याय में किया जाएगा।

5.2 'जायसी' संबंधी विजयदेवनारायण साही की स्थापनाएँ और सीमाएँ

भक्तिकालीन कवियों के विवेचन संबंधी अनेक समस्याएँ हैं। इन सभी विवेचनों में दो खेमे बन गए हैं। पहला खेमा भक्तिकालीन किसी भी कवि के साथ कुछ करामाती किस्से जोड़कर उन्हें सामान्य मनुष्य से अलग

[3] इतिहास और आलोचना – नामवर सिंह, पृ. सं. – 143, सं. – 2014, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली

बताता है तथा उनकी कविता की व्याख्या केवल ईश्वरीय पृष्ठभूमि में करना चाहता है। वहीं दूसरा खेमा उन कवियों का मूल्यांकन उनके कवित्व के आधार पर करना चाहता है। उनके काव्य के भीतर मौजूद सौन्दर्य एवं समाज की विभिन्न परिस्थितियों के विविध परिप्रेक्ष्य में करना चाहता है। इस क्रम में हजारी प्रसाद द्विवेदी और पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कबीर संबंधी जो चिंतन प्रस्तुत किया है वह भौतिकवादी चिंतन के स्वरूप को प्रमाणित करता है। जायसी संबंधी आलोचना में भी विजयदेव नारायण साही ने भी वही काम किया है। जायसी के 'पद्मावत' की भाषा और उसकी कथा – योजना को ध्यान में रखते हुए साही जी ने उन्हें हिंदी का पहला व्यवस्थित कवि माना है। उन्होंने लिखा है कि, "एक अर्थ में जायसी हिंदी के पहले विधिवत कवि हैं। मैं यह नहीं कहता कि कबीरदास ने कविता के द्वारा एक अत्यंत कठिन समय में अभिव्यक्ति की समर्थ और शक्तिशाली राह नहीं बनाई। कबीरदास के पथ – प्रदर्शन और क्षमता के बिना शायद जायसी के लिए 'पद्मावत' को लिख पाना भी संभव न हो पाता। परंतु कबीर अपनी प्रतिभा के सहारे भाषा को ठेल - ठेलकर आगे बढ़ाते हैं। उनकी कविता में इस प्रयास के चिह्न बराबर दिखते हैं। लेकिन जायसी में पहली बार हिंदी भाषा सहज काव्य – प्रवाह में बहने लगती है। हिंदी का अवधी रूप, जिसे जायसी ने अपने काव्य – माध्यम के लिए चुना, समूचा – का – समूचा काव्यमय हो जाता है। कवि का प्रयास कहीं दिखता नहीं। लगता है कि समूची अवधी भाषा कविता ही है जो जायसी की कलम से अपना स्वरूप ग्रहण करती चलती है।"[4] जायसी के इस प्रयास के बाद अवधी में सबसे बड़ा प्रबंध काव्य 'रामचरितमानस' लिखा गया। यह जायसी की बड़ी देन है कि आगे के लगभग सभी प्रमुख कवियों ने उनकी शैली एवं काव्य – विधान को अपनाया। भक्तिकाल में रामभक्ति – शाखा तक केवल अवधी में ही साहित्य रचा गया। जायसी की कविता का संबंध केवल 'इश्क हक़ीक़ी' और 'इश्क मजाज़ी' तक ही नहीं है। उनको कवि के रूप में देखने अथवा उनकी कविता कि समाजशास्त्रीय विवेचना करने की पद्धति पर विजयदेवनारायण साही जी ने सर्वाधिक बल दिया है। जायसी ने अपने कवि होने का प्रमाण जगह – जगह पर दिया है। 'पद्मावत' के 'स्तुति खंड' में उन्होंने लिखा है –

[4] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 1, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

"एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोई विमोह जेहि कवि सुनी ॥

अथवा

चार मीत कवि मुहम्मद पाए। जोरि मिताई सिर पहुँचाए ॥

अथवा

जायस नगर धरम अस्थानु। तहाँ आई कवि कीन्ह बखानू ॥

औ बिनती पंडितन भजा। टूट संवारहु, नेरवहु सजा ॥

हौं पंडितन केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा ॥

अथवा

मुहमद कवि जौ बिरह भा ना तन रकत न माँसु।

जेइ मुख देखा तेइ हँसा, सुनि तेहि आयउ आँसु ॥

अथवा

कवि बियास कँवला रस पूरी। दूरी जो नियर, नियर सो दूरी ॥

नियरे दूर फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे, जस गुड़ चाँटा ॥"[5]

जायसी की ये पंक्तियाँ उनके सचेत कवि होने की सूचना देती हैं। कवि सगर्व घोषित कर रहा है कि मैं विरह का कवि हूँ, मेरी कविता को जो भी पढ़ेगा वह रो देगा। जायसी ने जिस बात पर सबसे अधिक बल दिया वह है 'सुनि तेहि आयउ आंसु'। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि, आधुनिक युग का विख्यात कवि पी. बी. शेली ने भी इसी बात पर बल दिया है, "हमारे सबसे सुंदर और मधुर गीत वो हैं जो दुःख की घड़ी में लिखे गए हैं

[5] जायसी ग्रंथावली – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 195, सं. – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अथवा विरह वेदना को व्यक्त करते हैं।"[6] तब जायसी का यह उस समय में कहना कितना प्रासंगिक होगा इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मलिक मुहम्मद जायसी की विचारधारा और उनकी चिंतन पद्धति को लेकर काफी लंबी बहस चली है। इस बहस का आधार भी सूफी संबंधी चिंतन को लेकर ही है। इतिहासकार सतीशचंद्र ने 'दक्षिण एशिया में भक्ति और सूफी आंदोलनों का प्रभाव' की चर्चा करते हुए सूफियों की चिंतन पद्धति और उनकी प्रतिबद्धता के विषय में लिखा है कि, "सूफियों में से लोकप्रिय वे सूफी थे जिन्होंने 'सिलसिला' के माध्यम से सिद्धान्त अथवा आचरण की किसी विचारधारा को संगठित नहीं किया था और जो अक्सर तुलनात्मक रूप से दूर – दराज के देहाती इलाकों (क़सबों) और गांवों में रहते थे और उस क्षेत्र के लोगों की भाषा, मुहावरों और रीति – रिवाजों को भी अपनाकर उनसे संवाद कायम करते हैं।"[7] साहित्य में वही व्यक्ति अपना वजूद कायम रख सका है जो सत्ता के मोह से विरत है। यही कारण है कि रीतिकालीन कवियों की चर्चा बहुत कम होती है जबकि उससे पहले के भक्तिकालीन कवियों को साहित्य का प्रस्थानबिंदु माना जाता है। जायसी के संबंध में भी कुछ ऐसी ही स्थिति की चर्चा मिलती है। विजय देव नारायण साही ने जायसी को सूफीवाद के घेरे से निकालने का भरपूर प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है कि, "इतना तो कहा ही जा सकता है कि जायसी यदि सूफी थे भी, तो न सरकारी सूफी थे, न मठी। अगर डॉक्टर लोहिया की शब्दावली का इस्तेमाल करें तो कुजात सूफी रहे हों, तो हों।"[8] साही जी ने सूफियों की तीन श्रेणी बनाई है – 1. सरकारी सूफी, 2. मठी सूफी और 3. कुजात सूफी। इस श्रेणीक्रम का आधार क्या है ? इसकी चर्चा कहीं नहीं की गई है।

---

[6] We look before and after,
And pine for what is not:
Our sincerest laughter
With some pain is fraught;
Our sweetest songs are those that tell of saddest thought.
- PERCY BYSSHE SHELLEY

[7] मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप – सतीशचंद्र, पृ. सं. – 104, सं. – 2013, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली

[8] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 5, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदी आलोचना में प्रतिमानीकरण की प्रक्रिया कोई नई घटना नहीं है। हिंदी आलोचना में जायसी संबंधी चिंतन के विकास को देखते हुए यह आसानी से समझा जा सकता है कि आलोचना का प्रतिमान भी युग-सापेक्ष्य होता है। किसी जमाने में आलोचकों ने सभी भक्त कवियों का संबंध लोक - जगत से तोड़कर अलौकिक - जगत से जोड़ दिया था। कुछ ऐसा जैसे वे इस जगत के प्राणी ही न हों। सभी भक्त कवियों के विषय में एक ऐसी दंतकथा जोड़ दी जाती है, जिससे वह कवि, कवि न रहकर सीधा ईश्वर का अवतार ही हो। बदलते समय एवं सामाजिक संरचना ने इन तथ्यों की उपेक्षा की। एक समय के बाद यह घेरा कमजोर पड़ता गया। इसके शिकार जायसी भी हुए हैं। विजयदेव नारायण साही ने लिखा है कि, "सूफीमत, सूफी संप्रदाय और सूफी संतपन का घेरा 'पद्मावत' के चारों ओर इस तरह डाल दिया गया है कि कवि व्यक्तित्व धुंधला पड़ गया है।"[9] निस्संदेह जायसी के काव्य से ज्यादा उनके दर्शन की चर्चा हुई है। किसी ने उनके दर्शन को भारतीय चिंतन पद्धति से उपजा हुआ सूफी ज्ञान माना है तो किसी ने मंसूर हल्लाज़ की परंपरा का निर्वाह करने वाला सूफी कवि बताया है। लेकिन इस दर्शन की व्याख्या में उनके काव्य का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन नहीं हो सका जिससे यह ज्ञात हो सके कि उन्होंने समाज के किस स्वरूप की व्याख्या की है।

निर्गुण संत काव्य परंपरा में कबीर ने समाज में जिस तरह से जान फूंकने का कार्य किया था वह अत्यंत सराहनीय रहा है। इनके यहाँ समाज की चिंता बहुत उत्कृष्ट स्तर की दिखाई पड़ती है लेकिन आत्मसातीकरण का अभाव दिखाई पड़ता है। उनकी बानी से समाज में एक नए तरह का अ-सातत्यता उभरता है, लेकिन यह लोगों को बहुत देर तक अपनी तरफ आकर्षित नहीं रख सका। इसी परिवेश में जायसी जैसे कवि का उद्भव एक नई घटना थी। इन्होंने लोक में व्याप्त कथानकों के माध्यम से जनता के दुःख – दर्द को समझा तथा उसी को आधार बना कर अपना महाकाव्य लिखा। विजयदेव नारायण साही ने कबीर की शब्दावली से इनकी तुलना की है। उन्होंने लिखा है कि, "कबीर की शब्दावली चूंकि हिन्दू – तुरक, दोनों को काटती है, अतः उसमें अर्थ के फैलने की तुलना में एक नए संप्रदाय और फलतः नयी रूढ़ पारिभाषिक शब्दावली के निर्मित होने की संभावना अधिक

[9] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 4, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

है। कबीरदास में शब्दावली का विद्रोह है और नए संदर्भों की खोज है। जायसी में शब्दावली की अद्भुत स्थानांतरणशीलता है और द्विधा भक्त संदर्भों को एक कर देने की क्षमता है।"[10] यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है कि 'जायसी ग्रंथावली' के आरंभिक अध्याय 'मलिक मुहम्मद जायसी' को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी बात से आरंभ किया है। उनकी भी चिंता कुछ इसी तरह की थी। उन्होंने लिखा है कि, "सौ वर्ष पूर्व कबीरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता 'राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर की दृष्टि से देखते थे।"[11] तात्पर्य यह है कि लोग कबीरदास की बानी को बहुत सुन चुके थे। उनके भीतर एक तरह से सहिष्णुता का भाव पैदा हो गया था। ऐसे समय में ही जायसी के होने की जानकारी मिलती है। इस बिंदु पर विजयदेवनारायण साही, आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परंपरा के बहुत करीब नजर आते। ऐसा लगता है कि उन्होंने शुक्ल जी के चिंतन को व्यापक धरातल पर व्याख्यायित किया है।

मध्यकालीन कवियों ने अपने विषय में बहुत कुछ नहीं लिखा है। कहीं – कहीं इसके छिट – पुट प्रयास दिखाई देते हैं लेकिन उनके भीतर अपनी कविता के उद्देश्य और कवि होने का एहसास पूर्ण रूप में विद्यमान है। आधुनिक कविता में कविता का उद्देश्य प्रायः सिरे से गायब रहता है। फिर भी मध्यकालीन कवियों के भीतर इस व्यक्तित्व को लेकर कहीं घमंड मौजूद नहीं है। साही जी ने इसी बात का आभास जायसी में पाया है। उन्होंने लिखा है कि, "अपने कवि व्यक्तित्व का बारंबार उद्घोष, कवि सुलभ गर्वोक्तियाँ, विविध मित्रों की मंडली, पास के लोगों द्वारा जायसी की प्रतिभा का अनभिज्ञान, आहत स्वाभिमान की यत्किंचित झलक और 'आखिरी कलाम' में संकेतित विचित्र अनुभव, समकालीन या परवर्ती सूचियों में जायसी का कहीं उल्लेख भी न होना – ये साक्ष्य केवल एक ही अनुमान हमारे लिए संभव छोड़ते हैं कि जायसी का व्यक्तित्व एक सामान्य किन्तु भावप्रवण मनुष्य, दिल मिलाने वाले दोस्त और अत्यंत प्रतिभाशाली कल्पनाशील और बौद्धिक कवि का है, सूफी संत का बैरागी बाबा

---

[10] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 13, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

[11] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 17, सं. – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

का नहीं ।"[12] जायसी की कविता किसी संत या पहुंचे हुए फकीर की अभिव्यक्ति नहीं लगती है। यह किसी चिंतनशील तथा हृदयग्राही व्यक्ति की रचना लगती है। जिसे लोक की समझ नहीं होगी वह इस तरह का काव्य नहीं रचा पाएगा और इस बात को सभी जानते हैं कि संत या पहुँचे हुए फकीर का लोक से कितना जुड़ाव होता है ।

भक्तिकाव्य पर जिन विद्वानों ने विचार किया उनमें से अधिक लोगों ने जायसी को सिद्ध फकीर ही माना है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्ति का विकास' में जायसी संबंधी चिंतन प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी सिद्ध फकीर थे। हिन्दू संतों से भी इन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया। अद्वैतवाद की झलक तो इनके प्रत्येक ग्रंथ से प्रकट हो रही है ।"[13] यह कहीं न कहीं आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चिंतन का विकासक्रम है। इसी चिंतन पद्धति के मानकीकृत रूप को तोड़ने की बात विजयदेव नारायण साही ने कही है। आलोचना के स्वरूप को इस विकासक्रम के माध्यम से समझा जा सकता है। साही जी ने लिखा है कि, "वे (जायसी) दुहरे अन्याय और उपेक्षा के शिकार भी हुए हैं। विडम्बना यह है कि सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक जब दिल्ली और मुगल साम्राज्य में तसव्वुफ़ और विभिन्न सूफी संप्रदायों का बोलबाला था, तब जायसी की उपेक्षा इस कारण हुई कि वे सूफ़ी या किसी अन्य संप्रदाय में प्रतिबद्ध नहीं दिखते थे और बीसवीं शताब्दी में जब तसव्वुफ़ का महात्म्य नगण्य होने लगा तब जायसी सूफ़ी घोषित कर दिए गए और धीरे – धीरे केवल भाषा संबंधी शोधकर्ताओं, जायसी विशेषज्ञों और प्राचीन संप्रदायों में रमने वाले आध्यापकों के लिए पुराने दस्तावेज़ की तरह रह गए ।"[14] अब तो स्थिति यह हो गई है कि भक्तिकालीन साहित्य में केवल कबीर के अलावा जो कवि अस्मितावादी विमर्श के करीब नजर आते हैं उसी के साहित्य का अध्ययन और मनन किया जा रहा है। यह कितनी दुःखद बात है कि उसी युग के अन्य कवि केंद्र में दिखाई पड़ते हैं जबकि जायसी में सम्पूर्ण साहित्यिकता

[12] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. –22, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

[13] भक्ति काव्य का विकास (वैदिक भक्ति एवं भागवत भक्ति तथा हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति) – डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृ. सं. – 462, सं. – 1979, चौखंभा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी

[14] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. –23, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

(literariness) होने के बावजूद भी वे परिधि पर ही मौजूद रहते हैं। अकादमिक दुनिया ने जायसी के काव्य में उतनी रुचि नहीं दिखाई।

मलिक मुहम्मद जायसी को सूफ़ीवाद के दायरे में बांधने को उनकी एक पंक्ति से भी प्रमाणित किया जाता है। हालांकि उस पंक्ति को आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद के आलोचकों ने प्रक्षिप्त माना है। वह पंक्ति है –

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमावती चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोई न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥"[15]

यही एक ऐसी चाबी है जिसके सहारे मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' को सूफी काव्य कहा गया है। शुक्लोत्तर जायसी ग्रंथावली के संपादकों ने इस समूचे कड़वक को प्रक्षिप्त माना है तथा इसका उल्लेख भी नहीं किया है। इसकी अंतिम पंक्ति में यह बातें कही गयी हैं कि इस प्रेम को जो इस पद्धति से समझेगा वही इसका मर्म समझ पाएगा। कविता के साथ एक दुर्घटना कही जाएगी कि कोई कवि कम से कम अपनी कविता को समझने के लिए अपनी तरफ से कोई दृष्टि नहीं देता है। किसी कविता को समझने के लिए जो दृष्टि विकसित की जाती है वह किसी टीकाकार अथवा आलोचक द्वारा ही विकसित की जाती है। इस तरह के ऊहापोह वाली स्थिति से निकलने के लिए विजयदेव नारायण साही ने दो रास्ते सुझाए हैं। उन्होंने लिखा है कि, "या तो जायसी को सतर्क कवि मानकर पूरी कथा को इस तरह पढ़ा जाए कि समूचे कृतित्व की एकता खंडित न हो और यत्र – तत्र बिखरे हुए तसव्वुफ़ की झलकियों को अंशी न मान कर अंश ही माना जाए, या यह समझा जाए कि जायसी का मूल कथ्य सूफीवाद है, लेकिन कविता लिखते समय वे बह गए और जो करने चले थे, न कर सके।"[16] ज़ोर इसी बात पर है कि उन्होंने कविता बहुत अच्छी लिखी है, सिद्धांत कुछ पीछे छूट गया है। यह एक विश्वसनीय तथ्य है कि जायसी

[15] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 462, सं. – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
[16] जायसी – विजयदेव नारायण साही, पृ. सं. – 29, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

का जुड़ाव आंशिक ही सही लेकिन सूफी-दर्शन से था। इसे एकदम सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता है। लेकिन कविता की प्रबलता उनके सूफीवाद को गौण बना देती हैं।

भक्तिकाव्य के मूल्यांकन की अनेक पद्धतियाँ मौजूद हैं। इन पद्धतियों में समाजशास्त्रीय पद्धति की चर्चा बहुत ज़ोरों पर रही है। इसके माध्यम से कवि व्यक्तित्व से ज्यादा कवि – कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। विजयदेव नारायण साही ने इसी पद्धति के सहारे जायसी के काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस मूल्यांकन में उन्होंने जिस बात पर सर्वाधिक बल दिया, वह है जायसी के दर्शन – पक्ष को गौण मानकर उनके कवि – व्यक्तित्व की विवेचना करना। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी एक आत्मसजग, आत्म – विश्वासी और अत्यंत संवेदनशील कवि थे एक सशक्त, किन्तु अलीक विचारक थे। उनकी अनुभूतियों में वह गहरी तीव्रता थी जो सृजनशीलता को मनुष्य के प्राणतत्व से जोड़ती है। इसकी संभावना बहुत कम है कि वे साधू बाबा या सूफी फकीर भी रहे हों, बल्कि जो भी संकेत मिलते हैं, वे इस संभावना के विरुद्ध जाते हैं। यह भी संभव है कि जायसी न केवल किसी मठ से नहीं जुड़े, बल्कि किसी दरबार से भी नहीं जुड़े। इसके कारण उन्हें उपेक्षा और संभवतः गलतफहमी का भी शिकार होना पड़ा।"[17] जायसी सहित सभी भक्तिकालीन कवियों में दरबार का निषेध दिखाई पड़ता है। उस युग के सभी प्रमुख कवियों ने दरबार के प्रति अपनी उपेक्षा ही दिखाई है। उस युग में कृष्ण भक्ति धारा के एक अदना सा कवि कुंभनदास भी इस बात को मुखर रूप से कहता है। कुंभनदास ने दरबार के प्रति अपनी जो अरुचि दिखाई है वह कितनी साहस की बात है ? जब समाज में चारों ओर सामंतवाद और राजशाही का बोलबाला चल रहा हो ऐसे में किसी राजदरबार की निंदा करना किसी अपराध से कम नहीं माना जाता था। ऐसे समय में कुंभनदास ने कहा कि,

"संतन को कहाँ सीकरी सो काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम॥
जाके मुख देखत दुख उपजै।

[17] जायसी – विजयदेव नारायण साही, पृ. सं. – 40, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

तीन को तीन को करिबे पड़ी सलाम ॥"[18]

कहना न होगा कि भक्तिकाल के सभी संप्रदाय के कवियों की दृष्टि में राजदरबार का कोई महत्त्व नहीं था। उनकी दृष्टि में वह शोषण का केंद्र था जो गरीबों तथा किसानों को अपना निवाला बनाता था। ऐसे राजा से उनका कोई सरोकार नहीं है। इस तरह के राजाओं की उन्होंने उपेक्षा की है। इस स्थिति से सभी संत कवि अवगत है और उनकी प्रतिबद्धता उस वर्ग के प्रति दिखाई देती है जो शोषित है। यह शोषण समाज में विभिन्न स्तरों पर है। इसी असमानता और वर्गीकरण की एकता की चिंता सभी भक्त कवियों के यहाँ दिखाई देती है।

'पद्मावत' न तो किसी दर्शन की पुस्तक है और न ही किसी धर्मशास्त्र की। जिस प्रकार तुलसी और सूर के काव्य में जीवन की व्यापकता दृष्टिगोचर होती है ठीक उसी प्रकार जायसी के काव्य में भी जीवन का सौन्दर्य तथा उसके विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। उसमें उल्लास है, हर्ष, विषाद, जीवन – मरण तथा अनेक प्रकार के तत्व विद्यमान है जो किसी भी व्यक्ति के जीवित होने के प्रमाण हो सकते हैं। इस महाकाव्य का अंत भारतीय साहित्यशास्त्र के मानक से अलग है जिसमें नायक को परास्त दिखाया गया है। इस बात को केंद्र में रखकर साही जी ने इसे महाकाव्यात्मक त्रासदी माना है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी का प्रस्थान बिंदु न ईश्वर है, न कोई नया अध्यात्म है। उनकी चिंता का मुख्य ध्येय मनुष्य है – मनुष्य जैसा कि वह सामान्य जिंदगी में उठता – बैठता है, सीखता है, प्रेम करता है, गृहस्थी चलाता है, युद्ध में वीरता और कायरता दिखाता है, राज्य स्थापित करता है, छल – कपट, बेईमानी और कमीनापन करता है, संप्रदाय स्थापित करता है, बटोर करने के लिए नारे लगता है और इस सबके बाद अपनी अपर्याप्तता की गहरी त्रासदी से ग्रस्त हो जाता है। अपनी मूल प्रकृति में 'पद्मावत' एक त्रासदी है ... शायद हिंदुस्तान या संभवतः एशिया की धरती पर लिखा हुआ एकमात्र ग्रंथ है जो यूनानियों की ट्रेजेडी के काफी निकट है यह आश्चर्य का विषय हो सकता है कि

[18] चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ. सं. – 459, सं. - 1960

जायसी को यह दृष्टि कहाँ से मिली।"[19] यही कारण है कि अभी तक इस महाकाव्य के मर्म को समझने के तमाम दावों के बावजूद भी अभी तक बहुत कुछ समझना बाकी है। आज जब यह घोषित रूप से कहा जा रहा है कि 'इतिहास का अंत' हो गया है, 'आलोचना का अंत' हो गया है फिर भी यह प्रक्रिया सतत जारी है जो किसी भी काव्य को समझने के लिए विभिन्न दृष्टियाँ प्रदान करती हैं।

मध्यकालीन भक्तिकाव्य में जायसी सांस्कृतिक समन्वय के प्रतीक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। यही स्थान संत कवियों का भी है जिसके अगुआ कबीर माने जाते हैं। इसमें सूक्ष्म अंतर यह है कि जायसी की दृष्टि प्रेममूलकता पर टिकी हुई है, जबकि कबीर में संघर्ष की मात्रा कुछ अधिक है। जायसी की प्रेम कल्पना, आध्यात्मिक संकेत, रहस्यवादी दृष्टि का आधार भले ही सूफी दर्शन हो लेकिन उसकी प्रकृति लोकोन्मुख है। पात्रों को सहज मानवीय भूमि पर उतारकर उनका चित्रण करने के मूल में जायसी की सांस्कृतिक चेतना निश्चित रूप से सक्रिय है। वह न तो ज्ञानी और पंडित होने का दावा ही करते हैं और न ही शास्त्र की दुहाई देते हैं। उन्होंने तो केवल प्रेम के मार्ग का अनुसरण किया है जिसके सहारे उस युग के आम जनमानस के दुःख और वेदना को अभिव्यक्ति मिली है। यदि साहित्य केवल अपने समय का कोरा अनुवाद नहीं होता है तो जायसी के काव्य में अभिव्यक्त सांकेतिकता को लक्षित किया जा सकता है, जहां सीधा – सीधा तो कुछ नहीं मिलता लेकिन उसे पुनः अलग ढंग से डिकोड करने पर उसका एक नया अर्थ खुलता है।

जायसी के काव्य में मौजूद लोक तथा उसकी संवेदन क्षमता बहुत व्यापक है। यह किसी सूफी बाबा अथवा फकीर के लिए संभव नहीं है कि वह किसी लोक संस्कारों का इतनी गहराई से ज्ञान रखता हो। इसका ज्ञान उसे ही हो सकता है जो इसके भौतिक धरातल पर जुड़ा हुआ हो। ग्राम जीवन, विशेषतया किसानों और दासों के जीवन को उन्होंने निकट से देखा था, क्योंकि गाँव के असंख्य दृश्य संकेत उनके यहाँ मौजूद है। किसान जीवन किसी बाबा अथवा संत के समझ से बाहर की वस्तु है। मध्यकालीन कृषक वर्ग की स्थितियों

[19] जायसी – विजयदेव नारायण साही, पृ. सं. – 62, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

का वर्णन करते हुए डॉ. इरफान हबीब ने लिखा है कि, “कृषक वर्ग पर वास्तविक बोझ इतना अधिक हो जाता था कि उनके जीवन जीने के साधनों में भी हस्तक्षेप होने लगता था। किसान, जिनके पास अलग से कोई संपत्ति नहीं थी, से इतनी बड़ी मात्रा में राजस्व वसूली की प्रक्रिया परिष्कृत नहीं हो सकती थी। रैयत जब मालगुजारी नहीं अदा कर पाते थे तो उन्हें बुरी तरह से मारा – पीटा जाता था और उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। यह कह कर कि मेरे पास धन नहीं है, कर भुगतान करने से किसान मना कर देते थे। इसके विरुद्ध सजा और प्रताड़ना काफी कठोर थी। और भूखे प्यासे भी रखा जाता था। इस यातना से कभी – कभी वे मर भी जाते थे। लेकिन इसके बाद भी उन्हें कोई राहत नहीं प्रदान की जाती थी।”[20] कृषक वर्ग की ऐसी स्थिति को देखकर किसी सूफी बाबा या फकीर का हृदय द्रवित हो या न हो एक सामान्य अथवा संवेदनशील कवि का हृदय तो जरूर द्रवित होगा। इसी कारण जायसी की मूल चिंता उसी वर्ग की थी जिसमें किसान, शिल्पी तथा अन्य लोग शामिल हैं। आधुनिक युग में किसान के दर्द और पीड़ा को मुखर रूप से उठाने का कार्य स्वामी सहजानंद सरस्वती, बाबा रामचंदर और एन. जी. रंगा ने किया है। आधुनिक युग में किसान आंदोलन इन महानुभावों के नेतृत्व में आगे बढ़ता रहा। यह इस बात का सूचक है कि किसानों की समस्या आज भी खत्म नहीं हुई है।

जायसी के भीतर व्याप्त संवेदनशीलता को विजयदेव नारायण साही ने ठीक ढंग से पहचाना है। जायसी को जिस घेरे से बार – बार निकालने के लिए वे कह रहे हैं वह सिद्धान्त का घेरा है। इस घेरे से निकालकर उन्हें लोक - मानस की भाव – भूमि पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयास ही समाजशास्त्रीय आलोचना की मांग है। उन्होंने लिखा है कि, “किसी एक तथाकथित गुह्य साधना को जायसी के मत्थे मढ़ देना जायसी की आंतरिकता को एक ऐसे खूँटे से बांध देना होगा जिससे बंधने के लिए जायसी तैयार नहीं हैं।”[21] जायसी

[20] भारतीय इतिहास में मध्यकाल – इरफान हबीब, पृ. सं. – 257, सं. – 2013, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन , नई दिल्ली

[21] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 77, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

के काव्य पर सूफ़ीवाद के प्रभाव को खारिज नहीं किया जा सकता है लेकिन ‘पद्मावत’ और जायसी का लेखन केवल सूफीवाद की अभिव्यक्ति है यह स्वीकार भी नहीं किया जा सकता।

विजयदेवनारायण साही ने ‘पद्मावत’ को एक महाकाव्यात्मक त्रासदी की संज्ञा दी है। त्रासदी की सर्वमान्य व्याख्या दुखांतक के रूप में बताई जाती है। लेकिन यह दुखांत क्या केवल रत्नसेन, अलाउद्दीन, नागमती और पद्मावती तक ही सीमित है ? इस दुखांत को साही जी ने विभिन्न परिप्रेक्ष्य में देखा है। उन्होंने लिखा है कि, “पद्मावत की कथा केवल अलाउद्दीन, रत्नसेन और पद्मिनी की व्यक्तिगत ट्रेजडी नहीं है – जिन शर्तों पर जायसी का समाज उलट – पुलट रहा है, उनके चलते समूची पृथ्वी के झूठी पड़ जाने की ट्रेजडी है।”[22] यह वही समाज है जहाँ न कोई किसान सुखी हैं और न ही कोई शिल्पी। ऐसे समाज की सामाजिक संरचना का क्या महत्त्व है जहाँ किसी विशेष तबका को ही सारी सुविधाएं प्राप्त हो तथा अन्य सभी रोटी के लिए तरसते हों। ‘पद्मावत’ की इस ट्रेजडी को साही जी ने विभिन्न स्तरों पर परिलक्षित किया है। उन्होंने लिखा है कि, “प्रेम की कसौटी पर उन्होंने अपने युग को कसा और उनकी अनुभूति में वह गहरी विषाद दृष्टि उत्पन्न हुई जिसमें एक तरफ आदमी बैकुंठ भी हो जाता है, दूसरी तरफ एक मुट्ठी खाक भी रह जाता है। ‘पद्मावत’ की ट्रेजडी इन दोनों अवस्थाओं में एक साथ प्रज्वलित हो जाने की ट्रेजडी है। जितना प्रेम है उतना ही युद्ध है; जितना मन के भीतर दीपता हुआ सिंहल लोक है, उतना ही टूटे हुए दुर्गों की धूल उड़ती हुई विरानगी है ; जितनी अपने हाथ में सिर उतारकर जमीन पर रख देने की तड़प है उतना ही वैभव का प्रदर्शन है ; सत है, साका है।”[23] ‘पद्मावत’ के विषाद/ दुखांत दृष्टिकोण की विवेचना केवल एक आधार पर नहीं हो सकती है। इसके विभिन्न स्वरूपों की चर्चा से इसके व्यापकत्व का पता चलता है।

जायसी की चिंतन पद्धति को किसी एक खेमे में बांधकर देखना अन्यायपूर्ण होगा। साहित्यकार अपने समाज का सबसे संवेदनशील व्यक्ति होता है। जायसी इसके अपवाद नहीं हैं। उनके यहाँ एक तरफ

[22] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 88, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
[23] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 89, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

अध्यात्म का बोलबाला है तो दूसरी तरफ भौतिकवादी चेतना का। इन दोनों दृष्टियों के समन्वय के आधार पर उनका चिंतन विकसित होता है। यह अध्यात्म और भौतिकता आपस में इतने उलझे हुए हैं कि इसे सुलझा पाना संभव नहीं है। विजयदेव नारायण साही ने इसकी ठीक पहचान की है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी अध्यात्मवादियों के बीच भौतिकवादी हैं और भौतिकवादियों के बीच अध्यात्मवादी।"[24] यह किसी सामान्य कवि के बस की बात नहीं है कि इतना जोखिम भरा कार्य कर सके। लेकिन जायसी ने यह काम अपने ढंग से किया है। उन्होंने जिस तरह से धार्मिक पाखंड को उजागर किया, उसकी आलोचना की, वह कोई सामान्य बात नहीं है। कर्मकांड तथा ज्योतिषियों की उपेक्षा करते हुए जायसी ने लिखा है कि,

"गनक कहहि करु गवन न आजू। दिन लै चलहि फरै सिधि काजू।।
पेम पंथ दिन घरी न देखा। तब देखै जब होइ सरेखा।।
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू। कया न रकत न नयनन्हि आँसू।।
पंडित भूलान न जानै चालू। जीउ लेत दिन पूँछ न कालू।।
सती कि बौरी पूँछै पाँड़े। औ घर पैठि समेटे भाँड़े।।
मरि जो चलै गाँग गति लेई। तेहि दिन घरी कहाँ को देई।।"[25]

जायसी ने जिस तरह से कर्मकांड में लिप्त व्यक्तियों का मखौल उड़ाया है यह उस युग के लिए कोई साधारण घटना नहीं थी। जायसी से पहले कबीर ने पंडे – पुरोहितों और मुल्लाओं पर इसी तरह से तंज़ कसा था। इसी का उत्तरोत्तर विकास जायसी के यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

'पद्मावत' की कथा में पद्मावती को लेकर विभिन्न विवाद उठ खड़े हुए हैं। किसी को पद्मावती स्वप्न जैसी कोई घटना लगती है तो किसी को यथार्थ। इस संबंध में साही जी की स्थापना है कि, "जायसी की पद्मावती कथा का एक स्थिर पात्र या एकार्थी प्रतीक नहीं है, वह ऊर्जा का एक विलक्षण संपुंज है।... पद्मावती

[24] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 91, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
[25] पद्मावत – व्याख्याकार वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 123, सं. – 2002, साहित्य सदन प्रकाशन, तलैया झाँसी

जिंदगी का दर्शन नहीं, जिंदगी है। वह जायसी का तसव्वुफ़ नहीं, जायसी की कविता है।"[26] जायसी ने जिस तरह से पद्मावती के चरित्र को आत्मसात किया है वैसा किसी अन्य चरित्र को नहीं किया है। पद्मावती का यह रूप निश्चित तौर पर जायसी द्वारा गढ़ा गया है। लोक - कथा में पद्मावती का जैसा स्वरूप वर्णन अथवा चरित्र – चित्रण है वैसा ही एकदम जायसी के यहाँ नहीं आ गया है। इस अर्थ में जायसी की कला की प्रासंगिकता अनायास बढ़ जाती है।

सीमाएँ

मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य की आलोचना के विभिन्न स्वरूप हैं। आलोचकों ने अपनी – अपनी स्थापनाओं के माध्यम से कभी सूफी, कभी सामान्य कवि तथा कभी पहुंचे हुए फकीर सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन स्थापनाओं की कुछ सीमाएँ भी रही हैं। अपनी स्थापनाओं में जिन आग्रहों के माध्यम से इन आलोचकों ने उनके किसी विशेष पक्ष पर बल दिया है उनका मूल्यांकन ही इन सीमाओं के भीतर किया जाएगा। यह बहुत संभव है कि अपनी स्थापनाओं को दृढ़ता से प्रस्तुत करने के लिए आलोचकों ने कुछ ऐसी स्थापनाएँ भी दी हो जिसका कोई औचित्य नहीं। जिस प्रकार एक कवि अपने युग – बोध से प्रभावित होता है ठीक उसी प्रकार एक आलोचक भी अपने युग – बोध से प्रभावित होता है। यह युग - बोध कहीं उसका सहायक होता है तो कहीं उसके लिए दुष्कर साबित हो जाता है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि कवि अपने समय की चिंता को व्यक्त करता है लेकिन इसका मतलब कदापि यह नहीं है कि वह कोरा इतिहास ही होगा। उसमें इतिहास की कुछ झलक अवश्य मिलती है। साहित्य के किसी भी विधा के मूल्यांकन के लिए यह जरूरी है कि उस विधा की समझ हो तथा उसके भीतर मौजूद साहित्यिकता की पहचान करने की क्षमता हो। विजयदेवनारायण साही जी ने भी जायसी चिंतन पद्धति में एक नया मोड़ उपस्थित किया। लेकिन जिस पैमाने पर उन्होंने जायसी को विवेचित एवं मूल्यांकित किया वह तो सही रहा लेकिन तुलनात्मक प्रविधि में उनसे कुछ भूलें हो गई हैं। जायसी को कबीर से बड़ा दिखाने के चक्कर में उन्होंने लिखा है कि, "लेकिन

---

[26] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 105, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

एक और महत्त्वपूर्ण अर्थ में जायसी पहले कवि हैं। शायद कबीरदास कवि नहीं थे। संत ही अधिक थे। इसकी अधिक जानकारी हमें नहीं है कि कबीरदास को उनके जीवन - काल में उनके प्रशंसकों ने कवि कह कर संबोधित किया कि नहीं। उनके संत रूप के प्रभाव की कथाएँ तो काफी हैं – जीते जी, और मरकर भी। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को देखकर अनुमान यही होता है कि 'कवि' रूप में कबीरदास को संबोधित करने वाले कुछ विचित्र बात कहते हुए जान पड़ते हैं।"[27] सवाल यह है कि जिस कैनन को तोड़कर आप जायसी को कवि घोषित करना चाहते हैं वहीं कबीर के लिए उस कैनन को मजबूत कर रहे हैं। कबीर को किसी भी प्रकार का संत घोषित करने का जमाना अब बीत चुका है। किसी जमाने में सभी कवियों के साथ एक ऐसी घटना जोड़ दी जाती थी जिससे लोगों का ध्यान उनकी तरफ आकर्षित हो। आज कबीर को देखने का नजरिया बदल चुका है।

कबीर के चिंतन को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने पुस्तकें लिखी। लगभग एक दशक पहले पुरुषोत्तम अग्रवाल की पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' बहुत चर्चित हुई थी। इसी पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि, "मैंने कबीर को चकित होकर पढ़ने, या उनका मनमाना इस्तेमाल करने की नहीं, उन्हें ऐसे लगाव से पढ़ने की कोशिश की है, जिसमें जिरह के लिए विख्यात कवि से जिरह की भी पूरी गुंजाइश है। कबीर को धर्मगुरु बनाने की बजाय उनके कवि व्यक्तित्व के साथ संवाद करने की कोशिश की है।"[28] आधुनिक चिंतन पद्धति ने मध्यकालीन कवियों के संतवाद और सूफीवाद के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर सोचने – समझने का नजरिया प्रदान किया है। लेकिन जायसी को बड़ा भारी कवि सिद्ध करने के चक्कर में विजयदेवनारायण साही ने कबीर की कविता को समझने का प्रयास ही नहीं किया। इस अतिवादी आलोचना से भी बचने की आवश्यकता है जिसमें विवेचित कवि कुछ ऐसा दिखाई पड़ता है कि न तो उसके पहले कोई वैसा बड़ा कवि हुआ और न ही बाद में होने की संभावना है। जिस कबीर को साही

---

[27] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 02, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

[28] अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय – पुरुषोत्तम अग्रवाल, पृ. सं. – 7, सं. 2013, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

जी संत बताकर जायसी की महत्ता साबित कर रहे हैं वह कहीं एच. एच. विल्सन की दृष्टि के कायल तो नहीं ? एच. एच. विल्सन ने तो इस दृष्टि से एक कदम आगे जाकर लिखा है कि, "The doctrines of Kabir are taught in a great variety of works in different dialects of Hindi; They are the acknowledged composition of his disciples san successor, but they are mostly in the form of dialogues, and profess to be of his utterance, either in his own words, with the phrase, Kahahi Kabir, 'Kabir verily says' or to the same substance, which is marked by the qualification, Kahahi Kabir, 'Kabir has said' or they are given in the language of his followers, when the expression 'Das Kabir', the slave of Kabir is made use of."[29] तात्पर्य यह कि या तो कबीर ने स्वयं कुछ लिखा ही नहीं, यह जो कुछ लिखा हुआ दिख रहा है वह उनके अनुयायियों ने लिखा है या कबीर किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं था, यह एक पदवी की तरह है। लेकिन भक्तिकाव्य में ऐसे कवियों की संख्या अत्यधिक है जिन्होंने स्वयं को कभी चाकर, कभी दास और इसी तरह के न जाने कितने विशेषणों से नवाजा है। इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि उन्होंने वह काव्यपंक्ति स्वयं नहीं लिखी है। यह बात कभी चिंतन के केंद्र में भी नहीं रहा है।

विजयदेव नारायण साही ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के जिस बात से असहमति व्यक्त की है वह 'पद्मावत' के उत्तरार्ध भाग को लेकर है। इस भाग को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'इतिहास का वृत्तांत' संज्ञा दी है जबकि साही जी ने उसे 'इतिहास – लोक' माना है। उन्होंने लिखा है कि, "जिसे शुक्ल जी ने इतिहास का वृत्तांत कहा है, वह वस्तुतः इतिहास नहीं है। आधुनिक अर्थों में वह पूर्णतः यथार्थवाद भी नहीं है इसलिए हम उसे इतिहास या यथार्थ न कहकर थोड़ा अधिक लचीला नाम देंगे। कथा का उत्तरार्ध एक इतिहास - लोक निर्मित करता है। यह इतिहास - लोक पूर्वार्द्ध के लोक से भिन्न है जिसे हमने यूटोपिया, आलोक या सुविधा

[29] Sketch of the religious sects of the Hindus – H. H. WILSON, P. N. – 49, Ed. – 1846, Bishop's College Press, Calcutta

के लिए सिंघल लोक जैसा नाम दिया है।"[30] जिसे इन्होंने 'इतिहास – लोक' नाम दिया है वह कोई ऐसा अजूबा लोक नहीं है जो इतिहास से भिन्न हो। जायसी ग्रंथावली के सभी संपादकों ने इस बात का उल्लेख किया है कि यह कथा कोई जायसी द्वारा नहीं गढ़ी गयी है। यह लोक में बहुत पहले से प्रचलित है। इसका उल्लेख आचार्य रामचंद्र शुल ने बहुत पहले किया था। जिसे इन्होंने एक नई उपलब्धि की तरह प्रस्तुत किया है वह कोई नई बात नहीं है।

5.3 परवर्ती आलोचक वागीश शुक्ल का अवदान

जब दुनियाभर के साहित्य और संस्कृति के आलोचकों ने कैनन तोड़ा तब यह कैसे संभव था कि हिंदी आलोचना इससे अछूता रहे। साहित्य और संस्कृति अपने समय की राजनीति से जितनी प्रभावित होती है उतनी ही युगीन परिवेश से भी। यह परिवेश उस समय के हलचल को समझने की एक दृष्टि प्रदान करता है। प्रत्येक आलोचक अपने - अपने हिसाब से इसे समझता है। मलिक मुहम्मद जायसी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। साहित्यिक जगत में 'गार्सा द तासी' से लेकर अब तक यह बहस किसी न किसी रूप में जारी है। विजयदेव नारायण साही के बाद जायसी संबंधी आलोचन – जगत में नब्बे के दशक में ध्यान आकर्षित किया वागीश शुक्ल ने। इन्होंने 'आलोचना' त्रैमासिक पत्रिका में 1987 ई. में दो लेख लिखे। इनमें से पहला लेख जनवरी - मार्च, 1987 ई. में लिखा था जिसका शीर्षक है - तज़्जियतुल पद्मावत उर्फ कहा कि 'हम्ह किछु और न सूझा'। उनका दूसरा लेख इसी शीर्षक से 'नत्थी बे' शब्द जोड़कर अक्तूबर - दिसंबर 1987 ई. में 'आलोचना' पत्रिका में ही प्रकाशित हुआ था। इसके अलावा कहीं - कहीं छिटपुट लेख प्रकाशित होते रहे। लेकिन उनके चिंतन की वैचारिकी इन दो लेखों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। एक लेख उन्होंने 'कथा' पत्रिका के अक्तूबर - 2007 अंक में भी लिखा था, जिसका शीर्षक है – 'जायसी का अलाउद्दीन'।

[30] जायसी – विजयदेवनारायण साही, पृ. सं. – 50, सं. – 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

जिन निबंधों की चर्चा मैंने ऊपर की पंक्तियों में की है वे निबंध जायसी के चिंतन में एक नया अध्याय जोड़ने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास कितना सफल हो पाया है इसका मूल्यांकन आगे किया जाएगा। बहरहाल वागीश शुक्ल जी ने जायसी की परंपरा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, "मैं निरंतर यह कहना चाह रहा हूँ कि जायसी का काव्य हमारे लिए उस दुनिया का दरवाजा है जिसमें हमारे साहित्य के महान कवि अमीर खुसरो, मीर, सौदा, ग़ालिब और इकबाल हैं।"[31] जायसी का काव्य किस दुनिया का दरवाजा खोलता है यह अपनी – अपनी समझ का विषय है। लेकिन यह जरूर है कि एक ऐसी लंबी फेहरिस्त है, जिसकी तरफ वागीश शुक्ल का इशारा है, जिनके बिना हिंदी साहित्य का अध्ययन अधूरा माना जाएगा।

मलिक मुहम्मद जायसी को लेकर 'सूफी फकीर' बनाम 'विधिवत कवि' का आंदोलन सबसे पहले विजयदेव नारायण साही ने उठाया। इस आंदोलन में कई आलोचकों ने सहभागिता की है। इस आंदोलन में आलोचक दो खेमे में बंट गए थे। एक खेमा वह था जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, माताप्रसाद गुप्त और वासुदेवशरण अग्रवाल की बातों का समर्थन करता और दूसरा वह जो विजयदेव नारायण साही के पक्ष में अपना समर्थन देता था। विजयदेव नारायण साही के पक्ष में डॉ. रघुवंश तथा अन्य लोगों ने अपना समर्थन दिया था। वागीश शुक्ल पहले खेमे के समर्थक हैं। उन्होंने लिखा है कि, "सूफिया इकराम में जायसी को एक जगह उनके सभी अध्येताओं ने ग्रियर्सन से डॉ. अग्रवाल तक दी है। यह जगह रिवायात (सुनी हुई बातों) के आधार पर दी गई थी और इसके पीछे कोई दुरभिसंधि नहीं थी, केवल यह प्रयास था कि जायसी के कृतित्व को सूफी चिंतन और काव्य रचना की परंपरा में रखकर समझा जाए, और यह आशा थी कि इस प्रयास से इस कृतित्व को समझने में मदद मिलेगी।"[32] इन्होंने ग्रियर्सन और आचार्य शुक्ल के पहले से चली आ रही परंपरा का समर्थन किया है। इस समर्थन के लिए जिस तरह की स्थापना उन्होंने दी है वह यह कि, "श्रेष्ठ कविता का संबंध कहीं – न – कहीं ईश्वरीय शक्तियों से है, यह जनसाधारण का विचार रहा है और तुलसी, सूर, विद्यापति, कबीर, चंडीदास, मीरा से लेकर केशव तक सभी इस प्रकार की कथाओं से जुड़े हैं। आलोचना

---

[31] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 28,

[32] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 28

को इससे विचलित नहीं होना चाहिए।"[33] इस बात को खारिज नहीं किया जा सकता कि भक्तिकालीन कवियों के भीतर जितनी सामाजिक चेतना थी उससे तनिक भी कम भक्ति का भाव नहीं था। वहाँ भक्ति से किसी विशेष प्रकार की अड़चन नहीं होती थी। यह भक्ति का मार्ग ही था जिसके माध्यम से सभी ईश्वर के समक्ष बराबर स्थान पाते हैं। लेकिन यह भक्ति किसी विशेष वर्ग द्वारा प्रदत्त नहीं थी, इस वर्चस्व के मुक्ति की लड़ाई ही भक्तिकाल का अभिप्रेत रहा है।

जायसी द्वारा रचित जिन तीन प्रमुख ग्रन्थों की चर्चा की जाती है उसमें से एक 'अखरावट' भी है। इस ग्रंथ को बहुत से आलोचकों ने इस्लाम के मान्यताओं को स्थापित करने के लिए जायसी द्वारा लिखा हुआ बताते हैं। सामान्य सी बात है कि 'अखरावट' आखर शब्द से बना है जिसका संबंध अक्षर से है। हिंदी वर्णमाला के एक – एक अक्षर की व्याख्या भी इस ग्रंथ में शामिल है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि, "जायसी ने इस ग्रंथ (अखरावट) में हिंदी वर्णमाला के क्रम से प्रत्येक दोहा खंड को प्रारम्भ किया है। ये दोहा खंड संख्या में 53 हैं। सर्वप्रथम ईश्वर की वंदना है, इसके पश्चात सृष्टि की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन है। 'कुरान' के आधार पर जायसी ने सर्वप्रथम खुदा से नूर की उत्पत्ति लिखी है। इसी नूर से समग्र विश्व उत्पन्न हुआ है।"[34] चूंकि जायसी जिस पृष्ठभूमि से आते हैं वह उनके भीतर रची बसी थी। इससे उस युग का एक भी कवि मुक्त नहीं है। सभी कवियों के भीतर अपने पंथ, संप्रदाय एवं धर्म के विषय में कहीं – न – कहीं, अवचेतन में ही सही, एक बोध विद्यमान था। यह बोध उनके लिए किसी प्रकार की रुकावट नहीं खड़ा करता है। वागीश शुक्ल ने भी इस ग्रंथ के विषय में लिखा है कि, "अखरावट के विषय में यह स्वीकार किया जाए कि वह जायसी के 'दीक्षांत समारोह' के लिए प्रस्तुत की गई रचना है, 'क्रिएटिव राइटिंग इन अवधी' की भी परीक्षा और महदवी/ चिश्तिया / सूफी सिद्धांतों के ज्ञान की भी परीक्षा। अर्थात् जायसी ने अवधी का ज्ञान महदी जौनपुर के दल के साथ स्वात के बलोचिस्तान तक घूमते फिरते प्राप्त किया। उनके देहांत के बाद ये अवध

[33] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 29

[34] भक्ति काव्य का विकास (वैदिक भक्ति एवं भागवत भक्ति तथा हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति) – डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृ. सं. – 467, सं. – 1979, चौखंभा विद्याभावन प्रकाशन, वाराणसी

की ओर चल दिए और 'धरम अस्थान' जायस (जो असंभव नहीं कि महदी जौनपुर का जन्म – स्थान रहा हो या ऐसा जायसी ने समझा हो) आकर रहने लगे।"[35] इन्होंने अपने इस वक्तव्य के माध्यम से जायसी के जन्मस्थान अथवा कहीं से आकर जायस में रहने वाली बहस का विवेचनपूर्ण ढंग से जवाब दिया है। तात्पर्य यह कि मलिक मुहम्मद जायसी 'जायस' के रहने वाले नहीं थे।

वागीश शुक्ल ने अपने लेख में इस बात पर विशेष बल दिया है कि जायसी का संबंध महदी संप्रदाय से था। इसका उल्लेख उन्होंने जगह – जगह किया है। एक जगह उन्होंने जायसी के गुरु भाइयों के महदवी होने का संकेत दिया है। उन्होंने लिखा है कि, "अखरावट में शाहेवक्त का उल्लेख नहीं है और कुछ नाम जिनको जायसी की गुरु – परंपरा में शामिल किया गया है, उनके एकदम समकालीन हैं। उदाहरण के लिए, शैख बुरहान कालपीवाले का देहांत 970 हिजरी में हुआ और शैख अलहदाद या अल्ला दिया का इसके भी बाद। ये दोनों 'आईने अकबरी' में उल्लिखित हैं। तो यह भी संभव है कि ये सबके – सब जायसी की क्रमबद्ध गुरु परंपरा में न आते हों, कुछ उनके गुरु भाई हों और महदवी आंदोलन के प्रमुख 'महदी' हों।"[36] जायसी को महदी आंदोलन से जोड़कर देखना कितना तर्कपूर्ण और न्यायसंगत है इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

सीमाएँ

मलिक मुहम्मद जायसी संबंधी चिंतन के इतिहास में एक बहुत अजीबो – गरीब घटना है कि जितना जायसी के कृतित्व पर विचार नहीं किया गया है उससे कहीं ज्यादा उनके जीवन दर्शन पर विचार किया गया है। यह देखकर तब और दिक्कत महसूस होती है जब महान अंग्रेजी साहित्यकार टी. एस. इलियट ने 'Tradition and Individual talent' जैसा निबंध बहुत पहले लिख चुका हो फिर भी हिंदी साहित्य के आलोचक अपनी जड़ता छोड़ने के लिए तैयार न हों। वागीश शुक्ल के चिंतन की भी अपनी कुछ सीमाएं हैं

[35] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 34
[36] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 34

। किसी भी आलोचक के अपने कुछ आग्रह होते हैं जो उसकी सीमाओं को दर्शाते हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि वागीश शुक्ल ने जायसी के काव्य की आलोचना की जगह 'जायसी – नामा' लिखा है, जिसका संबंध जायसी के काव्य से न होकर उनके जीवन और दर्शन से है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि, "मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि अब तक का जायसी-नामा काटने में मैंने खुद भी जायसी-नामा लिखा है।"[37] इसीलिए उनके लेख में जायसी के काव्य – मर्म की अपेक्षा दर्शन का मर्म ज्यादा है जो कहीं – कहीं पठनीयता खो देता है। जिस महदी संप्रदाय से जायसी को जोड़ने का दावा इन्होंने किया वह कितना प्रासंगिक है ? इसका विचार करना बहुत जरूरी है। महदी आंदोलन की पृष्ठभूमि की चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। के. दामोदरन ने महदी आंदोलन के विषय में लिखा है कि, "महदी आंदोलन व्यापारियों, लकड़हारों, भिश्तियों, और आबादी के दूसरे गरीब हिस्सों में विशेष रूप से फ़ैल गया था वह इस आस्था पर आधारित था कि एक न्यायपूर्ण शासक आना चाहिए, जो वर्ग – भेद और जाति – भेद से मुक्त सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करे। इस्लाम में सुधार करने वालों के रूप में तत्कालीन सम्राट, उनके अफसरों और सामंतों के प्रति उनका दृष्टिकोण शत्रुतापूर्ण होता था। उनकी मुख्य आलोचना यह थी कि मुगल शासक इस्लाम के खिलाफ उदात्त सिद्धांतों से विमुख हो गए हैं। इस प्रकार महदी आंदोलन शोषण और उत्पीड़न के प्रति विरोध की अभिव्यक्ति था। स्वभावतः ही यह मुसलमानों के निर्धन वर्गों में विशेष लोकप्रिय हुआ।"[38] यह आंदोलन कुछ – कुछ संत काव्य आंदोलन की तरह था। लेकिन जिस तरह का प्रतिरोध संत कवियों में दिखाई पड़ता है वैसा सूफ़ी कवियों के यहाँ प्रायः नहीं मिलता है। जायसी ने स्वयं अपने 'पद्मावत' सहित अन्य ग्रन्थों में अपने शाहेवक्त की प्रशंसा की है। यदि वैसा कोई आग्रह रहता तो वे कम से कम यह तो नहीं ही कहते –

"दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।

बादसाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज॥"[39]

---

[37] आलोचना (जनवरी – मार्च' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 43

[38] भारतीय चिंतन परंपरा – के. दामोदरन, पृ. सं. – 322, सं. – अप्रैल 2001, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली

[39] जायसी ग्रंथावली – सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. – 193, सं. – 2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

वागीश शुक्ल ने जायसी की आलोचना के नाम पर भारतीय ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान का चमत्कार प्रस्तुत किया है। उन्होंने बड़ी मेहनत से यह बताया है कि, "जायसी ने अपने 'नायक' और 'नायिका' के जो जन्म, नक्षत्र विचारकर रखे हैं उनके अनुसार इस विवाह में कुल $16^{1/2}$ गुण बनते हैं जो ज्योतिष के अनुसार अत्यंत ही निंदनीय विवाह ठहरेगा। इस बात को समझने के लिए ज्योतिष के इन प्रचलित श्लोकों को ध्यान में रखना आवश्यक है - ... अर्थात यदि सद्भाकूट हो तो 16 गुण मेलापक का विवाह निंदनीय है, 20 (तक) का माध्यम है, 30 तक का श्रेष्ठ है और उसके बाद 36 तक का उत्तमोत्तम है। यदि दृष्टिकूट हो (यानी सद्भाकूट न हो) तो 20 का निंदनीय है, 25 तक का मध्यम है, 30 तक का श्रेष्ठ है और उसके बाद श्रेष्ठतर है।"[40] इस बात का उल्लेख स्वयं जायसी ने नहीं किया और न ही किसी जायसीविदों ने उन्हें इस पैरामीटर पर जबर्दस्ती फिट करने का प्रयास ही किया। जायसी ने सामान्य ढंग से उस समय की प्रचलित मान्यताओं का उल्लेख किया है जिसमें राशि आदि का उल्लेख मिलता है। लेकिन कहीं भीं उन्होंने इस ज्ञानकांड को अपना आधार नहीं बनाया है। केवल इतना ही नहीं वागीश शुक्ल ने तो अलाउद्दीन और पद्मावती का भी जन्म, नक्षत्र और गुण मेलापक पर बहुत सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है जिसका जायसी साहित्य की आलोचना से कोई सरोकार नहीं है।

5.4 निष्कर्ष

आलोचना किसी कवि के युग बोध के साथ – साथ अपने समय की मांग को भी प्रस्तुत करती है। यदि किसी आलोचना में यह दृष्टि विद्यमान नहीं है तो वह आलोचना चाहें जो कुछ हो आलोचना नहीं हो सकती। आज जिस तरह आलोचना की सामाजिकता तथा उसकी सार्थकता कमजोर होती जा रही है इससे भय उत्पन्न होता है। इस तरह की आलोचना न तो रचनाकार के साथ न्याय करती है और न ही पाठक के साथ। इसी तरफ की आलोचना को देखकर मैनेजर पाण्डेय ने कहा है कि, "आलोचना या तो सार्थक होती

[40] आलोचना (अक्तूबर – दिसंबर' 87) – सं. नामवर सिंह, पृ. सं. – 67

है या निरर्थक ।"[41] जायसी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है । विजयदेवनारायण साही ने जायसी को समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति से विवेचित किया है जबकि वागीश शुक्ल ने कहीं – कहीं समाजशास्त्रीय औजारों के साथ परंपरागत औजारों का प्रयोग किया है। वागीश शुक्ल ने अधिकतर साही जी के तथ्यों से टकराने का प्रयत्न किया है लेकिन उसमें बहुत सफलता हासिल नहीं हो पायी है। विजयदेव नारायण साही ने जायसी चिंतन में एक नया अध्याय जोड़ा है। उनके चिंतन ने इस परंपरा में फिर से एक नया विवाद खड़ा कर दिया। यह उस समय की मांग थी कि जायसी आलोचना के प्रतिमानीकरण को ठीक ढंग से जांचा और परखा जाए। इस आलोचना में वागीश शुक्ल ने भी महत्त्वपूर्ण काम किया है लेकिन उनकी दिशा आगे की तरफ बढ़ने की बजाय पीछे की तरफ ज्यादा रही है जिससे जायसी संबंधी विवाद और उलझता चला जाता है। यह बहुत जरूरी है कि किसी रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन की बजाय उसके रचनात्मकता और उसमें मौजूद समाज चिंतन पर विशेष बल दिया जाए। लेकिन आलोचक कभी – कभी बहुत नया और मौलिक चिंतन के चक्कर में आवश्यकता से अधिक जड़ीभूत हो जाते हैं। वागीश शुक्ल इसके अपवाद नहीं हैं। विजयदेव नारायण साही की दृष्टि जायसी के काव्य – कला, संवाद – योजना, भाषायी-पक्ष पर ज्यादा टिकी हुई है इसीलिए उनकी आलोचना अपनी सीमाओं के बावजूद भी ग्राह्य लगती है। उनकी दृष्टि इसी बात पर टिकी हुई है कि "पद्मावत में सूफी तत्व तो हैं, लेकिन वे कथा के प्रधान अंश नहीं हैं।"[42] आज प्रायः सभी आलोचक इस बात को स्वीकार करते हैं। अतः वागीश शुक्ल की अपेक्षा विजयदेव नारायण साही की आलोचना हमें अपनी तरफ ज्यादा आकर्षित करती है और हृदयग्राह्य भी है।

[41] आलोचना की सामाजिकता – मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. – 33, सं. – 2017, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
[42] जायसी – विजयदेव नारायण साही, पृ. सं. 51, सं. - 2012, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

छठवाँ अध्याय

उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य और जायसी का काव्य

6.1 भूमिका

6.2 उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य से आशय

6.3 समकालीन हिंदी आलोचक और जायसी का काव्य

I. नित्यानंद तिवारी

II. विजय बहादुर सिंह

III. राजकुमार

IV. रवि रंजन

6.4 निष्कर्ष

6.1 भूमिका

हिंदी आलोचना के मेयार समय के अनुसार बदलते रहे हैं। हालांकि यह बदलाव कई बार घातक सिद्ध हुआ है लेकिन फिर भी जो बदलता नहीं वह जड़ीभूत हो जाता है, अप्रासंगिक हो जाता है। जायसी संबंधी चिंतन का इतिहास कुछ पुराना है। इस चिंतन के अनेक पड़ावों में एक है – 'उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य और जायसी का काव्य'। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में साहित्यिक आलोचना में एक नया बदलाव आया। इसका उदय अंग्रेजी साहित्य से होते हुए अन्य सभी भाषाओं के साहित्यों में हुआ। इस दशक में एक ही साथ कई तरह के साहित्यिक आंदोलनों का उदय हुआ। इन आंदोलनों ने साहित्यिक कैनन को तोड़ा है। साहित्य सिद्धान्त अथवा चिंतन के क्षेत्र में एक परिवर्तन हुआ। इसी दशक में उत्तर – आधुनिकता, उत्तर – उपनिवेशवाद, उत्तर – संरचनवाद, विखंडनवाद, सबाल्टर्न ज्ञान-मीमांसा, स्त्रीवादी चिंतन एवं दलित चिंतन का उभार बड़ी तेजी से हुआ। इस चिंतन ने जहां एक तरफ समकालीन रचनाकारों को प्रभावित किया वहीं पुराने रचनाकारों के विषय में चिंतन के लिए भी एक नया आयाम प्रदान किया। इस चिंतन के प्रभाव से यह निश्चय हो गया कि साहित्य चिंतन के केंद्र में केवल प्रमुख रचनाकार अथवा प्रवृत्तियाँ ही नहीं होंगी। उस चिंतन के केंद्र में अब वे भी शामिल होंगे जो कभी फुटकल खाते में रख दिए गए थे। सबाल्टर्न ज्ञान – मीमांसा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस दिशा में गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक, शाहीद आमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय एवं रणजीत गुहा ने बहुत ही सुचिंतित एवं महत्वपूर्ण कार्य किया है।

उत्तर औपनिवेशिक विमर्शों ने चिंतन की पद्धति में बदलाव किया है। साहित्य अब केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं बल्कि हमारी संस्कृति एवं सभ्यता की निशानी भी है। यह हमें मानसिक गुलामी से मुक्त कराने का एक बेहतर विकल्प भी है। इसीलिए साहित्य समीक्षा केवल समीक्षा न होकर सभ्यता की समीक्षा भी है। उत्तर आधुनिक चिंतन में संस्कृति की चिंता बहुत ही गंभीर विषय के रूप में उभरी है, इसलिए साहित्य की समीक्षा संस्कृति की समीक्षा भी है। इस चिंतन में प्रवासन (Diaspora) ने बहुत महती भूमिका निभाई है। उपनिवेशकाल में भारत से अधिकाधिक मात्रा में प्रवासन हुआ है। यहाँ के लोग किसी अन्य औपनिवेशिक देश में जाकर मजदूरी का काम करते थे, जिसे गिरमिटिया मजदूर के नाम से जाना जाता है। इनके प्रवासन के साथ-साथ इनकी संस्कृति और सभ्यता का विकास भी उन देशों में हुआ जहां ये लोग गिरमिटिया मजदूर के

रूप में काम करते थे। यह अलग बात है की इनकी संस्कृति को हेय तथा अपनी संस्कृति को उच्च माना गया। यह उच्चताबोध कहीं-न-कहीं साम्राज्यवाद अथवा उपनिवेशवाद के कारण ही था। लेकिन धीरे – धीरे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही इस वर्चस्ववादी सत्ता (उपनिवेशवाद) के खिलाफ एक वैचारिकी तैयार हो चुकी थी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विउपनिवेशीकरण के कई कारणों में से सांस्कृतिक चेतना, अस्मिता बोध एवं नवोदित राष्ट्रों में राष्ट्रवाद एक प्रमुख कारण के रूप में उभरकर सामने आया था।

इस दौर के आलोचकों ने जायसी के साहित्य का मूल्यांकन भी किया है, लेकिन क्या इन आलोचकों ने इस उत्तर आधुनिक अथवा उत्तर औपनिवेशवादी चिंतन को अपने आलोचना का आधार बनाया है ? उत्तर औपनिवेशिक चिंतन के वे कौन से सूत्र हैं जिनके आधार पर जायसी के काव्य का मूल्यांकन किया जा सकता है ? इन तथ्यों के आलोक में इस दौर की जायसी संबंधी आलोचना की पड़ताल इस अध्याय में किया जाएगा।

उत्तर औपनिवेशिक समाज में साहित्य, संस्कृति और सभ्यता चिंतन का विकास हुआ है। जैसे-जैसे उपनिवेशी शासन-सत्ता और औपनिवेशिक ज्ञान का विरोध शुरू हुआ वैसे-वैसे इतिहास को पुनःपरिभाषित करने एवं पुनःसर्जित करने की चर्चा ज़ोरों पर चलने लगी। कई स्तरों पर यह चर्चा बहुत अच्छी लग सकती है लेकिन इसके खतरे बहुत ज्यादा हैं। यह चिंतन पद्धति एक तरफ किसी भी वर्चस्ववादी सत्ता को नकारती है लेकिन वहीं दूसरी तरफ उसके बरक्स एक नई शासन-सत्ता तथा अर्थ-व्यवस्था की कामना व्यक्त करती है। इस कारण साहित्य और संस्कृति चिंतन के विषय में उन्हीं बिन्दुओं को रेखांकित करने की जरूरत है जिससे इसकी मूल अवधारणा और उसके स्वरूप की रक्षा हो सके।

6.2 उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य से आशय

वैश्विक चिंतन के इतिहास में सामंतवाद के बाद दमन और शोषण की जिस नई व्यवस्था का विकास हुआ उसे साम्राज्यवाद (Imperialism) कहा जाता है। इस नई व्यवस्था ने सबसे पहले राज्यसत्ता पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। औपनिवेशिक शासन-सत्ता में एक तरफ वे देश थे जिनका विकास अबाध गति से

हो रहा था और दूसरी तरफ वे देश थे जिनका पतन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर बड़ी तेजी से हो रहा था। इस विकास का एक छोटा सा उदाहरण भारत और ब्रिटेन के संबंध में भी देखा जा सकता है। जिस सामाजिक विकास अथवा परिवर्तन की प्रक्रिया ने ब्रिटेन को समृद्ध किया उसी प्रक्रिया ने भारत को पिछड़ा बना दिया। इस संबंध में बिपन चंद्र ने लिखा है कि, "उसी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रिया ने, जिसने ब्रिटेन में औद्योगिक विकास तथा सामाजिक सांस्कृतिक उन्नति को जन्म दिया, औपनिवेशिक भारत में आर्थिक अल्पविकास तथा सामाजिक सांस्कृतिक पिछड़ेपन को जन्म दिया और बनाए रखा।"[1] इस असमानता के कारण उपनिवेशवादी देशों में असंतोष की व्याप्ति हो गई। उपनिवेशवादी देशों में आक्रांताओं ने न केवल आर्थिक स्तर पर यह असमानता का भाव फैलाया बल्कि राजनीति, साहित्य, संस्कृति और सभ्यता के स्तर पर भी इसी भाव का प्रसार किया। उपनिवेशवादी देशों में इस व्यवस्था के मुखालफत की कुलबुलाहट सबसे पहले आर्थिक स्तर पर सुनाई पड़ती है। यह बेचैनी बहुत पहले से महसूस की जा रही थी, लेकिन इसकी प्रबल अभिव्यक्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के समय दिखाई पड़ती है।

उपनिवेशवादी देशों में सबसे पहले आर्थिक स्वतंत्रता की माँग प्रबल हुई थी। इसका कारण यह था कि साम्राज्यवादी देशों ने अपने अधीन देशों की अर्थव्यवस्था का ध्यान नहीं रखा। इन साम्राज्यवादी देशों की सूची में ब्रिटेन का नाम शीर्ष पर था। भारत ब्रिटेन का एक उपनिवेश ही था। भारत की आर्थिक विपन्नता और ब्रिटेन की आर्थिक समृद्धि ने यहाँ के बुद्धिजीवियों को हतप्रभ कर दिया था। इस वैषम्य के मूल कारणों का पता लगाने के लिए अवकाशप्राप्त आई. सी. एस. अधिकारी जी.वी. जोशी ने 'भारत का आर्थिक इतिहास' लिखा। इस विश्लेषण में भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवेशीकरण की समूची प्रक्रिया को प्रस्तुत किया साथ ही निष्कर्ष के रूप में यह बताया कि भारत के आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा उपनिवेशवाद ही है। उन्होंने यह बताया है कि, "ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मूल इसी में निहित है कि भारतीय अर्थव्यवस्था हमेशा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था द्वारा शोषित होती रही है।"[2] इस शोषण के कारण ही भारत की दरिद्रता लगातार बढ़ती जा रही थी, सामान्य जनता की स्थिति हृदय विदारक हो गयी थी। शुरुआती दौर के नेताओं का बहुत बड़ा

[1] आधुनिक भारत – (सं.) बिपन चंद्र, पृ. सं. – 94, सं. – 2014, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
[2] भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – (सं.) बिपिन चंद्र, पृ. सं. – 65, सं. – फरवरी, 2015, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली

योगदान रहा कि उन लोगों ने औपनिवेशिक मानसिकता को गलत बताया और कहा कि, "गरीबी न ईश्वर की देन है, न यह हमारी नियति है, और न यह हमें विरासत में भोगनी है और न ही ऐसी बात है कि इसे दूर न किया जा सके।"[3] यह प्रक्रिया धीरे-धीरे ही आर्थिक क्षेत्र से होकर समूचे भारत में अन्य सभी क्षेत्रों में प्रचारित एवं प्रसारित हो रही थी। उस समय रेलवे का प्रयोग अधिकाधिक ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा ही धन उगाही के लिए किया जाता था। इस कार्य से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग बेहद दुःखी था । जी.वी. जोशी ने तो यहाँ तक कहा था कि, "रेलवे दरअसल ब्रिटिश उद्योगों के लिए भारत की तरफ से दी जाने वाली सहायता है।"[4] इस विश्लेषण का ही परिणाम था कि गांधी भी अपने चिंतन में रेलवे को भारत को कंगाल बनाने के प्रमुख कारणों में से एक मानते थे। उन्होंने लिखा है कि, "हिंदुस्तान को रेलों ने, वकीलों ने और डॉक्टरों ने कंगाल बना दिया है।"[5] भले आज हम अपनी सुविधाओं के मद्देनजर इस विचार को आधुनिकता विरोधी कह सकते हैं लेकिन औपनिवेशिक सत्ता द्वारा विकसित सभी वस्तुओं का विरोध जगजाहिर है। औपनिवेशिक शासन सत्ता का नतीजा हर हाल में गरीबी, भुखमरी, आकाल और पिछड़ापन था इसकी प्रतिक्रियास्वरूप ही उस शासन-व्यवस्था का विरोध हुआ। यह अकारण नहीं कि भारतीय नवजागरण के गहन अध्येता गजेन्द्र पाठक ने भी औपनिवेशिक सत्ता का मूल तत्व आर्थिक शोषण में ही निहित माना है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंदी नवजागरण' में लिखा है कि, "एक नीति के बजाय औपनिवेशिक मनःस्थिति को एक ढांचे के रूप में देखें तो उपनिवेशवाद एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा किसी देश का आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक शोषण तथा उत्पीड़न होता है। उपनिवेशवाद का मूल तत्व आर्थिक शोषण में निहित है।"[6] आर्थिक शोषण औपनिवेशिक शासन-सत्ता के शोषण का प्रस्थान बिन्दु है। यह और भी आश्चर्यजनक बात है कि भारतीय चिंतन में आर्थिक आत्मनिर्भरता की मांग के साथ ही उपनिवेशवाद की आलोचना आरंभ होती है। इसके बाद ही उपनिवेशवाद के सम्पूर्ण स्वरूप की आलोचना आरंभ हुई, जिसमें साहित्य, संस्कृति और ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों पर औपनिवेशिक सत्ता के आधिपत्य की आलोचना शामिल है।

---

[3] भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – (सं.) बिपिन चंद्र, पृ. सं. – 66, सं. – फरवरी, 2015, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली
[4] वही, पृ. सं. – 71
[5] हिंद स्वराज – मोहनदास करमचंद गांधी, पृ. सं. – 51, सं. – जनवरी, 2018, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद
[6] हिंदी नवजागरण – गजेन्द्र पाठक, पृ. सं. – 42, सं. – 2005, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

औपनिवेशिक गुलामी के प्रति घृणा का भाव उस युग का स्थायी भाव बन गया था। इसी भाव का विकास आगे के युग में भी होता रहा।

औपनिवेशिक शासन-सत्ता ने न केवल आर्थिक बल्कि राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी उपनिवेशी देशों को गर्त में धकेल दिया। ब्रिटेन ने भारतीयों के मन में आरंभ से ही ऐसी विचार-धारा का विकास करना चाहा था जिससे ये अपनी दासता को सहज ढंग से स्वीकार कर लें। इसके लिए प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में भी ब्रिटिश सत्ता की छवि को लाभदायक सत्ता के रूप में गढ़ा गया था, "प्राइमरी स्कूलों में भाषा की किताब में पहला पाठ ही होता था – 'ब्रिटिश शासन के लाभ' ।"[7] इस अध्याय के माध्यम से ब्रिटिश शासन को प्रजा-हितैषी और फलदायी शासन-सत्ता के रूप में व्याख्यायित किया गया था। यह प्रयास विभिन्न स्तरों पर जारी था और जब यह प्रयास अक्षर ज्ञान के समय से ही बच्चे के मन में बैठाया जाएगा तब यह निश्चित है कि एक समय के बाद यही सत्य प्रतीत होने लगेगा। औपनिवेशिक सत्ता ने कला, साहित्य, इतिहास और संस्कृति को भी राजनीति का हिस्सा बना दिया। इस प्रक्रिया में साहित्यकारों, कलाकारों एवं चिंतकों ने भी साम्राज्यवादी देशों का साथ दिया। सन् 1883 में फ्रांस का एक चित्रकार विलियम अडॉल्फ बुगरौ (William-Adolphe Bouguereau) ने एक पेंटिंग बनाई थी। अपनी इस पेंटिंग में उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता का अतिशय रूप में महिम-मंडन किया था।

[7] भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – (सं.) बिपिन चंद्र, पृ. सं. – 72, सं. – फरवरी, 2015, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली

इस पेंटिंग में जो युवती सभी बच्चों को स्तनपान करा रही है वह साम्राज्यवादी सत्ता का प्रतीक है और जो बच्चे स्तनपान कर रहे हैं वह उपनिवेशी देश के प्रतीक हैं जो अत्यंत भूखे और निरीह हैं । यह व्यवस्था कहीं – न – कहीं साम्राज्यवादी देशों के दमनात्मक रवैया या विश्व विजेता बनने की अंधी दौड़ को नजर-अंदाज करती है । इस प्रकार उपनिवेशवाद की जटिल व्यवस्था से तीसरी दुनिया के देश बेहद उत्पीड़ित और परेशान हुए। इस उत्पीड़न से बाहर निकले का प्रयास ही उत्तर उपनिवेशवाद की आवाज के रूप में सुनाई देती है। ऐसे चित्रकारों, साहित्यकारों एवं चिंतकों की सहायता से ही औपनिवेशिक शासन-सत्ता ने अपने क्रूरतम चेहरे को छुपाए रखा। यह आश्चर्यजनक नहीं कि जेम्स जॉल ने औपनिवेशिक सत्ता के नग्न स्वरूप की ठीक-ठीक पहचान की है, उन्होंने लिखा है कि, “नग्न औपनिवेशिक शोषण को भी वैज्ञानिक या मानवीय मुखौटे के साथ प्रस्तुत किया

जाता था ।"[8] यह शासन सत्ता हमेशा अपने कार्यों को परहितकारि और वैज्ञानिक साबित करने के लिए प्रयासरत रहती है। औपनिवेशिक शासन से मुक्ति तथा जातीय और स्वदेशी शासन व्यवस्था की मांग के साथ ही उत्तर औपनिवेशिक चिंतन की शुरुआत होती है।

उपनिवेशवाद से ऊपजा मोहभंग एवं घृणा के भाव ने नवोदित राष्ट्रों को सोचने पर मजबूर कर दिया। उन्हें इस बात की चिंता सताने लगी कि उपनिवेशवाद से मुक्ति का विकल्प क्या हो ? उपनिवेशवादी सत्ता के अवसान के बाद नवोदित राज्यों की शासन-सत्ता उन्हीं हाथों में थी जिनके भीतर औपनिवेशिक संस्कार कूट – कूट कर भरे हुए थे। यही वर्ग उस समय समृद्ध भी था। इस तरह से औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त होने के साथ ही आंतरिक उपनिवेशवाद ने जकड़ लिया। कहीं – कहीं इसकी पकड़ इतनी भयानक थी कि जनता ने विद्रोह कर दिया। इस अवधि में उपनिवेशवाद के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा होने लगी। उसके नग्न और शोषक स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया गया। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्तर औपनिवेशिक विमर्श का सूत्रपात होता है। इस प्रक्रिया के तहत विउपनिवेशीकृत (Decolonized) राज्यों की चेतना और संप्रभुता की चिंता अभिव्यक्त होती है। लेकिन इसके साथ ही इसकी विभिन्न चुनौतियाँ भी उजागर हुई हैं। राबर्ट जे.सी. युंग ने लिखा है कि, "The postcolonial is a dialectical concept that marks the broad historical facts of decolonization and the determined achievement of sovereignty – but also the realities of nations and people emerging into a new imperialistic context of economic and sometimes political domination."[9] युंग ने उत्तर उपनिवेशवाद को द्वन्द्वात्मक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया है। यह द्वंद्वात्मकता जहां एक तरफ विउपनिवेशीकरण और संप्रभुता से जुड़ा हुआ है तो वहीं दूसरी तरफ नवोदित राष्ट्रों की जनता का आर्थिक और राजनीतिक नव-साम्राज्यवाद के मकड़जाल में फंसे होने से जुड़ा है।

[8] यूरोप 1870 से - जेम्स जॉल (अनु. स्नेह महाजन), पृ. सं. – 91, सं. – 2008, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली

[9] Postcolonialism : An Historical Introduction – Robert J. C. Young, Page No. – 57, First Ed. – 2001, Blackwell Publishers, Massachusetts, USA

उत्तर-उपनिवेशवाद को उपनिवेशवाद का अगला चरण भी मान लिया जाता है। लेकिन जिस तरह से उपनिवेशवाद के मूल्यों को खारिज करते हुए उत्तर उपनिवेशवाद का प्रसार होता है उससे यह प्रतीत नहीं होता है कि उपनिवेशवाद का अगला चरण उत्तर उपनिवेशवाद है। उपनिवेशवाद का अगला चरण यदि नव उपनिवेशवाद को माना जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। दरअसल कई बार ऐसा होता है कि उत्तर उपनिवेशवाद की व्याख्या नव उपनिवेशवाद के मानकों पर कर दी जाती है, जबकि दोनों की वैचारिकी में व्यापक अंतर है। उपनिवेशवाद से मुक्ति के साथ ही नव-उपनिवेशवाद का प्रसार बड़ी तेजी से हुआ। उपनिवेशवाद जिस तरह से राज्यों पर प्रत्यक्ष रूप से अपना नियंत्रण स्थापित करता था उस प्रक्रिया को छोड़कर नव उपनिवेशवाद ने व्यक्ति मन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। नव-उपनिवेशवाद पश्चिमी – पूंजीवाद और पूर्व – उपनिवेशी राज्यों द्वारा नवोदित स्वतंत्र राज्यों पर अप्रत्यक्ष और सूक्ष्म तरीके से अपना नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न करता है। जबकि उत्तर उपनिवेशवाद अंतरानुशासनिक ज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत यूरोपीय उपनिवेशवाद और उसके उपनिवेशित देशों की राजनीति, इतिहास, संस्कृति और समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है, "Postcolonialism (covering the terms 'postcolonial studies' 'postcolonial theory' and 'postcolonial literature') is an interdisciplinary academic field devoted to the study of European colonialism and its impact on the society, culture, history and politics of the formerly colonized regions such as the African continent, the Caribbean, the Middle East, South-Asia and Pacific."[10] उत्तर उपनिवेशवाद के विभिन्न क्षेत्र हैं। यह अध्ययन का एक व्यापक फ़लक प्रदान करता है। इसके माध्यम से ही सबाल्टर्न विमर्श जैसा मुद्दा खड़ा हुआ है। डॉ. अमरनाथ ने उत्तर उपनिवेशवाद के मूल में स्वत्व तथा अस्मिता की तलाश को माना है, "उत्तर उपनिवेशवाद की अवधारणा यूरोपीय उपनिवेश से आज़ाद होने वाले देशों में स्वत्व की तलाश के परिणामस्वरूप पैदा हुई है। अपनी अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान को हासिल करने की छटपटाहट उत्तर उपनिवेशवाद के केंद्र में है।"[11] अन्य विभिन्न मुद्दों की तरह यह

[10] Dictionary of Literary Term & Literary Theory – J. A. Cuddon & M. A. R. Habib, Page No. – 550, 5th Ed. – 2014, Penguin Books, New Delhi

[11] हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली – डॉ. अमरनाथ, पृ. सं. – 80, सं. – 2016, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

भी उत्तर उपनिवेशवाद के चिंतन का एक मुद्दा था। उस समय स्वतंत्र हुए नवोदित राज्यों में इसकी भावना प्रबल रूप में मौजूद थी। कुछ इसी तरह का चिंतन सुधीश पचौरी ने भी अभिव्यक्त किया है, "उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श वह विमर्श है जो यूरोपीय उपनिवेशों के आजाद होने के पश्चात स्वत्व की तलाश और छटपटाहट में पैदा होता है और जो किसी तरह से अपने स्वभाव को पाने में औपनिवेशिक अवशेषों को एक बड़ी बाधा पाता है।"[12] स्वत्व की तलाश एक प्रमुख प्रत्यय के रूप में उत्तर औपनिवेशिक चिंतन में उभरा।

उत्तर-उपनिवेशवाद जहां एक तरफ राजनीतिक, आर्थिक विउपनिवेशन की प्रक्रिया है तो वहीं दूसरी तरफ बौद्धिक और सांस्कृतिक विउपनिवेशन की भी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की जमीन नवजागरण युग में ही तैयार हो चुकी थी। एम. ए. आर. हबीब ने लिखा है कि, "Postcolonial literature and criticism arose both during and after the struggles of many nations in Africa, Asia, Latin America (now referred to as the 'tricontinent' rather than the 'third world'), and elsewhere for independence from colonial rule."[13] स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई के साथ ही उपनिवेश से मुक्ति की कामना भारतवासियों में भी प्रबल थी। औपनिवेशिक काल में सभ्यता, संस्कृति, बुद्धिवाद, विज्ञानवाद और आधुनिक जीवन दृष्टि का प्रतीक यूरोप को बनाया गया। इस यूरोकेंद्रित बुद्धिवाद से तीसरी दुनिया के सभी देश संघर्षरत थे। उत्तर उपनिवेशवाद ने तो यूरोपीय मार्क्सवाद को भी त्याज्य माना।

वैचारिक स्तर पर उत्तर उपनिवेशवाद और प्राच्यवाद एक ही काम कर रहे थे। दोनों का उदय लगभग एक ही समय का है। इन दोनों मतवादों ने बौद्धिक गुलामी को नकारा है। विश्व चिंतन में 'प्राच्यवाद' को प्रस्तुत करने वाले एडवर्ड डब्लू. सईद ने अपने चिंतन से एक नई क्रांति का आगाज किया। प्राच्यवाद को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "प्राच्यवाद चिंतन की एक ऐसी शैली है जो 'पूरब' और 'पश्चिम' के बीच अस्तित्व और ज्ञान के आधार पर किए गए विभाजन पर आधारित है। ... थोड़े में कहें तो प्राच्यवाद

[12] निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद – सुधीश पचौरी, पृ. सं. – 40, सं. – 2003, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

[13] Literary Criticism from Plato to the Present : An Introduction – M. A. R. Habib, Page No. – 271, Ed. – 2011, Willy-Blackwell Publication

पूरब के ऊपर शासन करने, उसे संरचित करने और उसके ऊपर अधिकार जमाने की पश्चिमी शैली है।"[14] जिस प्रकार सईद ने प्राच्यवाद की बारीकियों को समझने तथा उसकी आलोचना करने का बेड़ा उठाया उसी प्रकार उपनिवेशवाद को समझने और उसकी आलोचना करने का प्रयास उत्तर उपनिवेशवादी युग में सबसे ज्यादा हुआ।

उत्तर-उपनिवेशवाद एक ही साथ विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त औपनिवेशिक मानसिकता से बहस करता है। एक विशेष काल अवधि में सत्ता (शक्ति) के बल पर जनता के ऊपर थोपी गई मानसिकता, विचार और दार्शनिकता से मुक्ति का प्रयास ही इस विमर्श का केंद्रीय ढांचा है। शंभुनाथ ने उत्तर औपनिवेशिक विमर्श को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि, "उत्तर औपनिवेशिक विमर्श दरअसल बुद्धिवाद, धर्मनिरपेक्षता, सांस्कृतिक बहुलतावाद, राष्ट्रीय अखंडता, स्वातंत्र्य चेतना, उदात्त भाव जगत और सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में औपनिवेशिक अतीत की पुनर्यात्रा है, उससे जिरह है। इससे ऐतिहासिक स्मृतिलोप के वर्तमान युग में उन दिनों की यादें ताजा होती हैं, जब उपनिवेशवाद एक चुनौती के रूप में साफ – साफ दिखता था।"[15] औपनिवेशिक सत्ता ने उपनिवेशी देशों को केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि मानसिक गुलाम भी बनाया। इस गुलामी के विषय में पवन कुमार वर्मा ने लिखा है कि, "अतीत में जो भी औपनिवेशिक हुकूमतें थीं, उन्हें न सिर्फ शासितों पर नियंत्रण कायम करने में सफलता मिली बल्कि उनकी असली सफलता दिमाग के औपनिवेशीकरण में रही और इस मामले में शायद अंग्रेजों को सबसे ज्यादा कामयाबी मिली।"[16] मानसिक गुलाम बनाने की प्रक्रिया में मैकाले की शिक्षा नीति ने अपूर्व सहयोग किया। इस गुलामी को बनाए रखने के लिए अंग्रेजों ने ही आई. सी. एस. अभिजनों को पैदा किया, जो शारीरिक रूप से तो भारतीय थे लेकिन मानसिक रूप से अंग्रेज़। एक अंग्रेज़ विद्वान ने इन अधिकारियों के विषय में टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, "विचार और अनुभूति के स्तर पर (ये) अंग्रेज़ से भी ज्यादा अंग्रेज़ होते थे।"[17] इस अंग्रेज़ियत के वर्चस्व तथा उसकी मानसिक गुलामी से मुक्ति का प्रयास ही उत्तर औपनिवेशिक विमर्श की प्राथमिक सीढ़ी है।

---

[14] वर्चस्व और प्रतिरोध – एडवर्ड डब्लू. सईद (अनु. रामकीर्ति शुक्ल), पृ. सं. – 37-38, सं. – 2015, नयी किताब प्रकाशन, नयी दिल्ली

[15] दुस्समय में साहित्य : परंपरा का पुनर्मूल्यांकन – शंभुनाथ, पृ. सं. – 54, सं. – 2002, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

[16] भारतीयता की ओर : संस्कृति और अस्मिता की अधूरी क्रांति – पवन कुमार वर्मा, पृ. सं. – 18, सं. – 2010, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली

[17] वही, पृ. सं. - 4

उत्तर-औपनिवेशिक चिंतन से प्रभावित होकर कुछ आलचकों ने साहित्य सर्जन का भी कार्य किया। फ्रांसीसी साहित्यकार फ्रांज फैनन ने 1952 में अपनी पहली पुस्तक 'ब्लैक स्किन, व्हाइट मास्क्स' लिखी और इसके बाद ही 1961 में 'द रैचेड ऑफ द अर्थ' लिखी। इन दोनों पुस्तकों के प्रकाशन के बाद उत्तर औपनिवेशिक चिंतन को एक नया आयाम मिला। वस्तुतः इन पुस्तकों में औपनिवेशिक सत्ता के विभिन्न हथकंडों के विषय में विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। दरअसल किसी भी जाति अथवा देश की समूची जनता को सांस्कृतिक तौर पर गुलाम नहीं बनाया जा सकता है, लेकिन उन्हें गुलाम बनाने के लिए साम्राज्यवादी देशों ने एक विशेष प्रक्रिया से औपनिवेशिक अभिजात वर्ग पैदा किया। इस वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया के विषय में ज्यां पाल सार्त्र ने फ्रांज फैनन की पुस्तक 'द रैचेड ऑफ द अर्थ' की भूमिका में लिखा है कि, "The European elite undertook to manufacture a native elite. They picked out promising adolescents; they branded them, as they stuffed their mouths full with high-sounding phrases, grand glutinous words that stuck to the teeth. After a short stay in the mother country they were sent home, whitewashed. These walking lies had nothing left to say to their brothers; they only echoed. From Parish, from London, from Amsterdam we would utter the words 'Parthenon! Brotherhood!' and somewhere in Africa or Asia lips would open '… thenon! … therhood!"[18] सार्त्र ने यूरोपीय संभ्रांत वर्ग के छाया के रूप में विकसित हो रहे औपनिवेशिक आभिजात वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप का सशक्त और सटीक विश्लेषण किया है। इस औपनिवेशिक अभिजातवर्ग ने पश्चिमी (औपनिवेशिक/यूरोप निर्मित) चश्मे के माध्यम से ही पूरी दुनिया को देखा और स्वयं को भी जाना। यूरोप निर्मित दृष्टि का विरोध उत्तर औपनिवेशिक चिंतकों में जगह-जगह पर दिखाई देता है।

उत्तर-उपनिवेशवादी दृष्टिकोण यूरोपीय मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं करता है। इसके निहित कारण मौजूद हैं। 1857 की क्रांति के समय और उससे पहले तथा बाद में भी अंग्रेजों द्वारा जिस तरह का बर्बर और निरंकुश माहौल भारत में तैयार किया गया था इससे सभी वाकिफ थे। यहाँ तक कि मार्क्स भी इस बात से

---

[18] The Wretched of the Earth – Frantz Fanon, Page No. – 7, Ed. – 1961, Grove Press, New York

अनजान नहीं थे कि किस तरह से भारत से निर्यात होने वाले वस्तुओं में गिरावट आई थी और ब्रिटेन से भारत में आयात होने वाले कपड़ों का परिमाण कितना बढ़ गया था। लेकिन यह सब होने के बावजूद मार्क्स '1857-59 राष्ट्रीय-मुक्ति विद्रोह' के संबंध में जो लेख 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' में लिखा उसमें कई जगह औपनिवेशिक सत्ता को सामाजिक क्रांति का अग्रदूत घोषित किया है। जिस कुटीर उद्योग से हजारों भारतीय जनता का जीवन यापन होता था उसे अंग्रेजों ने अपने बाजार के विस्तार के लिए तहस-नहस कर दिया। इस प्रक्रिया के परिणाम बताते हुए मार्क्स ने लिखा है कि, "अंग्रेजों के हस्तक्षेप ने सूत कातने वाले को लंकाशायर में और बुनकर को बंगाल में रखकर, या हिन्दुस्तानी सूत कातने वाले और बुनकर दोनों का सफाया करके – उनके आर्थिक आधार को नष्ट करके – इन छोटी-छोटी अर्द्ध बर्बर, अर्द्ध सभ्य बस्तियों को छिन्न-विछिन्न कर दिया है और इस तरह उसने एशिया की महानतम, और सच कहा जाए तो एकमात्र सामाजिक क्रांति कर डाली है।"[19] दरअसल जिस बात को मार्क्स सामाजिक क्रांति कह रहे हैं वह अंततः लूट, बर्बरता और औपनिवेशिक वर्चस्व की दास्तान है। किसी भी इतिहासकार ने औपनिवेशिक सत्ता को सामाजिक क्रांति नहीं माना है। इसे मार्क्स की फिसलन कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उत्तर-उपनिवेशवादी चिंतकों में न्गुगी वा थ्योंगो, चिनुआ अचेबे, एडवर्ड डब्लू. सईद, गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक, होमी के. भाभा, आर. शिवकुमार, दीपेश चक्रवर्ती आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन चिंतकों ने औपनिवेशिक शासन-सत्ता की निर्मम आलोचना की है। उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद एवं नव उपनिवेशवाद नवोदित राष्ट्रों तथा पश्चिमी शोषणकारी और दमनकारी देशों के आपसी गैर बराबरी सम्बन्धों पर ज़ोर देते हैं, जबकि उत्तर उपनिवेशवाद न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक स्तर पर सामाजिक न्याय को स्थापित करने के विचार पर ज़ोर देता है। उत्तर उपनिवेशवाद के दौर में देश के भीतर वंचित समूहों की समस्याओं को आंतरिक उपनिवेशवाद की संज्ञा प्रदान की गई। इसीलिए यह माना जाता है कि उत्तर उपनिवेशवाद न केवल बाह्य औपनिवेशिक विचार से जूझता है बल्कि वह आंतरिक उपनिवेशवाद से भी जिरह करता है। इस विचार से मिलता-जुलता विचार लेनिन ने 1925 के आस-पास प्रस्तुत किया था, जिसे

[19] भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857-59 – कार्ल मार्क्स & फ्रे. एंगेल्स, पृ. सं. – 13-14, सं. – 1973, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

मार्क्सवाद की भाषा में 'पक्षधरता की राजनीति' अथवा 'पक्षधरता का साहित्य' कहा जाता है। उत्तर-औपनिवेशिक विमर्शकारों ने पुनर्विचार (Rethinking) की अवधारणा व्यक्त की, जिसके माध्यम से औपनिवेशिक चश्मे से देखे गए इतिहास पर पुनर्विचार की प्रक्रिया आरंभ हो सके। इस अवधारणा के माध्यम से इतिहास में परिधि पर धकेल दिए गए विचार, व्यक्ति, जाति, धर्म और लिंग पर नए ढंग से सोचने – समझने की योजना बनाई गई। इस इतिहास विमर्श को सबाल्टर्न के नाम से जाना जाता है। लेकिन इस योजना अथवा विमर्श की दुरूहताओं को देखते हुए कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने इसे कभी सफल न हो सकने वाली योजना कहा है। इस आधुनिक चिंतन ने अतीत को देखने का एक नया दृष्टिकोण विकसित किया है। लेकिन आगे चलकर मार्क्सवादी चिंतन के व्यापकत्व, भूमंडलीकरण की अवधारणा, स्त्रीवादी चिंतन का अलग रुख तथा एल.जी.बी.टी.क्यू. विमर्श की उपस्थिति ने एक तरह से इसके लिए संकट पैदा किया है तो दूसरी तरफ इस चिंतन का विकास भी किया है। यह सही है कि इस चिंतन ने अपने पूर्वजों (रचनाकारों एवं इतिहासकारों) के विषय में सोचने समझने की दृष्टि प्रदान की है। इन्हीं विमर्शों के आलोक में जायसी को पुनः देखा और परखा गया है। एक तरफ वह समाज है जो सदियों से मुख्य धारा से अलग रहा है और एक वह भी समाज है जिसने अपनी सत्ता कायम रखने के लिए विभिन्न हथकंडे अपनाए हैं। मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में समकालीन आलोचकों ने जो चिंतन प्रस्तुत किया है उसकी समीक्षा भी जरूरी है। अतः उत्तर औपनिवेशिक चिंतन में जायसी के रचना का पुनर्पाठ और पुनर्विचार की संभावनाओं पर विचार करना अनिवार्य है।

6.3 समकालीन हिंदी आलोचक और जायसी का काव्य

हिंदी आलोचना का स्वरूप समय और युग के मानदंड पर बदलता रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो उसकी पठनीयता नीरस और बोझिल हो जाती। युगीन संदर्भों में वही कवि प्रासंगिक हो सकता है जिसके पाठ में तदयुगीन समस्याओं से उलझने और उन्हें प्रश्नांकित करने की क्षमता हो। उसी कवि को कालजयी माना जाता है जिसके साहित्य में अपने ऐतिहासिक युग का प्रतिबिंबन अत्यधिक स्पष्ट होता है। साहित्य का इतिहास मात्र पाठ नहीं है, और न ही कहानी है, बल्कि साहित्य का इतिहास एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे हम भूल नहीं सकते, लेकिन हम उसकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए स्मृतिभ्रंश (Dementia)

के युग में यह जरूरी है कि उसका पाठ विभिन्न दृष्टियों से किया जाए। इस क्रम में हिंदी के उत्तर औपनिवेशिक आलोचना और विभिन्न आधुनिक विमर्शों की दृष्टि से जायसी संबंधी मान्यताओं की समीक्षा निम्न है –

i. नित्यानंद तिवारी

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का विकास केवल प्रवृत्तिगत रूप में नहीं हुआ है। वह एक क्रांति अथवा जनांदोलन भी है। इस युग में पहली बार किसी सामाजिक सत्ता के वर्चस्व को नकारने का भाव दृष्टिगोचर होता है। इस युग के कवियों की पहली शर्त यही कि भक्ति के धरातल पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। यह सामंतवादी सत्ता के खिलाफ विद्रोह भी है और अपने स्वत्व की तलाश भी। उस युग का एक मामूली कवि 'कुंभनदास' भी राजसत्ता को अपने 'हरि नाम' से तुच्छ मानता है। एक अर्थ में वे उस सामाजिक संरचन में व्याप्त उस वर्चस्व (Social Hegemony) के खिलाफ अपने अस्तित्व का उद्घोष करता है जिसकी चिंता उत्तर उपनिवेशवादी चिंतकों ने अभिव्यक्त की है। जाहिर बात है कि इस दृष्टि से देखने पर भक्ति केवल प्रवृत्ति का मामला न होकर सामाजिक सत्ता (Social Being) अर्थात मानवीय अनुभव का प्राणयुक्त नैसर्गिक तत्व तथा समाज की चेतना के रूपों के बीच व्याप्त भेद को प्रश्नांकित करने के रूप में दिखाई देता है। यह प्रवृत्ति उस युग के सभी कवियों में पर्याप्त मात्र में पायी जाती है। जायसी में तो अपनी संस्कृति तथा अस्मिता की तलाश व्यापक रूप में पायी जाती है। पद्मावत की महिला पात्रों में अपने अस्तित्व की चिंता तथा मध्यकालीन समाज की संरचना में स्त्रियों की पराधीनता तथा पुरुष-वर्चस्व समाज से मुक्ति की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है। नित्यानंद तिवारी ने भी अपने चिंतन में यह प्रस्तावित किया है कि भक्तिकाल के धार्मिक विचार का अध्ययन भौतिक आधार पर हो और यह मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन की आधुनिक दृष्टि है, "भक्ति साहित्य या मध्ययुगीन साहित्य में जो धार्मिक-आध्यात्मिक विचार वस्तु है, उसके भौतिक आधारों और भूमिकाओं कि खोज करना आधुनिक दृष्टि से उस साहित्य को पढ़ना है।"[20] मध्ययुगीन साहित्य में वर्णित धार्मिकता के स्वरूप की युगानुकूल नवीन व्याख्या ही उस युग के काव्य का आधुनिक पाठ कहा जाएगा।

[20] मध्यकालीन साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद तिवारी, पृ. सं. – 11, सं. – 2015, साहित्य भंडार, इलाहाबाद

'पद्मावत' में लोकस्वभाव के अभिव्यक्ति तथा उसी अंतर्दृष्टि की गहराई अत्यंत व्यापक है। उसके इस व्यापकत्व के कारण ही उसकी तुलना 'रामचरितमानस' से की जाती है। इस संबंध में नित्यानंद तिवारी ने लिखा है कि, "'मानस' के बाद 'पद्मावत' दूसरी महान रचना है जिसमें लोककथा और लोकस्वभाव गहराई में धंसा है।"[21] यह कथन रचनाकार की गहन विवेचन दृष्टि और सूक्ष्म काल्पनिक विवेक का द्योतक है। जायसी ने केवल समाज का प्रतिबिम्बन ही नहीं किया बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था में परिव्याप्त अनेक अवगुणों पर प्रश्न चिन्ह भी उठाया है। जिस तरह आज समाज में किसी भी प्रकार के अत्याचार का विरोध करने का अधिकार प्राप्त है, इस तरह का कोई अधिकार मध्यकालीन समाज में मौजूद नहीं था। उत्तर औपनिवेशिक चिंतन जिस तरह से औपनिवेशिक व्यवस्था की दुर्दांतता की पहचान करता है उसी तरह से जायसी अपने स्त्री पात्रों के भीतर ऐसी दृष्टि का विकास करते हैं जिससे वे अपने पति/स्वामी के पुरुषवादी मानसिकता तथा दृष्टिकोण की पहचान करती है।

भक्तिकालीन साहित्य में कई ऐसे तत्व मौजूद हैं जो एक नई व्याख्या तथा नई चिंतन पद्धति के विकास की मांग करते हैं। उन विभिन्न विषयों में से 'पद्मावत' के एक खंड 'नागमती-सुआ खंड' को विवेचन के लिए नित्यानंद तिवारी ने चुना है। इस खंड के विषय में उन्होंने लिखा है कि, "'नागमती-सुआ खंड' में सत्ता का संघर्ष नहीं है। वहाँ प्रश्न की वास्तविकता और अवास्तविकता के पहचान का संघर्ष है। नागमती का पति का प्रिय होना नहीं, दुनिया की सबसे सुंदर स्त्री होना महत्त्वपूर्ण है।"[22] नागमती जब अपने सौन्दर्य के अतिरेक में यह कहती है कि,

"भलेहि सो और पिआरी नाहाँ।

मोरे रूप कि कोई जग माहाँ॥"[23]

यहाँ नागमती का दुहरा चरित्र लक्षित होता है, एक तरफ तो वह उस युग के प्रभु वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जबकि दूसरी तरफ अपने सौन्दर्य के मानक में किसी भी प्रकार के पुरुष-वर्चस्व को नकार देती है।

---

[21] मध्यकालीन साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद तिवारी, पृ. सं. – 79, सं. – 2015, साहित्य भंडार, इलाहाबाद

[22] भक्ति साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद तिवारी, आलोचना (सं. – नामवर सिंह), अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. – 65

[23] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 81, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

उसका मानना है कि भले ही आप अपने पति की अत्यधिक प्यारी हो सकती हैं लेकिन इस जग में मेरे जैसा रूपवान कोई नहीं है तात्पर्य यह कि मैं अपने रूप के बदौलत सबकी प्यारी हो सकती हूँ। इस दूसरे व्याख्या के आलोक में यह देखा जा सकता है कि नागमती अपनी अस्मिता को किसी और के साथ जोड़कर देखने की पक्षधर नहीं है। वह अपने स्वत्व और अस्तित्व की बात करती है जिससे बार-बार मुंह मोड़ लिया जाता है। आज लोकतंत्र के युग में नागमती के बातों का कुछ-कुछ अर्थ साफ हो सका है तब यह कैसे संभव था कि मध्ययुगीन समाज के आईने में देखने वाले आलोचक व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की भाषा को समझ सकते। एक तरफ तो वह उस पति के कृपापूर्ण दृष्टि को सौन्दर्य के मानक से अलगा देना चाहती है जबकि तोता उसी को सौन्दर्य का निर्णायक बिन्दु मानता है और कहता है,

"लोनि बिलोनि तहाँ को कहा।

लोनी सोइ कत जेहि चहा॥"[24]

तोता रानी के इस अटपटे सवाल पर हँसता है। उसे लगता है कि नागमती बहकी-बहकी बातें कर रही है। वह नागमती को इसी कारण सौन्दर्य का पाठ पढ़ाता है और बताता है कि रूपवती वही स्त्री होती है जिसे उसका पति चाहता हो। समाज निर्मिति में जिस पुरुष वर्चस्व की चर्चा बार-बार उठाई गई है उसी का प्रतिनिधित्व वह सुआ करता है, लेकिन इसके साथ ही वह आध्यात्म स्तर पर गुरु का प्रतीक बनकर उभरता है।

आधुनिकता की अवधारणा मध्ययुगीन सत्ता-संरचना को ध्वस्त करती है और उसकी जगह नए प्रत्यय का निर्माण करती है। इसे इस रूप में भी समझा जा सकता' है कि जिस प्रकार मध्ययुगीन समाज में ईश्वर केंद्र में थे ठीक उसी प्रकार आधुनिक समाज में मनुष्य केंद्र में आत है। विश्वास और आस्था की जगह पर विवेक और तर्कवाद का प्रचलन तेजी से बढ़ता है, धर्म के स्थान पर विज्ञान, जगत के स्थान पर समाज, जीवन के स्थान पर व्यक्ति और इतिहास, शास्त्र की जगह ले लेता है। आधुनिकता के इस पैमाने पर मध्ययुगीन समाज विभिन्न तरह के पिछड़ेपन से जूझता नज़र आता है। इस युग के कवियों में जितनी 'आध्यात्मिकता' की अभिव्यक्ति मिलती है उतनी ही प्रबल मात्र में मुगल दरबारों में 'काम' के प्रति आसक्ति का भाव दिखाई

[24] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 82, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

पड़ता है। ये दोनों भाव नारी जीवन को ही अव्यवस्थित कर देते थे। पति यदि आध्यामिकता की तरफ ज्यादा आसक्त हो जाता था तो वह संसार से विरक्त होकर संयासी बन जाता था और यदि उसकी आसक्ति 'काम' के प्रति ज्यादा हो जाती थी तब वह अपना सारा संसार छोड़कर उसे प्राप्त करने के लिए निकल जाता था, दोनों स्थितियों में नारी का ही जीवन अधर में फंस जाता था। उस युग की सामाजिक निर्मिति के हिसाब से स्वतंत्र नारी का कोई अस्तित्व नहीं था। कुछ स्त्रियों ने इसके खिलाफ लड़ाई लड़ी तो उन्हें आउटसाइडर (अजनबी) मान लिया गया। इसलिए मध्यकालीन नारी के बारे में विचार करते हुए नित्यानन्द तिवारी ने लिखा है कि, "मध्ययुगीन नारी की जिंदगी में 'आध्यात्म' और 'काम' दोनों ही 'डर' की मानसिक संरचना करते हैं। इसी डर से नागमती तोते को मारने का आदेश देती है।"[25] इस भय के कारण ही उस युग की स्त्रियाँ पुरुष द्वारा निर्मित मानकों पर अनुशासित रहने को मजबूर थीं। यदि ऐसा नहीं होता तो रत्नसेन ऐसा फरमान नागमती को नहीं सुनाता,

"कै परान घट आनहु मती।
कै चलि होहु सुआ सँग सती॥
जनि जानहु कै औगुन मँदिर होइ सुख साज।
आएसु मेटि कंत कर कांकर भा न अकाज॥"[26]

यह अभिव्यक्ति न केवल रत्नसेन की है बल्कि उसके माध्यम से पूरा मध्ययुगीन समाज बोल रहा है। यह फरमान किसी नौकरानी अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं दिया जा रहा है जिसका शासन सत्ता में कोई स्थान नहीं है बल्कि उस राज्य के महारानी को यह फरमान सुनाया जा रहा है, जिसे राज्य में अनेक तरह के प्रशासनिक अधिकार होते हैं। इस स्थिति को देखते हुए नित्यानन्द तिवारी ने उस युग में स्त्रियों के अधिकार और उनकी सामाजिक हैसियत के विषय में लिखा है कि, "उसकी (नागमती की) विशेष राजकीय स्थिति के बावजूद, नारी होने के कारण, उसकी हैसियत नगण्य है। यह एक पटरानी की स्थिति है। फिर सामान्य नारियों की

[25] भक्ति साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद तिवारी, आलोचना (सं. – नामवर सिंह), अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. – 65
[26] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 86, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

भयावह स्थिति की कल्पना आसानी से की जा सकती है।"[27] इस भयावह स्थिति का वर्णन उस युग के सभी कवियों के यहाँ मौजूद है। साहित्य किसी भी समाज का सजग दस्तावेज़ भी होता है। किसी भी राष्ट्र के इतिहास को उसके साहित्य के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता है। इतिहास के आधार तथ्यों में बदलाव संभव नहीं है जबकि इतिहासकारों द्वारा इतिहास के आधारभूत तथ्यों पर दिया जाने वाला बलाघात बदलता रहता है। इसलिए इतिहास की नवीन व्याख्याएँ समय-समय पर होती रहती हैं।

'मलिक मुहम्मद जायसी' ने नागमती का स्वरूप विभिन्न आयामों के अनुरूप गढ़ा है। एक तरफ तो वह सामंती प्रभुता की प्रतीक बन जाती है और अपने रूप पर इतना गौरवान्वित होती है कि उसे बाकी सारी दुनिया की सुंदरता का खयाल ही नहीं रहता है। लेकिन उसके रूप का अभिमान तब चूर-चूर हो जाता है जब रत्नसेन उसे तोता के साथ सती हो जाने का आदेश देता है। इस बात से आहत होकर नागमती उसी सत्ता संरचना के चरित्र को सबके सामने बेनकाब कर देती है। उसका कथन है,

"एतनिक दोस बिरचि पिउ रूठा।
जो पिउ आपन कहै सो झूठा॥
अैसें गरब न भूलै कोई।
जेहि डर बहुत पिआरी सोई॥"[28]

नागमती का यह स्वरूप बार-बार झलक मारता है। रत्नसेन के चरित्र के माध्यम से नागमती ने केवल उस युग की ही नहीं बल्कि सतत परंपरा से आ रही चिंतन परंपरा का खंडन (Deconstruct) करती है। वह अपने भीतर के द्वंद्व को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है,

"जुआ हारि समुझी मन रानी।
सुआ दीन्ह राजा कहँ आनी॥
मान मते हौं गरब जो कीन्हा।

[27] भक्ति साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद, आलोचना (सं. – नामवर सिंह), अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. – 66
[28] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 86, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

कंत तुम्हार मरम मैं चीन्हा॥

सेवा करै जो बरहौ मासा।

एतनिक औगुन करहु बिनासा॥"[29]

नागमती का यह सवाल उस वर्चस्ववादी सत्ता को चुनौती देता है जिसके जकड़न में यह समाज सैकड़ों वर्षों से जकड़ा हुआ था। अपनी स्वतंत्र अस्मिता की तलाश न सही बल्कि उस युग के सम्पूर्ण स्त्रियों की अस्मिता की आवाज बनकर नागमती बोलती है। इस संदर्भ में नित्यानंद तिवारी ने लिखा है कि, "यह सवाल न भक्ति का है, न अध्यात्म का। यह स्त्री-पुरुष और सभी सत्ता-संरचनाओं में व्याप्त पराधीनता और स्वाधीनता के उद्वेग का है।"[30] पराधीनता और स्वाधीनता का उद्वेग जिस तरह से उत्तर औपनिवेशिक युग में अभिव्यक्त हुई है उसका एक बिम्ब जायसी के यहाँ भी विद्यमान है।

ii. विजय बहादुर सिंह

समकालीन आलोचना जगत में मार्क्सवादी सौंदर्यबोध तथा उत्तर आधुनिक विचार को साहित्य में पल्लवित करने का कार्य जिन कुछ आलोचकों ने किया है उनमें विजय बहादुर सिंह का भी नाम शामिल है। इधर हाल के वर्षों में जायसी संबंधी जो चिंतन या विमर्श हुआ है उसमें 'पद्मावत' पर पुनर्विचार अथवा विभिन्न दृष्टियों से उसके विवेचन की मांग बढ़ी है। इस क्रम में जायसी के सौंदर्यबोध को युगसापेक्ष व्याख्यायित करने का कार्य विजय बहादुर सिंह ने किया है। जायसी के सूफ़ीवाद के विवेचन की अनेक दृष्टियाँ विकसित हुई हैं। यहाँ तक कि विजयदेव नारायण साही ने भी इसके तीन भागों की चर्चा की है। एक समतामूलक दृष्टि यह मानती है कि, जिस प्रकार संत काव्य अपनी मूल – प्रवृत्ति में कर्मकांड विरोधी और रूढ़ि परंपरा-निंदक रहा है उसी प्रकार सूफी कविता का गठन भी कर्मकांड-निंदक और विरोधी है। विजय बहादुर सिंह ने इसी दृष्टि से सूफी कविता पर विचार करते हुए लिखा है कि, "फारसी तथा अन्य सह-भाषाओं में जो सूफी कविता लिखी गयी है, वह बेहद कर्मकांड-निंदक और विरोधी है।"[31] जायसी सम्पूर्ण चिंतन पर

[29] वही, पृ. सं. – 89

[30] भक्ति साहित्य : पुनरवलोकन – नित्यानंद, आलोचन (सं. – नामवर सिंह), अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. – 66

[31] जायसी का सौंदर्यबोध – विजय बहादुर सिंह, (वागर्थ, मई 2018), पृ. सं. – 92

भले ही उनकी संस्कृति का आवरण हो लेकिन 'पद्मावत' में उन्होंने समरस समाज की कामना अभिव्यक्त की है।

सौंदर्यबोध अथवा सौंदर्य दृष्टि केवल साहित्य और कला का विषय नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण जीवन का विमर्श है। टेरी इगल्टन ने अपनी मशहूर किताब 'The Ideology Of The Aesthetic' में यह विचार व्यक्त किया है कि, "Aesthetics is born as a discourse of the body. In its original formulation by the German philosopher Alexander Baumgarten, the term refers not in the first place of art, but as the Greek *aesthesis* would suggest, to the whole region of human perception and sensation, in contrast to the more rarefied domain of conceptual thought."[32] सौंदर्य दृष्टि पर बात करते हुए टेरी इगल्टन जिन बिंदुओं को बड़ी गहराई से व्याख्यायित करते हैं वह बेहद महत्त्वपूर्ण है। जिस ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की उपस्थिति साहित्यकार के भीतर माना है उसका बोध और प्रभाव सम्पूर्ण जगत में माना गया है। इन बिन्दुओं में तथा विजय बहादुर जी की मान्यताओं में बहुत साम्य मौजूद है। उन्होंने लिखा है कि, "पद्मावत पढ़ते हुए बार – बार इस एहसास से हम गुजरते हैं कि कवि ने अपने यौवन और सौंदर्य को एक भोक्ता की तरह देखा और अनुभव किया है। उनकी भौतिक या कहें लौकिक संवेदनाएँ बेहद गहरी और रूप – रस के गंध से भरी हुई है।"[33] जायसी की यह सौन्दर्य दृष्टि उनके काव्यों में जगह-जगह दिखाई देती है। यह दृष्टि ही है जिसके कारण जायसी के कुरूप होने के बाद भी सभी रूपवंत उनका बहुत आदर और सम्मान करते हैं। यथा,

"एक नैन जस दरपनऔ तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवंत पाँव गहि मुख जोवहिं कइ चाउ॥"[34]

---

[32] The Ideology Of The Aesthetic – Terry Eagleton, Page No. – 13, Ed. – 2007, Blackwell Publishing, Malden, USA

[33] जायसी का सौंदर्यबोध – विजय बहादुर सिंह, (वागर्थ, मई 2018), पृ. सं. – 92

[34] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 20, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

उत्तर औपनिवेशिक विवेचन में सबसे ज्यादा बल देशीयता, स्वत्व और अस्मिता बोध पर दिया गया है। इसलिए कविता के मूल्यांकन में भी इस बात पर अब बल दिया जाने लगा है। उत्तर उपनिवेशवादी आलोचकों ने देशीयता को मूल्यांकन का आधार बनाया। विजय बहादुर सिंह ने जायसी के 'पद्मावत' के संबंध में लिखा है कि, "जायसी के 'पद्मावत' में जो बात मुझे खींचती है वह है उनका लोकजीवन का गहरा मर्मभेदी चित्रण, जैसा तुलसी में भी नहीं है। ... जिस बात पर हमारा ध्यान बार-बार जाता है वह है जायसी के अनुभवों की प्रामाणिक स्थानीयता या देशीयता।"[35] लोकजीवन और अनुभवों की प्रामाणिक स्थानीयता ही ऐसे दो बिन्दु हैं जो किसी भी कवि के अपने समाज से गहराई से जुड़े होने के प्रामाणिक आधार हैं। जायसी के अनुभव की प्रामाणिकता उनके काव्य में मौजूद गहन चिंतन से भी सिद्ध होती है। उन्हें जितना नक्षत्र का ज्ञान था उतना ही लोकजीवन में उस नक्षत्र से जुड़े विभिन्न कार्यों का भी ज्ञान था। नागमती अपने वियोग की अवस्था का वर्णन इस प्रकार करती है कि,

"पुख नक्षत्र सिर ऊपर आवा।

हौं बिनु नाह मंदिर को छावा॥"[36]

यदि मन भी लें कि पुष्य नक्षत्र का ज्ञान किसी भी विद्वान व्यक्ति को हो सकता है तो यह बात एकदम स्वीकार करने योग्य नहीं है कि किसी पंडित व्यक्ति को उस नक्षत्र में मड़ई अथवा पल्ला छाने वाली बात की जानकारी होगी। इसकी जानकारी उसी व्यक्ति को होगी जिसने इस जीवन को भोगा है अथवा उसे बहुत निकटता से देखा है। यहीं जायसी अन्य सभी कवियों से ज्यादा प्रासंगिक नजर आते हैं।

जायसी के अध्ययन की अपनी अलग दुश्वारियां हैं। एक तरफ उनके काव्य में सूफिवाद का ऐसा बंधन डाल दिया जाता है जिससे कभी वे मुक्त नहीं हो पाते हैं तो दूसरी तरफ उनकी कविता को केवल एक कवि की रचना की भांति पढ़ने का आग्रह किया जाता है। कभी – कभी ऐसा लगता है कि आधार-अधिरचना की परिभाषा ही खारिज हो जाती है, लेकिन बहुत सघन दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि जायसी का

[35] जायसी का सौंदर्यबोध – विजय बहादुर सिंह, (वागर्थ, मई 2018), पृ. सं. – 93

[36] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 344, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

कवि व्यक्तित्व उनके सूफिवादी दायरे पर भारी पड़ रहा है। यह अकारण नहीं कि विजय बहादुर सिंह ने भी इस द्वंद्व से उलझने तथा उनके काव्य का एक नया मूल्यांकन प्रस्तुत करने का कार्य किया है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी के संदर्भ में यह बात खास लगती है कि सूफी कवि होकर भी वे मक्का-मदीना के ख़यालों में वे डूबे नहीं रहते। हिंदुस्तानी जीवन और उस माटी की सुगंध में उनकी चेतना इतनी रच-पच और रस-बस गई है कि 'पद्मावत' पढ़ कर मन बार-बार इस देश की चेतना और माटी की सुगंधों से भर उठता है।"[37] यही जायसी के कवि व्यक्तित्व की क्षमता है जिसके आधार पर उनके काव्य का मूल्यांकन और विवेचन किया जाना चाहिए। विजय बहादुर सिंह ने उनके काव्य के चिंतन का सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से एक नया आयाम दिया है जो आगे के आलोचकों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

iii. राजकुमार प्रसाद

उत्तर उपनिवेशवादी विचारधारा ने हाशिये पर खड़े समाज को केंद्र में अथवा मुख्यधारा से जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया है। इस विचार धारा ने दलित, स्त्री, आदिवासी तथा इस तरह के अनेक विमर्शों को जन्म दिया है। हालांकि इस चिंतन पद्धति की शुरुआत मिशेल फूको के 'ज्ञान और सत्ता' के चिंतन से फलीभूत हुआ है लेकिन इसकी बहस आठवें दशक के बाद सभी ज्ञानानुशासनों में शुरू होती है। उत्तर औपनिवेशिक चिंतन के बाद साहित्य और इतिहास को पुनः व्याख्यायित करने की कवायद शुरू हुई। इस चिंतन के क्रम में मध्यकालीन चिंतकों और कवियों के चिंतन को आधुनिक संदर्भों में विवेचित किया गया। डॉ. राजकुमार प्रसाद ने इस चिंतन को आगे बढ़ाते हुए मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य 'पद्मावत' की व्याख्या उत्तर औपनिवेशिक संदर्भों में की है। जायसी के काव्यों की व्याख्या न केवल उत्तर औपनिवेशिक मानकों पर की बल्कि उसका स्त्रीवादी पाठ भी प्रस्तुत किया है। इन्हीं मानकों पर जायसी के 'पद्मावत' की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि, " 'भक्ति', 'सेक्स', 'सौंदर्य', युद्ध और 'पूंजी' की जबर्दस्त मिक्सिंग जायसी के पद्मावत में है। जायसी ने आर्थिक विषमताओं के कारणों, बाजार की स्थिति, दरिद्रों की क्रय शक्तिहीनता, भूख की समस्या, सामंतों द्वारा पूंजी के दुरुपयोगों इत्यादि पर संकेतात्मक टिप्पणियाँ की है, जो उस युग की आर्थिक

[37] जायसी का सौंदर्यबोध – विजय बहादुर सिंह, (वागर्थ, मई 2018), पृ. सं. – 94

स्थितियों को समझने में सहायता अवश्य करती है।"[38] भक्तिकालीन कविता कोरी कविता नहीं है बल्कि वह मध्यकालीन भारत का सामाजिक इतिहास भी प्रस्तुत करती है। उसके निहितार्थों में अनेक ऐसे स्थल छुपे हुए हैं जो उस युग की सामाजिक संरचना तथा उस युग में व्याप्त सामाजिक कड़ुवाहट का पर्दाफाश करते हैं। इस अर्थ में उन कवियों की कविताएं आज अत्यंत प्रासंगिक मालूम होती हैं।

जायसी के काव्य की आलोचना करने के लिए एक सूक्ष्म दृष्टि तथा मध्यकालीन इतिहास की गहरी समझ जरुरी है। यदि जायसी कहते हैं कि,

"कीन्हेसि कोइ निरभोसी कीन्हेसि कोइ बरिआर।

छार हुते सब कीन्हेसि पुनि किन्हेसि सब छार।।"[39]

यह अभिव्यक्ति केवल जायसी की अभिव्यक्ति न होकर उस समूचे युग की अभिव्यक्ति है। इसका कारण यह है कि उस युग के अन्य कवियों ने भी इस तरह का चिंतन प्रस्तुत किया। यह युगबोध है जिससे प्रभावित हुए बिना कवि रह नहीं सकता है। विखंडनवाद और आधुनिक दृष्टि के आलोक में भले हम इस बात को अतार्किक तथा मानवीय करुणा के खिलाफ घोषित करें लेकिन इस बात को स्वीकार करना होगा कि इसी कारण भक्तिकाल स्वर्णिम युग होकर भी मध्यकालीन समाज की रचना है। राजकुमार ने नागमती और राजा के संबंध में व्याप्त विभेद तथा दोनों की स्थितियों में पर्याप्त अंतर का मूल्यांकन करते हुए यह प्रश्न उठाया है कि, "नागमती की हैसियत भी ज़नानी ड्योढ़ी में महज एक दासी से ज्यादा क्या है ? सुग्गे की एवज में उसे मृत्यु दंड मिलता है। उसकी विशेष राजकीय स्थिति होने के बावजूद नारी होने के कारण उसकी सामाजिक स्थिति नगण्य है।"[40] यही उस युग का सामाजिक इतिहास है जिसका उल्लेख अन्य किसी इतिहास में नहीं मिलता है। इस पूरे प्रसंग में 'धाय' का चरित्र सुचिंतित एवं समझदारी भरी नारी के रूप में उभरा है। जब रानी उस सुग्गे/तोते को मारने का आदेश 'धाय' को देती है तब उसे मन में विचार आता है कि,

"जौ तिवाई कै काज न जाना।

[38] उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ और जायसी का 'पद्मावत' – राजकुमार, (पुनर्लेखन), पृ. सं. – 87

[39] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 3, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

[40] उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ और जायसी का 'पद्मावत' – राजकुमार, (पुनर्लेखन), पृ. सं. – 87

परै धोख पाछे पछिताना ।।

नागमती नागिनि बुधि ताऊ ।

सुआ मँजूर होइ नहि काऊ ।।

जो न कंत के आएसु माहाँ ।

कौन भरोस नारि कै नाहाँ ।।"[41]

'धाय' ने भले ही उस तोते को नहीं मारा लेकिन उसके पीछे छुपी उसकी मानसिक सोच किसी मध्यकालीन समाज का ही चित्रण करती है। जायसी के काव्य का मूल्यांकन नए युग में नवीन संदर्भों में किया गया है। आधुनिक विमर्शों में स्त्री चिंतन की दृष्टि से साहित्य और इतिहास का मूल्यांकन बहुत प्रभावकारी रूप में उभरा है। डॉ. राजकुमार प्रसाद ने 'पद्मावत' में वर्णित स्त्री पात्रों के चरित्र तथा उनके ऊपर लगाए गए यौन शुचिता के नियंत्रण को नए ढंग से परिभाषित किया है। उन्होंने लिखा है कि, "वे (जायसी) मेल सेक्सुअलिटी पर नियंत्रण की बात नहीं करते हैं। उनके अनुसार खतरा केवल 'फ़ीमेल सेक्सुअलिटी' से ही है। क्योंकि केवल औरत ही समाज के नियमों को भंग कर उथल-पुथल मचा सकती है। औरतों द्वारा 'काम' पर नियंत्रण होने के कारण उनके कुल की इज्जत को खतरा होता है।"[42] आधुनिक विमर्शकारों ने जायसी की आलोचना इन्हीं मानकों पर की है। साहित्यिक बिरादरी से या तो स्त्रियों को अलगा दिया गया या फिर उन्हें केवल इसी तरह के नियंत्रण में रखने का प्रयास किया गया। इस बात को उत्तर औपनिवेशिक चिंतक और स्त्रीवादी लेखिका गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने बखूबी प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि, "My own definition of a woman is very simple : it rests on the word 'man' as used in the text that provide the foundation for the corner of the literary criticism establishment that I inhabit."[43] साहित्यिक आलोचना जगत में स्त्रियों को जो स्थान दिया गया है उससे हम सभी वाकिफ हैं। इसलिए स्पीवाक

[41] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 84, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी

[42] उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ और जायसी का 'पद्मावत' – राजकुमार, (पुनर्लेखन), पृ. सं. – 77

[43] In Other Worlds – Gayatri Chakravorty Spivak, Page No. – 102, Ed. – 2006, Routledge Classics Publication, New York

का कथन न केवल अंग्रेजी साहित्य पर लागू होती है बल्कि यह सम्पूर्ण साहित्य पर भी उतना ही लागू होती है।

iv. डॉ. रविरंजन

जायसी के काव्य का मूल्यांकन समय-समय पर होता रहा है। बदलते हुए सामाजिक संरचना ने उनके काव्य और परिवेश को नवीन संदर्भों में परिभाषित करने का आलोचनात्मक विवेक पैदा किया है। इसकी परिणति यह रही है कि अलग – अलग युग में समय और सामाजिक परिस्थिति के अनुसार उस काव्य का मूल्यांकन किया गया है। यह बात बड़ी मौजू लगती है कि तुलसीदास ने उसे ही शास्त्र माना है जिस पर बार – बार विचार और विमर्श किया जाए –

“सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ”[44]

इस अर्थ में जायसी कृत ‘पद्मावत’ केवल काव्य न होकर शास्त्र की श्रेणी में शामिल हो जाता है।

साहित्य और समाज का संबंध अत्यंत गहरा एवं व्यापक है। साहित्य के अध्ययन की विभिन्न दृष्टियों में से एक समाजशास्त्रीय दृष्टि भी रही है। आलोचना जगत में इस दृष्टि का विकास स्वतन्त्रता के पूर्व से माना जाता है। इस दृष्टि पर आधारित शोध अथवा लेखन का कार्य खासा चर्चा एवं महत्त्व का विषय रहा है। नामवर सिंह की पुस्तक ‘दूसरी परंपरा की खोज’ के प्रकाशन के बाद भक्तिकालीन कविता को समाजशास्त्रीय ढंग से व्याख्यायित करने की एक परिपाटी विकसित हुई। हालांकि उनसे पहले ही गजानन माधव ‘मुक्तिबोध’ और रामविलास शर्मा ने इस दृष्टि के आधार पर भक्तिकाव्य का मूल्यांकन कर चुके थे लेकिन वह छिटपुट लेख के रूप में ही सामने आया था, स्वतंत्र किताब के रूप में नहीं। इस क्रम को आगे बढ़ाने का काम डॉ. रवि रंजन ने ‘भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत’ लिख कर किया है।

मध्यकालीन कविता के मूल्यांकन की एक निश्चित दृष्टि रही है जिसमें केवल उसके रूप पक्ष और धार्मिकता को ही महत्त्व दिया गया है। ऐसा भी नहीं है कि इस चिंतन को सिरे से खारिज कर दिया जाए लेकिन

[44] रामचरितमानस (अरण्यकाण्ड) – तुलसीदास (टीकाकार – हनुमानदास पोद्दार), पृ. सं. – 613, गीता प्रेस, गोरखपुर

आधुनिक दृष्टि इसके बीच उपस्थित सामाजिक सरोकारों की पहचान उजागर करने का प्रयास करती है। जायसी के काव्य पर सूफ़ीवाद के प्रभाव को व्याख्यायित करते हुए डॉ. रवि रंजन ने लिखा है कि, "चूंकि मध्ययुगीन कवियों – कलाकारों की विश्वदृष्टि के निर्माण में किसी न किसी रूप में धर्म की केंद्रीय भूमिका रही है और धार्मिक संवेदना ही उनकी रचना – दृष्टि का अक्षय – स्रोत रहा है, इसलिए जायसी ही नहीं, बल्कि किसी भी भक्त कवि के रचना – संसार का यथोचित मूल्यांकन धर्म, दर्शन व अध्यात्म की जमीन से बिलकुल हटकर नहीं किया जा सकता।"[45] यह बहुत प्रामाणिक बात है कि मध्यकालीन कविता का केंद्रीय बिंदु धर्म, दर्शन और अध्यात्म है, जिससे मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है लेकिन साथ ही एक समस्या यह भी है कि केवल विचारधारा ही साहित्य का निर्माण नहीं करता है। टेरी इगल्टन ने लिखा है कि, "मार्क्सवादी आलोचना का लक्ष्य साहित्य की अधिक व्यापक व्याख्या करना है, जिसका मतलब है कृति के फार्म, स्टाइल और अर्थ की ज्यादा संवेदनशीलता के साथ व्याख्या करना। इसका मकसद यह देखना भी है कि वे फार्म, स्टाइल और अर्थ किस खास ऐतिहासिक दौर की उपज हैं।"[46] साहित्य के मूल्यांकन के साथ ही उस समाज का भी मूल्यांकन साहित्यकार के मूल उद्देश्य की जानकारी दे सकता है। इस बात की चिंता लगभग सभी समाजशास्त्री चिंतकों में पायी जाती है। कुछ इसी दृष्टि का परिचय रवि रंजन ने 'पद्मावत' के मूल्यांकन के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि, "वस्तुतः यह कृति (पद्मावत) उस जमाने में प्रचलित तमाम तरह की धार्मिक प्रणालियों व अधिरचनाओं का छोटा-मोटा विश्वकोश प्रतीत होती है, जिसकी रचना के मूल में कवि की सर्वसमावेशी प्रकृति है।"[47] इस समावेशी प्रकृति के कारण ही जायसी के काव्य का विवेचन तब से लेकर अब तक होता आया है।

'पद्मावत' की व्याख्या केवल दो बिन्दुओं के केंद्र में हुई है। इसमें पहला बिंदु वह है जिसके पक्षधर आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं (अर्थात 'पद्मावत' सूफी काव्य है) तथा दूसरा बिंदु वह है जिसके प्रणेता विजयदेवनारायण साही हैं (अर्थात 'पद्मावत' केवल एक काव्य कृति है)। इन बिंदुओं में से एक समावेशी दृष्टि का रास्ता निकालने का प्रयास करते हुए डॉ. रवि रंजन ने लिखा है कि, "सच तो यह है कि जिस प्रकार

---

[45] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत – रवि रंजन, पृ. सं. – 52-53, सं. – 2005, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद

[46] मार्क्सवाद और साहित्यालोचन – टेरी इगल्टन (अनु. वैभव सिंह), पृ. सं. – 24, सं. – 2006, आधार प्रकाशन, हरियाणा

[47] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत – रवि रंजन, पृ. सं. – 99, सं. – 2005, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद

इस्लाम की धर्मशास्त्रीय परिधि में पैदा हुए सूफी मत तथा इसके साधकों व चिंतकों ने कालांतर में उस परिधि का जाने – अनजाने अतिक्रमण किया, ठीक उसी प्रकार सूफी मतवाद की समृद्ध परंपरा और पृष्ठभूमि से पूरी तरह सम्बद्ध होने के बावजूद मलिक मुहम्मद जायसी अपनी कृति 'पद्मावत' में जगह – जगह सूफी मत के दायरे को तोड़ते हुए दिखाई देते हैं। संभवतः सूफी मत को अपने जमाने की जरूरत के मुताबिक मानवीय संदर्भ देने के लिए ऐसा करना जायसी की रचनात्मक बाध्यता थी।"[48] रचनात्मक बाध्यता भले न रही हो लेकिन जायसी ने उस मानक को तोड़ा है जिसके आधार पर उन्हें सूफी कवि कहा गया है।

जायसी के यहाँ प्रेम और रसास्वादन के विभिन्न रूप मौजूद हैं। प्रेम के स्वरूप और उसकी मनोदशा के विषय में उन्होंने लिखा है कि,

"पेम घाव दुख जान न कोई।
जेहि लागे जा नै पै सोई॥"[49]

जब वे अपने पाठकों और सहृदय को संबोधित करते हैं तब,

"कबि बिआस रस कौंला पूरी।
दूरिहि निअर निअर भा दूरी॥"[50]

ये दोनों पंक्तियाँ उनके कवि व्यक्तित्व और रसग्राहिता शक्ति को दर्शाती हैं। उनकी इस छवि की परख डॉ. रवि रंजन ने भी की है। उन्होंने लिखा है कि, "जायसी न केवल भावुक व संवेदनशील कवि हैं, बल्कि वे भावज्ञ भी प्रतीत होते हैं। इसलिए अपने समय व समाज में जहां कहीं भी प्रेम तन्तु की अनिवार्यता उन्हें महसूस हुई, वहाँ उन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर उसे संभव बनाने का सांस्कृतिक प्रयास किया।"[51] जायसी का यह रूप सर्वमान्य हो सकता है। उनके प्रेम के संबंध में विद्वानों में कोई मत भिन्नता नहीं है। इस

[48] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत – रवि रंजन, पृ. सं. – 59-60, सं. – 2005, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
[49] पद्मावत – (सं.) वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. – 114, सं. – 2002, साहित्य सदन, तलैया, झाँसी
[50] वही, पृ. सं. – 24
[51] भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत – रवि रंजन, पृ. सं. – 89, सं. – 2005, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद

अर्थ में जायसी के काव्य के मूल्यांकन में डॉ. रवि रंजन ने मध्यम मार्ग की पद्धति का अनुसरण किया है, जिसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल और विजयदेवनारायण साही दोनों के चिंतन पद्धति का समावेश हो जाता है।

6.4 निष्कर्ष

जायसी संबंधी आलोचना की अभी तक विकसित विभिन्न दृष्टियों में से एक है - उत्तर औपनिवेशिक दृष्टि। इस चिंतन का विकास पराधीन भारत में ही हो चुका था। इसका विकास आर्थिक आधार पर असमानता के खिलाफ हुआ था लेकिन भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम ने इसके विकास के विभिन्न अवसर उपलब्ध कराए। भारत के साथ – साथ जितने भी देश इस औपनिवेशिक व्यवस्था के चक्र में फंसे हुए थे उन्हें इस बंधन से मुक्ति के प्रयास ने एकत्रित होने का अवसर उपलब्ध कराया। इस युग के आलोचकों एवं रचनाकारों के लेखन में औपनिवेशिक सत्ता के मानसिक बंधन से मुक्ति, जातीय अथवा स्थानीय चेतना का विकास, सबाल्टर्न विमर्श का विकास, हाशिये पर पड़े हुए वर्ग को पुनः केंद्र में स्थापित करने की पहल को प्रमुखता से देखा जा सकता है। इस चिंतन की ही देन है कि प्रवासन (Diaspora), स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श आदि ज्ञानानुशासन के स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में उभरकर सामने आया है। इस चिंतन ने नव्य इतिहासवाद तथा पुनर्विचार (Rethinking) जैसे विमर्श को जन्म दिया है। इसका पिष्टपेषण साहित्य तथा अन्य विधाओं में भी हुआ है।

इस अध्याय में यह देखने का प्रयास किया है कि उत्तर औपनिवेशिक चिंतन तथा उसके बाद के आलोचकों ने जायसी के काव्य के मूल्यांकन के लिए किस दृष्टि का प्रयोग किया है। इस क्रम में यह पाया कि स्त्रीवादी विमर्श तथा आधुनिकता के आईने में जायसी के काव्य का मूल्यांकन इस नए आलोचना जगत की देन है। नित्यानंद तिवारी और डॉ. राजकुमार प्रसाद ने इस दृष्टि से जायसी के काव्य की विवेचना प्रस्तुत की है। विजय बहादुर सिंह तथा डॉ. रवि रंजन ने 'पद्मावत' में निहित सौंदर्यबोध तथा प्रेमतत्व का निरूपण सही ढंग से किया है।

उपसंहार

उपसंहार

मलिक मुहम्मद जायसी और हिंदी आलोचना विषय पर शोध करना मेरे लिए बहुत दिलचस्प रहा। आधुनिक संदर्भों में जायसी की कविता का पाठ और हिंदी आलोचना में उसे लेकर चलने वाली बहस की पड़ताल करना मेरा उत्तरदायित्व रहा है जिसे निभाने में यथाशक्ति मेरी प्रतिबद्ध भूमिका रही है। भक्तिकालीन साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक जायसी का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है लेकिन समाज की ख़ासी किस्म की निर्मिति के कारण उन्हें वह स्थान नहीं मिल सका जिसके हकदार वे थे। संस्कृति पर जब-जब वर्चस्व की राजनीति क़ाबिज़ होती है, भाषा और साहित्य जन या लोक के प्रति पक्षधर भूमिका में प्रतिबद्ध पाए जाते हैं। इसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति जायसी के काव्यों में भी पायी जाती है। जायसी की कविता में अपने युग की प्रवृत्तियों और मानसिक स्थितियों का वर्णन बहुत सटीक ढंग से हुआ है। वह चाहे सामंती समाज में स्त्रियों की स्थिति की बात हो अथवा पंडितों और मुल्लाओं के धार्मिक कर्मकांड का विरोध ही क्यों न हो। इसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति उनके काव्यों में दिखाई पड़ती है।

जायसी ने भारतीय प्रेम कहानी की परंपरा की उस परंपरा को आगे बढ़ाया है, जिसका वर्णन आख्यानों में तथा संस्कृत साहित्य में मिलता है । जिस तरह जायसी का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है, उसी तरह उनका रचनात्मक जीवन भी अनेक तरह के चढ़ाव-उतार का रहा है। जायसी ने भी उसी हद तक इस कहानी परंपरा को आगे बढ़ाया जिस हद तक तुलसी ने 'रामचरितमानस' में। जायसी की प्रेमकथा तो भारतीय है परन्तु उसकी घटनाओं की एक जो स्थिति है वह फारसी प्रतीत होती है। मसनवी शैली परंपरा को उन्होंने अपने कथाओं में लागू किया है, चाहे वे 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'पद्मावत' या 'कन्हावत' हो।

जायसी लोक परंपरा से जुड़े हुए थे। लोक परंपरा से जुड़ने की कुछ वृत्तियाँ जायसी में मिलती है। अवधी बोली के ठेठ रूप का प्रयोग आलोचकों ने इस क्रम में कई बार उल्लिखित किया है। जायसी में तुलसी की तरह तत्सम शब्दों की मिलावट है। 'पद्मावत' के कथा-विधान में सर्ग जैसे विभाजन को अस्वीकार करके लगातार वर्णन क्रम को चलाना आलोचकों द्वारा फारसी मसनवी शैली का प्रभाव माना गया है। पर इस शैली के पीछे देसी

लोक गाथाओं का संस्कार भी देखा जा सकता है, जिनमें शास्त्रीय दृष्टि का कोई विभाजन नहीं है, कथा लगातार चलती है। लोक और शिष्ट को एक-दूसरे के आमन-सामने करके इस टकराहट में से कुछ सिरजने का एक उपक्रम हमें 'पद्मावत' के कथा विधान में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की भिन्न प्रकृति रखने में मिलता है। जायसी ने अपने कथानक का विधान इस तरह किया है कि पूर्वार्द्ध लोक कथा के रूप में काल्पनिक वृत्त है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक बनावट लिए हुए है। लोक कथा की रंगत लिए पूर्वार्द्ध में अनेक अतिप्राकृत चरित्र और घटनाएँ हैं – देवी, देवता, राक्षस, मनुष्य की बोली बोलने वाला तोता सिद्ध गुटिका आदि। उत्तरार्द्ध में ये अतिप्राकृत तत्व एकदम अनुपस्थित है। उनका कहीं कोई उल्लेख नहीं होता। रोचक बात यह है कि समुद्र द्वारा दिये गये पाँच अमूल्य पदार्थ – अमृत, हंस, राजपक्षी, शाईल और पारस पत्थर रत्नसेन के पास है जबकि बरसों तक अलाउद्दीन चित्तौड़ का घेरा डाले रहा और इनके उपयोग की बात राजा को नहीं सूझी।

लोकवृत्त और ऐतिहासिकता का इस प्रकार से आमना-सामना जायसी के अपने रचना विधान की निजी उपज है। लोक और शिष्ट को भी अगल-बगल रखना सबके बस की बात नहीं है। अंतत: यही कहा जा सकता है कि जायसी की यह रचना प्रेम काव्य का एक प्रतिमान बनाती है जिसे आज तक कोई भी रचनाकार नहीं तोड़ सका।

आचार्य रामचंद्र शुक्लपूर्व हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन के माध्यम से जायसी संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों का परिचय प्राप्त होता है। साहित्येतिहासकारों के अपने – अपने आग्रह हैं जिसके आधार पर उन्होंने किसी कवि के साथ न्याय किया तो किसी कवि के साथ अन्याय। 'भक्तमाल' के लेखक ने जहाँ अपने ग्रन्थ में केवल भक्त कवियों को शामिल किया वहीं गार्सा द तासी ने लगभग सभी प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करने का प्रयास किया। नाभादास की यह सीमा मानी जानी चाहिए कि उन्होंने अपने आप को सीमित रखा। गार्सा-द-तासी ने तमाम संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों के काफी छानबीन के तत्पश्चात उन्होंने कवियों का विवरण उपलब्ध कराया। यह उस समय के लिए बहुत कठिन कार्य था। गार्सा द तासी के बाद शिवसिंह सेंगर के यहाँ केवल कवियों का विवरण ही प्राप्त हो सका है। शिवसिंह सेंगर ने भी जायसी के सम्बन्ध में चुप्पी साध ली है। यह इन साहित्येतिहासकारों की सीमा कही जाएगी। जिस प्रकार की सीमा भक्तमालकार के यहाँ दिखाई पड़ती है

कुछ उसी प्रकार की सीमा शिवसिंह सेंगर के यहाँ भी दिखाई पड़ती है। ग्रियर्सन ने इस सन्दर्भ में सार्थक प्रयास किया है। उन्होंने जायसी संबंधी साहित्यिक भूमि एवं ऐतिहासिक भूमि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। मिश्रबंधुओं के यहाँ विवेचन का एक स्वरूप निर्मित होता है जिसका सम्यक् निर्वाह आगे के आलोचकीय परंपरा में दिखाई पड़ता है।

जायसी ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा एक ऐसा विधान रचा जिसे देखकर इतिहासकारों ने भी इसे अपनी विषय – वस्तु बना लिया। जायसी ने पद्मावती को बड़े ही मनोयोग से गढ़ा है। अपनी रचना के भीतर कल्पनाशक्ति के द्वारा लगभग सभी साहित्यकार एक नए जीवन की सर्जना करते हैं। साहित्यिक अथवा कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। कला में जीवन की जो पुनर्रचना होती है वह सारतः उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो जीवन इस जगत में वस्तुतः जिया और भोगा जाता है – स्वयं तथा अन्य के द्वारा। यह जीवन जब कल्पना द्वारा पुनर्रचित होता है, तब उस पुनर्रचित जीवन में, तथा वास्तविक जगत क्षेत्र में जिए और भोगे जाने वाले जीवन में, गुणात्मक अंतर उत्पन्न हो जाता है। पुनर्रचित जीवन जिए और भोगे गए जीवन में सारतः एक होते हुए भी स्वरूपतः भिन्न होता है। यह भिन्नता जायसी के यहाँ भी देखी जा सकती है। जायसी का मूल्यांकन गार्सा-द-तासी से लेकर अब तक अनेक रूपों में चला आ रहा है। इस मूल्यांकन में जो स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मिला वह स्थान न शुक्लपूर्व किसी आलोचक को मिला और न ही किसी शुक्लोत्तर आलोचक को। शुक्ल जी ने जिस गहनता के साथ 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका लिखी है वह केवल हिंदी साहित्य को समझने के लिए नहीं बल्कि संस्कृति के इतिहास को समझने के लिए मजबूर करती है। यह शुक्ल जी के आलोचना की शक्ति है जो किसी भी कवि को समग्रता में देखने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास अब प्रायः कम दिखाई पड़ता है। आज भी आलोचना में कोई सहमत या असहमत होता भी है तो वह आचार्य शुक्ल से ही होता है। कुछ तथ्यों को छोड़ दिया जाए तो शुक्ल जी आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस समय में थे।

जायसी का रचना – कर्म ऊपर से जितना सरल और आसान दिखता है भीतर से उतना ही कठिन और दुरूह है। उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी दुरूहता उसकी फारसी लिपि रही है जिसकी समझ के अभाव में उसका सही पाठ – निर्धारण नहीं हो सका। इस रचना के लिपिकारों ने उसकी सूक्ष्मताओं को समझे बिना उसकी प्रतिलिपि तैयार की। चूंकि 'पद्मावत' की कई लिपियाँ आज उपलब्ध हैं लेकिन उसमें तमाम तरह की अशुद्धियाँ उसी तरह मौजूद हैं। इन अशुद्धियों को वैज्ञानिक रूप से दूर करने का प्रयास माताप्रसाद गुप्त ने किया। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' के कई पदों को प्रक्षिप्त माना है। जिस पद के आधार पर 'पद्मावत' में बलात् सूफियापन और मसनवी की परंपरा का समावेश, आरोपण किया जाता है उसे उन्होंने प्रक्षिप्त माना है। 'पद्मावत' के 'उपसंहार खंड' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार) का जो पहला छंद है उसे गुप्त जी ने प्रक्षिप्त माना है।

'पद्मावत' के पूर्वार्ध को लोक के धरातल पर अभिव्यक्त बताया जिसमें राजस्थानी मौखिक काव्य परंपरा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार उन्होंने जायसी की भाषा एवं 'पद्मावत' के पाठ निर्धारण के साथ उसके भाषायी एवं अन्य पक्ष पर महत्त्वपूर्ण चिंतन का विश्लेषण किया है। इस परंपरा में वासुदेवशरण अग्रवाल ने महत्त्वपूर्ण काम किया। उन्होंने भी माताप्रसाद गुप्त द्वारा प्रक्षिप्त माने गए छंदों को प्रक्षिप्त ही माना है लेकिन आचार्य शुक्ल जी की खंडों में विभाजन वाली पद्धति को अपनाया है। इन्होंने 'पद्मावत' को जगमगाता हुआ हीरा कहा तथा जायसी को 'सच्चे पृथिवी – पुत्र' की संज्ञा से विभूषित किया। मनमोहन गौतम ने 'जायसी ग्रंथावली' की विस्तृत भूमिका के साथ उसका संपादन किया जबकि डॉ. कन्हैया सिंह ने माताप्रसाद गुप्त के संकलन को आधार बनाकर उसके कुछ छंदों में थोड़ा बहुत हेर – फेर किया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जायसी के रचना – कर्म को एक व्यापक फ़लक प्रदान करने का कार्य शुक्लोत्तर संपादकों ने किया है। बुद्धिसंगत एवं वैज्ञानिक प्रणाली की सहायता से उन्होंने जायसी की महत्ता को स्थापित किया है।

विजयदेव नारायण साही ने जायसी को समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति से विवेचित किया है जबकि वागीश शुक्ल ने कहीं – कहीं समाजशास्त्रीय औजारों के साथ परंपरागत औजारों का प्रयोग किया है। वागीश शुक्ल ने अधिकतर साही जी के तथ्यों से टकराने का प्रयत्न किया है लेकिन उसमें बहुत सफलता हासिल नहीं हो पायी है। विजयदेव नारायण साही ने जायसी चिंतन में एक नया अध्याय जोड़ा है। उनके चिंतन ने इस परंपरा में फिर से एक नया विवाद खड़ा कर दिया। यह उस समय की मांग थी कि जायसी आलोचना के प्रतिमानीकरण को ठीक ढंग से जांचा और परखा जाए। इस आलोचना में वागीश शुक्ल ने भी महत्त्वपूर्ण काम किया है लेकिन उनकी दिशा आगे की तरफ बढ़ने की बजाय पीछे की तरफ ज्यादा रही है जिससे जायसी संबंधी विवाद और उलझता चला जाता है। यह बहुत जरूरी है कि किसी रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन की बजाय उसके रचनात्मकता और उसमें मौजूद समाज चिंतन पर विशेष बल दिया जाए। लेकिन आलोचक कभी – कभी बहुत नया और मौलिक चिंतन के चक्कर में आवश्यकता से अधिक जड़ीभूत हो जाते हैं। वागीश शुक्ल इसके अपवाद नहीं हैं। विजयदेव नारायण साही की दृष्टि जायसी के काव्य – कला, संवाद – योजना, भाषायी-पक्ष पर ज्यादा टिकी हुई है इसीलिए उनकी आलोचना अपनी सीमाओं के बावजूद भी ग्राह्य लगती है। वागीश शुक्ल की अपेक्षा विजयदेव नारायण साही की आलोचना हमें अपनी तरफ ज्यादा आकर्षित करती है और हृदयग्राह्य भी है।

जायसी संबंधी आलोचना की अभी तक विकसित विभिन्न दृष्टियों में से एक है - उत्तर औपनिवेशिक दृष्टि। इस चिंतन का विकास पराधीन भारत में ही हो चुका था। इसका विकास आर्थिक आधार पर असमानता के खिलाफ हुआ था लेकिन भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम ने इसके विकास के विभिन्न अवसर उपलब्ध कराए। भारत के साथ – साथ जितने भी देश इस औपनिवेशिक व्यवस्था के चक्र में फंसे हुए थे, उन्हें इस बंधन से मुक्ति के प्रयास ने एकत्रित होने का अवसर उपलब्ध कराया। इस युग के आलोचकों एवं रचनाकारों के लेखन में औपनिवेशिक सत्ता के मानसिक बंधन से मुक्ति, जातीय अथवा स्थानीय चेतना का विकास, सबाल्टर्न विमर्श का विकास, हाशिये पर पड़े हुए वर्ग को पुनः केंद्र में स्थापित करने की पहल को प्रमुखता से देखा जा सकता है। इस चिंतन की ही देन है कि प्रवासन (Diaspora), स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श आदि ज्ञानानुशासन के स्वतंत्र क्षेत्र के

रूप में उभरकर सामने आयें हैं। इस चिंतन ने नव्य इतिहासवाद तथा पुनर्विचार (Rethinking) जैसे विमर्श को जन्म दिया है। इसका पिष्टपेषण साहित्य तथा अन्य विधाओं में भी हुआ है।

यह देखने का प्रयास किया है कि उत्तर औपनिवेशिक चिंतन तथा उसके बाद के आलोचकों ने जायसी के काव्य के मूल्यांकन के लिए किस दृष्टि का प्रयोग किया है। इस क्रम में यह पाया कि स्त्रीवादी विमर्श तथा आधुनिकता के आईने में जायसी के काव्य का मूल्यांकन इस नए आलोचना जगत की देन है। प्रो. नित्यानंद तिवारी और डॉ. राजकुमार प्रसाद ने इस दृष्टि से जायसी के काव्य की विवेचना प्रस्तुत की है। प्रो. विजय बहादुर सिंह तथा प्रो. रवि रंजन ने 'पद्मावत' में निहित सौंदर्यबोध तथा प्रेमतत्व का निरूपण सही ढंग से किया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जायसी के यहाँ जीवन के विविध रूप मौजूद है जरूरी यह है कि सूफिवाद के घेरे से बाहर आकर तथा उत्तर-उपनिवेशवादी चिंतन से अलग हटने पर उनके काव्य में मौजूद विविध रंगों की प्रसंगिकता समझ में आने लगती है। जिस तरह से साहित्य के अध्ययन की विभिन्न दृष्टियों का विकास हुआ है उसी तरह जायसी के काव्य का अध्ययन भी विभिन्न दृष्टियों की मांग करता है। सूफिवाद उनके कवि व्यक्तित्व पर किसी कालिख की तरह नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार पुस्तकें

- सं. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2002). *पद्मावत*. झाँसी: साहित्य सदन प्रकाशन
- सं. गुप्त, माताप्रसाद. (1963). *पद्मावत*. इलाहाबाद: भारती लीडर प्रेस
- सं. गौतम, मनमोहन (1977). *जायसी ग्रंथावली*. दिल्ली: रीगल प्रेस
- सं. पाठक, शिवसहाय. (1981). *कन्हावत*. इलाहाबाद: साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड
- सं. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2012). *जायसी ग्रंथावली*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- सं. सिंह, कन्हैया. (2010). *पदुमावती*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन

हिंदी पुस्तकें

- अग्रवाल, पुरुषोत्तम. (2013). *अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- इगल्टन, टेरी., (अनु.) सिंह, वैभव. (2006). *मार्क्सवाद और साहित्यालोचन*. हरियाणा: आधार प्रकाशन
- कक्कड़, सुधीर., कक्कड़, कैथरीन. (2009). *हम हिंदुस्तानी : भारतीयता की वास्तविक पहचान*. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स
- कुलश्रेष्ठ, डॉ. कमल. (1947). *मलिक मुहम्मद जायसी*. इलाहाबाद: साहित्य भवन लिमिटेड
- कोसंबी, दामोदर धर्मानंद. (2015). *मिथक और यथार्थ*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- गांधी, मोहनदास करमचंद. (2018) *हिन्द स्वराज*. अहमदाबाद: नवजीवन मुद्रणालय

- ग्रियर्सन, जार्ज., (अनु.) गुप्त, किशोरीलाल. (1957). *हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास*. वाराणसी: हिंदी प्रचारक पुस्तकालय
- ग्राम्शी, अंतोनियो., (अनु.) मिश्र, कृष्णकांत. (2012). *सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- चतुर्वेदी, पं. परशुराम. (2001). *संत और सूफी साहित्य*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा
- चतुर्वेदी, रामस्वरुप. (2008). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- चतुर्वेदी, डॉ. जगदीश्वर., पाण्डेय, चन्द्रा. (1994). *आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद*. कलकत्ता: संस्कृति प्रकाशन
- चिचेरोव, ए. आई., (अनु.) सिंह, मंगलनाथ. (2013). *मध्यकालीन भारत की आर्थिक संरचना*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- चंद्र, बिपन. (2014) *आधुनिक भारत*. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
- चंद्र, बिपिन. (2015) *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- जयदेव. (1957). *सूफी महाकवि जायसी*. अलीगढ़: भारत प्रकाशन मंदिर
- जैन, निर्मला. (2009). *साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- जॉल, जेम्स., (अनु.) स्नेह। महाजन. (2008). *यूरोप 1870 से*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- तासी, गार्सा द., (अनु.) वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर. (1953). *हिंदुई साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी
- तिवारी, नित्यानंद. (2015) *मध्यकालीन साहित्य : पुनरवलोकन*. इलाहाबाद: साहित्य भंडार प्रकाशन
- तिवारी, नित्यानंद. (1994) *आधुनिक साहित्य और इतिहास-बोध*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- तिवारी, रामपूजन. (1965). *जायसी*. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
- तुलसीदास., (टीकाकार) पोद्दार, हनुमानदास. *श्रीरामचरितमानस*. गोरखपुर: गीतप्रेस
- थ्योंगो, न्गुगी वा. (1999) *भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता*. दिल्ली: सारांश प्रकाशन
- दामोदरन, के. (2001). *भारतीय चिंतन परंपरा*. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
- दिनकर, रामधारीसिंह. (2008). *कवि और कविता*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- दुबे, श्यामाचरण. (2000). *समय और संस्कृति*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- दुबे, श्यामाचरण. (2016). *मानव और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. (2003). *मध्यकालीन धर्म साधना*. इलाहाबाद: साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड
- द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. (2014). *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास – हजारीप्रसाद द्विवेदी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. (2012). *हिंदी साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन
- द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. (2010). *भाषा साहित्य और देश*. नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ
- देवराज, डॉ. नन्दकिशोर. (2002). *भारतीय दर्शन*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
- नाभादास. (2013). *भक्तमाल*. गोरखपुर; गीताप्रेस

- पचौरी, सुधीश. (2019). *तीसरी परंपरा की खोज*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- पचौरी, सुधीश. (2003). *निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद*. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
- पचौरी, सुधीश. (1995). *नव साम्राज्यवाद और संस्कृति*. नई दिल्ली: प्रवीण प्रकाशन
- पाठक, गजेन्द्र. (2005). *हिंदी नवजागरण*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन
- पाण्डेय, मैनेजर. (2016). *साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि*. हरियाणा: आधार प्रकाशन
- पाण्डेय, मैनेजर. (2011). *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- पालीवाल, कृष्णदत्त. (2016). *आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत*. नयी दिल्ली: आर्य प्रकाशन मण्डल
- पालीवाल, कृष्णदत्त. (2017). *हिन्दी आलोचना का उत्तर आधुनिक विमर्श*. दिल्ली: यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
- प्रेमशंकर. (2000). *भक्ति काव्य का समाजदर्शन*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- प्रेमशंकर. (1977). *भक्ति काव्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
- प्रसाद, जयशंकर. (2007). *काव्य कला तथा अन्य निबंध*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- फारुकी, एन. आर. (2014). *सूफीवाद : कुछ महत्वपूर्ण लेख*. हैदराबाद: ओरियंट ब्लैकस्वान लिमिटेड
- भटनागर, रामरतन. (1947). *मलिक मुहम्मद जायसी : एक अध्ययन*. इलाहाबाद: किताब महल
- मजुमदार., रायचौधरी., दत्त. (1970). *भारत का वृहत इतिहास*. दिल्ली: मैकमिलन प्रकाशन
- मार्क्स., एंगेल्स. (1973). *भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857-59*. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
- मार्क्स., एंगेल्स. (2006). *साहित्य और कला*. राहुल फाउंडेशन

- माहेन, सुभाष बाला. (1969). *जायसी के पद्मावत का मनोवैज्ञानिक अध्ययन*. शिमला: भारतेन्दु भवन
- मिश्रबंधु. (1937). *मिश्रबंधु विनोद*. लखनऊ: गंगा-ग्रंथमाला
- मिश्र, शिवकुमार. (2009). *साहित्य इतिहास और संस्कृति*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- मिश्र, शिवकुमार. (2002). *हिंदी आलोचना की परंपरा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- मिश्र, शिवकुमार. (1991). *भक्तिकाव्य और लोकजीवन*. दिल्ली: अरुणोदय प्रकाशन
- मिश्र, शिवकुमार. (1996). *भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य*. इलाहाबाद: अभिव्यक्ति प्रकाशन
- मिश्र, शिवकुमार. (2010). *मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन : इतिहास तथा सिद्धांत*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- मुक्तिबोध, गजानन माधव. (2015). *कामायनी एक पुनर्विचार*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- मुखिया, हरबंस. (2012). *फ्युडलिज़्म और गैरयूरोपीय समाज*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- रघुवंश. (2008). *जायसी एक नयी दृष्टि*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- रजा, जाफ़र. (2004). *इस्लामी अध्यात्म सूफीवाद*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- रेने, वेलेक., आस्टिन वारेन. (अनु.) पालीवाल, वी.एस. (2012). *साहित्य-सिद्धांत*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- रंजन, रवि. (2005) *भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र और पद्मावत*. हैदराबाद: मिलिन्द प्रकाशन
- वर्मा, पवन कुमार. (2010). *भारतीयता की ओर : संस्कृति और अस्मिता की अधूरी क्रांति*. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स

- विमल, गंगा प्रसाद. (2012). *आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता*. दिल्ली: नयी किताब
- शर्मा, डॉ. मुंशीराम. (1979). *भक्ति काव्य का विकास (वैदिक भक्ति एवं भागवत भक्ति तथा हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति)*. वाराणसी: चौखंभा विद्याभवन प्रकाशन
- शर्मा, रामविलास. (2016). *परंपरा का मूल्यांकन*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2014). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2008). *त्रिवेण*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन
- शंभुनाथ. (2002). *दुस्समय में साहित्य : परंपरा का पुनर्मूल्यांकन*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
- सईद, एडवर्ड डब्लू., (अनु.) शुक्ल, रामकीर्ति. (2015). *वर्चस्व और प्रतिरोध*. दिल्ली: नयी किताब प्रकाशन
- सक्सेना, डॉ. द्वारिकाप्रसाद. (1974). *पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन*. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर
- सतीशचंद्र. (2013). *मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- साही, विजयदेवनारायण. (2012). *जायसी*. इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी
- सिंह, कन्हैया. (2016). *उदार इस्लाम का सूफी चेहरा*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
- सिंह, कन्हैया. (1994). *मलिक मुहम्मद जायसी*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन
- सिंह, नामवर. (2017). *दूसरी परंपरा की खोज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- सिंह, भीम. (1977). *जायसी - काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन*. कुरुक्षेत्र: कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
- सेंगर, शिवसिंह., (सं.) गुप्त, किशोरीलाल. (1970). *शिवसिंह सरोज*. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन

- हबीब, इरफान, (अनु.) रावत, रमेश. (2013). *भारतीय इतिहास में मध्यकाल*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
- हबीब, इरफान. (2017). *मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास : एक सर्वेक्षण*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

अंग्रेजी पुस्तकें

- Eagleton, Terry. (2007). *The Ideology of The Aesthetic.* USA: Blackwell Publishing
- Ed. Devy, G.N. (2009). *Indian Literary Criticism: Theory and Interpretation.* Hyderabad: orient Black Swan
- Gupta, Dipankar. (2017). *Mistaken Modernity: India between World*. Noida: Harper Collins Publishers
- Habib, M.A.R. (2011). *Literary Criticism from Plato to the Present: An Introduction.* Willy: Blackwell Publication
- Said, Edward W. (2001). *Orientalism: Western Conceptions of The Orient*. New Delhi: Penguin Books
- Spivak, Gayatri Chakravarti. (2006). *In Other Worlds.* New York: Routledge Classics

- William, C. Chittick. (2005). *Sufism a Beginner's Guide.* London. Oneworld Publication
- Young, Robert J.C. (2001). *Postcolonialism: An Historical Introduction*. Massachusetts: Blackwell Publishers

शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावलियाँ

- अमरनाथ. (2016). *आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- (सं.) दुबे, अभय कुमार. (2013). *समाज-विज्ञान विश्वकोश*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
- (सं.) पाठक, पंडित रामचंद्र. (1980). *आदर्श हिंदी शब्दकोश*. वाराणसी: भार्गव बुक डिपो
- (सं.) वर्मा, धीरेन्द्र. (1963). *हिंदी साहित्य कोश*. वाराणसी : ज्ञानमंडल लिमिटेड
- Cuddon, J.A., Habib, M.A.R. (2013). *Dictionary of Literary Terms & Literary Theory.* England: Penguin Books

पत्र-पत्रिकाएँ

- आलोचना, जनवरी-मार्च 1987
- आलोचना, अप्रैल-जून 2012
- कथा पत्रिका, अक्टूबर 2007

- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष – 45
- पुनर्लेखन (शोध-पत्रिका), द्वितीय अंक, 2009
- वागर्थ, मई 2018
- समालोचक, मई 1958